CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्ति-संख्या ६३५
डं
न (शोध) संस्थान
ार
णसी-५
कृत व्याकरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सं. १८२

६३५

थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण

स्नातक-संस्कृत-व्याकरणम्

(विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)

SPECIMEN COPY

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य,
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी तथा प्राकृत एवं जैनोलौजी)
पी-एच० डी०; डी० लिट०
अध्यक्ष—संस्कृत-प्राकृत-विभाग
एच० डी० जैन कॉलेज, आरा
मगध विश्वविद्यालय

SPECIMEN COPY

ज्ञानदा प्रकाशन
पटना—४

[मूल्य रु० ६·२५ मात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक
देवी दयाल चौधरी
वास्ते—ज्ञानदा प्रकाशन
पटना—४

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

द्वितीय संस्करण आषाढ़—संवत् २०२५
(पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्द्धित)

मुद्रक—
ज्ञानोदय प्रेस
पटना—४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आमुख

संस्कृत-भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का कितना महत्त्व है, इससे सभी पाठक अवगत हैं। यही कारण है कि संस्कृत में व्याकरण का जितना विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन हुआ है, उतना संसार की किसी भी अन्य भाषा में नहीं। वैदिक युग में ही शब्दों के शुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रातिशाख्यों का प्रणयन किया गया था। ई० पू० सातवीं शदी में लिखा गया यास्क का निरुक्त भी शब्दों की व्युत्पत्तियाँ उपस्थित करने में अद्वितीय है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत को अत्यन्त सुव्यवस्थित करने में कोई प्रयास उठा नहीं रखा है। 'कवि-कल्पद्रुम' के धातु-पाठ में बोपदेव ने आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है।

> इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशलीशाकटायनाः।
> पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः॥

इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, पिशली…आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेन्द्र ये आठ वैयाकरण प्रसिद्ध हैं।

पाणिनि-व्याकरण को कात्यायन और पतञ्जलि ने सर्वाङ्गपूर्ण बनाया है। कात्यायन ने पाणिनि के लगभग १५०० सूत्रों में तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि से अभाव पाकर ४००० वार्त्तिकों की रचना की है। पतञ्जलि ने कात्यायन द्वारा पाणिनि पर किये गये आलोचनात्मक वार्तिकों का खण्डन तथा पाणिनि के सूत्रों का मण्डन अत्यन्त सजीव और सुबोध शैली में किया है। शंका-समाधान को रोचक बनाने के लिए इन्होंने अनेक घरेलू दृष्टान्तों का उपयोग किया है। पाणिनि-व्याकरण पर टीका-टिप्पणी की परम्परा सत्तरहवीं शती तक चलती रही। पाणिनि के अतिरिक्त चन्द्रगोमी, शर्ववर्मा, पूज्यपाद, शाकटायन, हेमचन्द्र, बोपदेव प्रभृति वैयाकरणों ने भी व्याकरण-ग्रन्थ लिखकर संस्कृत-व्याकरण को विस्तृत और व्यवस्थित करने में सहयोग प्रदान किया है।

अब तक संस्कृत के जितने व्याकरण उपलब्ध हैं, उनमें पठन-पाठन के विचार से पाणिनि व्याकरण का ही अधिक प्रचार है। अतः स्नातक संस्कृत-व्याकरणम् का भी आधार पाणिनि-व्याकरण ही है।

व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति "व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साध्यन्ते शब्दाः अनेन" अर्थात् जिसके द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति बतलायी जाय, वह व्याकरण-शास्त्र है। वि, आ उपसर्ग पूर्वक कृ धातु एवं ल्युट् प्रत्यय के योग से व्याकरण शब्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनता है; इसका अर्थ है जिसके द्वारा शब्द बने वह शास्त्र। इसी कारण व्याकरण को शब्द-शास्त्र भी कहा गया है। पाणिनि ने व्याकरण का उद्देश्य भाषा का विश्लेषण करना माना है। इनके मत से इसके चार तत्त्व हैं नाम, आख्यात-धातु, उपसर्ग और निपात-अव्यय। समस्त अष्टाध्यायी में इन चारों का नियमन किया गया है।

व्याकरण के क्षेत्र में शब्द साधुत्व का सम्यक् बोध करने के लिए भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी और वरदराज ने मध्य सिद्धान्तकौमुदी तथा लघु संस्करण रूप लघु सिद्धान्तकौमुदी का सम्पादन किया है। अतः व्याकरण का विधिवत ज्ञान प्राप्त करने के लिए उक्त तीनों ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय हैं। इस सत्य से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि शब्द सम्पत्ति की वास्तविक जानकारी सिद्धान्तकौमुदी के परिज्ञान के अभाव में अधूरी है।

वर्तमान युग में संस्कृत-भाषा का अध्ययन-अध्यापन विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और उच्च विद्यालयों में पूर्वात्य एवं पाश्चात्य दोनों प्रणालियों से सम्पन्न किया जाता है। पर, इस वास्तविकता से सभी अवगत हैं कि इस भाषा का उपयुक्त और उचित रूप में ज्ञान व्याकरण ज्ञान के बिना संभव नहीं है। यों तो हिन्दी और अंग्रेजी के माध्यम से कई सुबोध संस्कृत-व्याकरण ग्रन्थ लिखे गये हैं, पर इन सभी व्याकरणों में परीक्षार्थियों की दृष्टि से कोई-न-कोई कमी अवश्य रह गयी है। प्रस्तुत स्नातक संस्कृत व्याकरणम् को परीक्षार्थियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की गयी है। इसमें निम्न विशेषताएँ उपलब्ध होंगी।

१—नियमों को अवगत कराने के लिए पाणिनि के सूत्र हिन्दी अर्थ सहित दिये गये हैं, जिससे छात्र सरलतापूर्वक सूत्रों के आधार पर नियमों को स्मरण रख सकेंगे।

२—नियमों को समझाने में उदाहरणों का आधार रखा गया है।

३—भारतवर्ष के समस्त विश्वविद्यालयों के कई वर्ष के प्रश्नपत्रों के आधार पर अनुशीलनी दी गयी है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में दी गयी इस अनुशीलनी के प्रश्नों को समझ लेने से नियमों का इतना अधिक अभ्यास हो जायगा, जिससे परीक्षार्थी परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करेंगे।

४—विषय को संक्षिप्त और सुबोध शैली में उपस्थित किया गया है।

५—प्रत्येक प्रकरण में ऐसी नवीन बातें अवश्य मिलेंगी, जो अन्य व्याकरण ग्रन्थों में नहीं हैं।

६—विषय और नियमों को समझाने की पूरी चेष्टा की गयी है।

७—प्रत्येक हिन्दी जाननेवाला व्यक्ति इस पुस्तक के अध्ययन से व्याकरण सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८—प्राक्-विश्वविद्यालय से एम० ए० तक के छात्रों के लिए यह व्याकरण उपयोगी होगा।

९—इस व्याकरण की एक विशेषता यह भी है कि यह संस्कृत सीखने के लिए गुरु के समान उपयोगी है।

१०—लौकिक संस्कृत-व्याकरण के साथ वैदिक व्याकरण भी लिखा गया है। मैकडॉनल की वैदिक ग्रामर के आधार पर समस्त वैदिक व्याकरण ग्रथित है।

इस पुस्तक के लिखने में जिन-जिन लेखकों की रचनाओं से लाभ उठाया है, उन सबका मैं आभारी हूँ। परामर्श के रूप में सहयोग देनेवाले गुरुवर्य डॉ० प्रो० हीरालालजी जैन, जबलपुर एवं पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री सिद्धान्ताचार्य वाराणसी का मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ। गुरुद्वय के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ लिखा गया है।

इस व्याकरण के लिखने की प्रेरणा मुझे श्री देवीदयाल चौधरी, संचालक, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना से प्राप्त हुई है तथा इस रचना को प्रकाश में लाने का सारा श्रेय श्री चौधरी जी को ही है। मैं उनके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

हर प्रसाद दास जैन कॉलेज, आरा

आषाढ़, सं० २०२५

— नेमिचन्द्र शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

प्रथम भाग

प्रथमोऽध्यायः

वर्ण की परिभाषा १
वर्ण और अक्षर में अन्तर १
वर्णमाला बोधक १४ सूत्र १
प्रत्याहार १
स्वर की परिभाषा और भेद ३
व्यञ्जनों की परिभाषा और भेद ३
अनुस्वार और विसर्ग का
स्वर-व्यञ्जनत्व ४
गुण की अपेक्षा स्वरों के भेद ४
उच्चारण की अपेक्षा स्वरों के भेद ४
प्रत्येक स्वर के अठारह भेद ४
अनुनासिक की परिभाषा ४
वर्णों के उच्चारणस्थान ५
प्रयत्न विचार ६
अघोष वर्ण ६
घोष वर्ण ६
अल्पप्राण वर्ण ६
महाप्राण वर्ण ६
स्पर्श वर्ण ७
अन्तस्थ वर्ण ७
ऊष्म वर्ण ७
अयोगवाह ७
सवर्ण संज्ञा ७
गुण संज्ञा ७
वृद्धि संज्ञा ७
सम्प्रसारण संज्ञा ७
टि संज्ञा ७
उपधा संज्ञा ८
प्रातिपदिक संज्ञा ८
पद संज्ञा ८
गृह्य संज्ञा ८
उपसर्ग संज्ञा ८
धातु संज्ञा ८
कृति, प्रत्यय और आदेश की परिभाषाएँ ८
अनुशीलनी ८

द्वितीयोऽध्यायः

सन्धि की परिभाषा १०
संयोग और सन्धि में भेद १०
समास और सन्धि में भेद १०
सन्धि के मुख्य तीन भेद १०
सन्धि की व्यवस्था १०
स्वर सन्धि की परिभाषा १०
व्यञ्जन सन्धि की परिभाषा १०
विसर्ग सन्धि की परिभाषा १०
स्वर सन्धि के आठ भेद ११
दीर्घ सन्धि ११
दीर्घ सन्धि के अपवाद ११
गुण सन्धि ११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण सन्धि के अपवाद	१२
वृद्धि सन्धि	१३
यण् सन्धि	१४
अयादि सन्धि	१६
पूर्वरूप सन्धि	१८
पररूप सन्धि	१८
प्रकृति भाव सन्धि	२०
अनुशीलनी	२१
व्यञ्जन सन्धि-विचार	२१
अनुशीलनी	२७
विसर्ग सन्धि	२८
विसर्ग के भेद	२८
सजात और रजात विसर्ग की व्यवस्था	२८
विसर्ग सन्धि में विसर्ग के छः विकार	२८
विसर्ग सन्धि के नियम	२९
अनुशीलनी	३४
णत्व विधान	३६
स्वाभाविक णत्व	३६
अनुशीलनी	३९
षत्व विधान	४०
स्वाभाविक षत्ववाले शब्द	४०
अनुशीलनी	४३

तृतीयोऽध्यायः

शब्द की परिभाषा और उसके भेद	४५
प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार शब्दों के भेद	४५
लिङ्ग और वचन	४५-४६
विभक्तियों की आकृतियाँ	४६
राम शब्द की साधनिका	४७
सर्व शब्द की साधनिका	४८
इकारान्त और उकारान्त शब्दों की विशेषताएँ	४९
राम, सर्व और ज्ञान शब्द के रूपों की प्रक्रिया	४९
स्वरान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप	५०
स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप	
स्वारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप	
व्यञ्जनान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप	
सर्वनाम शब्दों की तालिका	७६
इदम् और एतद् शब्दों के प्रयोग का निर्णय	७६
तद् और अदस् की प्रयोग विभिन्नता	७७
सर्वनाम शब्दों के रूप	७७
संख्यावाचक शब्दों के रूप	८३
क्रमवाचक शब्दों के रूप	८७
तुलनात्मक विशेषण	८८
तुलनात्मक शब्दों की तालिका	८८

चतुर्थोऽध्यायः

स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भेद	९०
स्त्री प्रत्यय की परिभाषा	९०
स्त्री प्रत्ययों के आठ भेद	९०
टाप् विचार	९१
डाप् विचार	९२
चाप् विचार	९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ङीष् विचार	९३	अव्यय	१०३
अपवाद	९६	उपसर्ग	१०४
ङीप् विचार	९८	क्रिया विशेषण	१०४
ङीन् विचार	९९	अव्ययों के अर्थ	१०५
'ति' विचार	९९	समुच्चयबोधक	१०६
अध्ययनीय शब्द	१०१	मनोविकारसूचक अव्यय	१०८
कतिपय शब्दयुग्मों में अर्थ भेद	१०३	अतिरिक्त अव्यय	१०९
अनुशीलनी	१३०		

द्वितीयभाग

पञ्चमोऽध्याय:

कारक की परिभाषा	१०	चतुर्थी विभक्ति	१२१
कारकों की संख्या	१०	सम्प्रदान की परिभाषा	१२१
विभक्ति और कारक में अन्तर	११०	पञ्चमी विभक्ति	१२७
विभक्ति की परिभाषा	१०१	अपादान की परिभाषा	१२७
प्रथमा विभक्ति	१११	षष्ठी विभक्ति	१३१
प्रातिपदिक की परिभाषा	१११	सम्बन्ध के भेद	१३१
द्वितीया विभक्ति	१११	सप्तमी विभक्ति	१३८
कर्म की परिभाषा	११२	अधिकरण की परिभाषा	१४२
तृतीया विभक्ति	११८	अनुशीलनी	१४४
करण की परिभाषा	११८		

षष्ठोऽध्याय:

समास की परिभाषा	१४४	पञ्चमी तत्पुरुष	१४९
समास के मुख्य भेद	१४४	षष्ठी तत्पुरुष	१४८
केवल समास	१४४	सप्तमी तत्पुरुष	१४९
अव्ययीभाव	१४५	द्विगु समास	१५०
तत्पुरुष समास	१४७	कर्मधारय	१५०
प्रथमा तत्पुरुष	१४७	नञ् तत्पुरुष	१५१
द्वितीया तत्पुरुष	४७	प्रादितत्पुरुष	१५२
तृतीया तत्पुरुष	१४८	उप पद समास	१५२
चतुर्थी तत्पुरुष	१४८		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गति तत्पुरुष	१५२	रक्तयाद्यर्थक प्रकरणम	१६४
तत्पुरुष समासान्त प्रत्यय	१५२	चातुरार्थिक प्रकरण	१६७
तत्पुरुष में लिङ्ग व्यवस्था	१५३	देवतार्थक ,,	१६७
बहुव्रीहि समास	१५३	समूहार्थक ,,	१७०
बहुव्रीहि के भेद	१५४	अध्ययनार्थक ,,	१७१
द्वन्द्व समास	१५५	शैषिक ,,	१७२
द्वन्द्व समास के भेद	१५६	विकारार्थक और सम्बन्धार्थक प्रत्यय	१७४
समासान्त प्रकरण	१५७	मतुबर्थक प्रत्यय	१७४
तद्धित की परिभाषा	१ ९	स्वार्थिक ,,	१७५
तद्धित प्रत्ययों का वर्गीकरण	१५९	अनेकार्थक ,,	१७६
तद्धित प्रत्यय जोड़ने के सामान्य-नियम	१५९	भावार्थ तथा कर्मार्थ प्रत्यय	१७८
अपत्याधिकार	१६०		

सप्तमोऽध्यायः

णिजन्त प्रक्रिया	२९७	कर्मवाच्य में धातुओं के रूप	३१२
धातु की परिभाषा	१७९	वाच्य परिवर्तन के नियम	३२०
गणों के नाम	१७९	अनुशीलनो	३२१
लकारों के नाम और उनके अर्थ	१७९	लकरार्थ प्रक्रिया	३२२
लकारों के विभक्ति चिन्ह	१८०	अनुशीलनी	३२६
धातु रूप	१८१-२९७	कृत् प्रत्यय की परिभाषा	३२७
सन्नन्त प्रक्रिया	२९८	कृत् प्रत्यय	३२८
यङन्त प्रक्रिया	२९८	भूतकाल के कृत् प्रत्यय	३४०
नाम धातु	२९९	क्त और क्तवतु	३३०
आत्मनेपद प्रक्रिया	३००	क्त प्रत्ययान्त	३३१
आत्मनेपद प्रक्रिया का अपवाद	३०१	क्तवतु प्रत्यान्त	३३१
परस्मैपद प्रक्रिया	३०७	वतमान काल के कृत् प्रत्यय	३३२
अनुशीलनी	२०८	शतृ	३३२
कर्मवाच्य	३०९	शानच्	३३२
कमवाच्य के रूप	३१०	भविष्य काल के कृत् प्रत्यय	३३३
अपवाद	३११	वसुन्	३३४
क्त्वा	३३४	खलर्थ कृत् प्रत्यय	३३५
ल्यप्	३३४	उणादि प्रत्यय	३३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णमुल्	३३४	लकारर्थ प्रक्रिया	३४०
भावार्थ कृत प्रत्यय	३३५	कृत्य प्रकरण	३४१
कर्त्तवाचक कृत् प्रत्यय	३३६	पूर्व कृदन्त प्रकरणम्	३४५
शीलधर्म वाचक कृत् प्रत्यय	३३७	उत्तर कृदन्तम्	३६९

अष्टमोऽध्यायः

स्वर सन्धि और उसके भेद	३८०	शतृ और शानच	३९५
व्यञ्जन सन्धि	३८१	ओरिस्ट—लुङ्	३९७
विसर्ग सन्धि	३८३	वाच्य परिवर्तन	३९७
शब्दों के भेद	३८३	कर्मवाच्य	३९७
अकारांत शब्दों की विशेषताएँ	३८४	भाववाच्य	३९७
अकारांत प्रिय शब्द के रूप	३८५	कारक	३९९
आकारांत प्रिया शब्द के रूप	३८५	कम्पाउण्ड्स—समास	४००
इकारांत अग्नि शब्द के रूप	३८६	समासों का वर्गीकरण	४००
ईकारांत देवी शब्द के रूप	३८६	द्वन्द्व समास	४००
उकारांत तनु शब्द के रूप	३८७	तत्पुरुष समास	४०२
ऋकारांत दातृ शब्द के रूप	३८८	कर्मधारय समास	४०२
युष्मद् शब्द के रूप	३८८	बहुव्रीहि समास	४०२
भू धातु के रूप	३८९	अनुशासित अव्ययीभाव समास	४०३
इण् धातु के रूप	३९०	वाक्य रचनात्मक समास	४०३
ब्रूञ् धातु के रूप	३९००	द्विरुक्त समास	४०४
कृञ् ,, ,,	३९१	लौकिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत-में अन्तर	४०४
इंजेक्टिव मूड	२९२		
इनफिनेटिव — तुमुन्	३९२	मूल वेदकी प्रक्रिया	४०६-४२३
जीरण्ड—क्त्वा	३९४		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातक-संस्कृत-व्याकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

वर्णविचार और संज्ञाएँ

भाषा की मूल ध्वनियों तथा उन ध्वनियों के प्रतीक स्वरूप लिखित चिह्नों को वर्ण कहते हैं। वर्ण और अक्षर में अन्तर यह है कि वर्ण मूल ध्वनियों के उच्चारित रूप तथा उनके लिखित चिह्नमात्र हैं, उनके खण्ड नहीं हो सकते; किन्तु अक्षर स्वरों और स्वर संयुक्त व्यञ्जनों को कहते हैं अर्थात्—अक्षरों में स्वर और व्यञ्जन के भेद से खण्ड हो जाते हैं। संस्कृत में वर्णों का बोध कराने के लिए निम्न चौदह सूत्र प्रसिद्ध हैं।

(१) अइउण्[1] (२) ऋलृक् (३) एओङ् (४) ऐऔच् (५) हयवरट् (६) लण् (७) ञमङणनम् (८) झभञ् (९) घढधष् (१०) जबगडदश् (११) खफछठथचटतव् (१२) कपय् (१३) शषसर् (१४) हल्।

इन चतुर्दश सूत्रों के अण्, अक्, अच् आदि प्रत्याहार सूत्र निष्पन्न होते हैं। इन चौदह सूत्रों के अन्तिम वर्ण इत्संज्ञक हैं और हकारादि वर्णों में सम्मिलित अकार उच्चारण के लिए हैं।

आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१

अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ उच्चारित आदि वर्ण अपने तथा मध्यवर्ती वर्णों का भी बोधक होता है। जैसे अण् प्रत्याहार का अर्थ है अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

प्रत्याहार सूत्र ४२ हैं, परिचय निम्न प्रकार अवगत करना चाहिए।

१ अक्—अ इ उ ऋ लृ।

२ अच्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।

३ अञ्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।

४ अट्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र।

१—नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारान्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

अर्थ—नृत्य के पश्चात् शिवजी ने अपने डमरू को चौदह बार बजाया, उसमें से चौदह ध्वनियाँ निकलीं, जो चौदह सूत्र कहलायीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५ अण्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ।

६ अम्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न ।

७ अल्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।

८ अश्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।

९ इक्—इ उ ऋ ऌ ।

१० इच्—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ।

११ इण्—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ।

१२ उक्—उ ऋ ऌ ।

१३ एङ्—ए ओ ।

१४ एच्—ऐ ओ ऐ औ ।

१५ ऐच्—ऐ औ ।

१६ खय्—ख फ छ ठ थ च ट त क प ।

१७ ख फ छ ठ थ च ह त क प श ष स ।

१८ ङम्—ङ ण न ।

१९ चय्—च ट त क प ।

२० चर्—च ट त क प श ष स ।

२१ छव्—छ ठ थ च ट त ।

२२ जश्—ज ब ग ड द ।

२३ झय्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।

२४ झर्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।

२५ झल्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।

२६ झश्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।

२७ झष्—झ भ घ ढ ध ।

२८ बश्—ब ग ड द ।

२९ भष्—भ घ ढ ध ।

३० मय्—म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।

३१ यञ्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ ।

३२ यण्—य व र ल ।

३३ यम्—य व र ल ञ म ङ ण न ।

३४ यय्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५ यर्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।

३६ रल्—र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।

३७ वल्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।

३८ वश्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।

३९ शर—श ष स ।

४० शल—श ष स ह ।

४१ हल्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।

४२ हश्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।

उपर्युक्त प्रत्याहार-सूत्रों से ज्ञात होता है कि मूलतः वर्ण दो प्रकार के हैं—स्वर और व्यञ्जन ।

स्वर—जिन वर्णों के उच्चारण में अन्य वर्णों की सहायता अपेक्षित नहीं होती, वे स्वर कहलाते हैं । स्वर तीन प्रकार के हैं—ह्रस्व, दीर्घ और मिश्रविकृत दीर्घ (सन्ध्यक्षर)। स्वर तेरह होते हैं ।

जिन वर्णों के उच्चारण करने में स्वर वर्णों की सहायता लेनी पड़ती है, वे व्यञ्जन कहलाते हैं । व्यञ्जन ३५ हैं ।

अ इ उ ऋ ऌ—ह्रस्व (सादे)
आ ई ऊ ॠ—दीर्घ (सादे)
ए ऐ ओ औ मिश्रविकृत दीर्घ (सन्ध्यक्षर)
} स्वर

क ख ग घ ङ—कवर्ग
च छ ज झ ञ—चवर्ग
ट ठ ड ढ ण—टवर्ग
त थ द ध न—तवर्ग
प फ ब भ म—पवर्ग
य र ल व—अन्तःस्थ
श ष स ह—ऊष्म
ं अनुस्वार
: विसर्ग
} व्यञ्जन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुस्वार और विसर्ग भी व्यञ्जन माने जाते हैं; अतः अनुस्वार म् या न् का रूपान्तर है और विसर्ग र या स् का। अनुस्वार और विसर्ग सदैव स्वरों के पीछे प्रयुक्त होते हैं; अतः इन्हें स्वर भी माना जाता है।

गुण की अपेक्षा से स्वरों के तीन भेद हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत।

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्॥

अर्थ—जिसमें एक मात्रा हो, वह ह्रस्व; जिसमें दो मात्राएँ हों, वह दीर्घ और जिसमें तीन मात्राएँ हों, वह प्लुत कहा जाता है। व्यञ्जन में आधी मात्रा ही होती है।

उच्चारण की विशेषता के कारण प्रत्येक स्वर के तीन भेद हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

उच्चैरुदात्तः १।२।२९

तालु आदि स्थानों के ऊर्ध्व भाग से उच्चारित होनेवाले वर्ण उदात्त कहलाते हैं।

नीचैरनुदात्तः १।२।३०

तालु आदि स्थानों के अधोभाग से उच्चारित अनुदात्त कहे जाते हैं।

समाहारः स्वरितः १।२।३१

उदात्त और अनुदात्त ये दोनों धर्म जिसमें मिश्रित हों, वह स्वरित है।

इस प्रकार स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेदों में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेदों के होने से प्रत्येक स्वर के नौ भेद होते हैं। इनमें से प्रत्येक के अनुनासिक और अननुनासिक भेद से प्रत्येक स्वर के अठारह भेद होते हैं; किन्तु दीर्घ न होने से ऌ के बारह भेद और ह्रस्व न होने से ए ओ ऐ औ के बारह भेद होते हैं।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८

मुख और नासिका से उच्चारण किये गये वर्ण अनुनासिक कहलाते हैं। यथा—अँ, आँ, एँ, ऐँ आदि। जिनके उच्चारण में नाक की सहायता की आवश्यकता नहीं होती; वे अननुनासिक हैं। यथा—अ, आ, ए, ऐ आदि।

वर्णों के उच्चारण के स्थान—

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।

अ आ क ख ग घ ङ ह और विसर्ग का उच्चारण-स्थान कण्ठ है; अतः ये वर्ण कण्ठ्य कहलाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इचुयशानां तालु ।

इ ई च छ ज झ ञ य और श का उच्चारण-स्थान तालु है। अतः ये वर्ण तालव्य कहे जाते हैं।

ऋटुरषाणां मूर्द्धा ।

ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र और ष का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है। अतः ये मूर्धन्य कहे जाते हैं।

लृतुलसानां दन्ताः ।

लृ त थ द ध न ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है; अतः ये वर्ण दन्त्य कहलाते हैं।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।

उ ऊ प फ ब भ म और उपध्मानीय ᳵप ᳵफ का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। अतः इनको ओष्ठ्य वर्ण कहते हैं। पवर्ग के पश्चात् आनेवाले विसर्ग को उपध्मानीय कहते हैं।

ञमङणनानां नासिका च ।

ञ म ङ ण न और म का उच्चारण स्थान नासिका है। अतः ये वर्ण अनुनासिक कहे जाते हैं।

एदैतोः कण्ठतालुः ।

ए और ऐ का कण्ठ एवं तालु उच्चारण स्थान है।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् ।

ओ और औ का कण्ठ तथा ओष्ठ उच्चारण स्थान है।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ।

वकार का दन्त और ओष्ठ उच्चारण स्थान है।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।

जिह्वामूलीय ᳲक ᳲख का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। कवर्ग के पश्चात् आनेवाले विसर्ग को जिह्वामूलीय कहते हैं।

नासिकाऽनुस्वारस्य ।

अनुस्वार का उच्चारण-स्थान नासिका है।

विसर्ग जिस स्वरवर्ण के परे रहता है, उसी स्वर का उच्चारण स्थान विसर्ग का भी उच्चारण-स्थान होता है।

प्रयत्न-विचार

यत्नोद्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेष-द्विवृतविवृतसंवृतभेदात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव।

वर्णोच्चारण के लिए ध्वनियन्त्र को जो आयास करना पड़ता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तर और वाह्य।

वर्णोच्चारण के पूर्व हृदय में जो आयास होता है, उसे आभ्यन्तर और मुख से वर्ण निकलते समय जो आयास करना पड़ता है, उसे वाह्य प्रयत्न कहते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न का अनुभव बोलनेवाले को ही होता है; किन्तु वाह्य का अनुभव श्रोता भी करते हैं।

आभ्यन्तर पाँच प्रकार का होता है—स्पृष्ट, ईषत्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत।

क से म पर्यन्त वर्णों का स्पृष्ट; अन्तःस्थ—य र ल व का ईषत्पृष्ट, ऊष्मवर्ण—श ष स ह का ईषद्विवृत और स्वरों का विवृत प्रयत्न होता है। ह्रस्व अकार का प्रयोगावस्था—परिनिष्ठित सिद्धरूप में संवृत प्रयत्न होता है; किन्तु प्रक्रियादशा—साधनावस्था में विवृत प्रयत्न ही रहता है।

बाह्यस्त्वेकादशधा—विवारः, संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।

वाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

जिन वर्णों का उच्चारण करते समय कण्ठ का विकाश हो, उनको विवार; जिनके उच्चारण में कण्ठ का विकाश न हो, उन्हें संवार; जिनका उच्चारण करते समय श्वास चलता रहे, उनको श्वास; जिनका उच्चारण नाद से हो, उन्हें नाद; जिन वर्णों का उच्चारण करते समय गूँज हो, उन्हें घोष; जिनके उच्चारण में गूँज न हो, उन्हें अघोष; जिनके उच्चारण में प्राणवायु का अल्प उपयोग हो, उन्हें अल्पप्राण एवं जिनके उच्चारण में प्राणवायु का अधिक उपयोग हो, उन्हें महाप्राण कहते हैं।

खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च।

खर प्रत्याहार—ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है।

हशः संवारा नादघोताश्च।

हश प्रत्याहार—ह य र ल व ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द का संवार, नाद और घोष प्रयत्न है।

वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्गों का प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्ण तथा य र ल व का अल्पप्राण प्रयत्न है।

वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

वर्गों का द्वितीय, चतुर्थ वर्ण तथा श ष स ह का महाप्राण प्रयत्न है।

कादयो मावसानाः स्पर्शाः।

क से म पर्यन्त पच्चीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। इनके उच्चारण में जीभ का अगला, पिछला या मध्य भाग कण्ठ, तालु प्रभृति स्थानों का स्पर्श करता है, अतः ये वर्ण स्पर्श कहलाते हैं।

य र ल वा अन्तःस्थाः।

य र ल व ये चार वर्ण अन्तःस्थ कहलाते हैं। इनके अंन्तःस्थ कहलाने का कारण यह है कि ये चारों स्पर्श और ऊष्म वर्ण के मध्यवर्ती हैं।

श ष स हा ऊष्माणः।

श ष स ह ये चार वर्ण ऊष्म हैं। इन वर्णों के उच्चारण में अधिक वायु निकलती है, अतः ये ऊष्म कहे जाते हैं।

(ं) अनुस्वार और (:) विसर्ग की अयोगवाह संज्ञा हैं।

सवर्ण संज्ञा—**तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** १।१।९

जिस वर्ण का जिस वर्ण के साथ तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न एक हो, वह परस्पर सवर्ण संज्ञावाला होता है। ऋ लृ वर्ण की, भिन्न स्थान होने पर भी, सवर्ण संज्ञा होती है।

गुणसंज्ञा—**अदेङ्गुणः** १।१।२

अ ए ओ की गुण संज्ञा है।

वृद्धि—**वृद्धिरादैच्** १।१।१

आ ऐ औ की वृद्धि संज्ञा है।

सम्प्रसारण—**इग्यणः सम्प्रसारणम्** १।१।४५

य व र ल के स्थान पर इ उ ऋ लृ का होना सम्प्रसारण है। इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ये वर्ण सम्प्रसारण (Liquid) कहलाते हैं। अ आ वर्ण को असम्प्रसारण (Neutral) कहा जाता है।

टि—**अचोऽन्त्यादि टि** १।१।६४

किसी भी शब्द के अन्तिम स्वर से लेकर अन्त्य तक का अक्षर समूह 'टि' संज्ञक होता है। यथा—मनस्+ईषा में मनस् शब्द के अस् भाग की टि संज्ञा मानी जायगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपधा—**अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** १।१।६५

शब्द के अन्त्यवर्ण के पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

प्रातिपदिक—**अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** १।२।४५

धातु और प्रत्यय के अतिरिक्त अर्थवान् शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६

कृदन्त, तद्धित और समास पदों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। तात्पर्य यह है कि जिससे वस्तु या वस्तु के विशेषण का बोध होता हो, उसे प्रातिपदिक कहते है। यथा—वस्तुवाचकः—चन्द्रः, सूर्यः, लता, वायुः प्रभृति। वस्तु के विशेषण वाचकः—स्थिरः, प्रबलः, सुन्दरः, नवीन इत्यादि।

पद—**सुप्तिङन्तं पदम्** १।१।१४

जिन शब्दों के अन्त में सुप् और तिङ् प्रत्यय हों, उनकी पद संज्ञा होती है।

प्रगृह्य — **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** १।१।११

ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

उपसर्ग—उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५८

क्रिया के साथ योग होने से प्र, अप, अव, उप, आ, परा, नि वि, परि, प्रति, अति, अधि, अपि, अति, सु, अनु, उत्, सम्, निर् और दुर् शब्दों की उपसर्ग संज्ञा होती है।

धातु—भ्वादयो धातवः १।३।१

जिससे क्रिया का बोध हो उसे धातु कहते हैं। यथा—भू, स्था, गम् आदि।

प्रकृति—संज्ञा, विशेषण और क्रियावाचक शब्दों के मूलरूप को प्रकृति कहा जाता है। प्रकृति दो प्रकार की होती है—धातु और प्रातिपदिक।

प्रत्यय—धातु और प्रातिपदिक से परे लगाये जानेवाले शब्दांश को प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय पाँच प्रकार के होते हैं—विभक्ति, कृत्, तद्धित, स्त्रीप्रत्यय और धात्ववयव।

आदेश—प्रकृति और प्रत्यय के रूपपरिवर्तन को आदेश कहते हैं; जैसे स्था धातु के स्थान में तिष्ठ और पा धातु के स्थान में पिव आदेश होता है।

अनुशीलनी

१ वर्ण, स्वर, व्यञ्जन, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, प्रातिपदिक, उपधा, पद, उपसर्ग, धातु, प्रकृति, प्रत्यय और आदेश की सोदाहरण परिभाषाएँ लिखिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ स्वर्ण और टि संज्ञाओं की परिभाषा लिखिये।

३ स्पर्श, अन्तःस्थ, ऊष्म, कण्ठ्य, तालव्य, दन्त्य और अनुनासिक वर्णों को लिखिये।

४ वर्ण और अक्षर में अन्तर समझाकर असम्प्रसारण स्वरों को लिखिये।

५ प्रयत्न कितने प्रकार के हैं? विवार, संवार, घोष, अल्पप्राण और महाप्राण प्रयत्न की परिभाषाएँ लिखिये।

६ त, प, ह, य, क, ग, स, ह, ब, भ, घ, ड, म, र, व, श, थ, छ, ख, न और ट का आभ्यन्तर तथा बाह्य प्रयत्न लिखिये।

७ इक, अण्, अट, यर, इच् और हश् प्रत्याहारों के वर्ण लिखिये।

८ अनुस्वार और विसर्ग का उच्चारण-स्थान क्या है? इन दोनों में कितनी मात्राएँ होती हैं?

९ प्रत्याहार बनाने का क्या नियम है? माहेश्वर सूत्र कौन से हैं? संस्कृत-व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने में इन सूत्रों की क्या उपयोगिता है?

१० विवार और संवार में क्या अन्तर है? अ का प्रयोगावस्था और साधनावस्था के अनुसार प्रयत्न लिखिये।

११ आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न में क्या अन्तर है? प्रगृह्य संज्ञा किसे कहते हैं? और इसका फल क्या है?

१२ अ, ई, ऋ और औ के कितने भेद हैं? वकार का उच्चारण स्थान कौन सा है? जिह्वामूलीय और उपध्मानीय में क्या अन्तर है? दोनों का स्वरूप निर्धारण कीजिये।

१३ संस्कृत भाषा की वर्णमाला में कितने स्वर और कितने व्यञ्जन हैं?

१४ अनुस्वार और विसर्ग को व्यञ्जन क्यों माना गया है? गुण की अपेक्षा स्वरों के कितने भेद हैं?

१५ गुण और वृद्धिसंज्ञाओं की परिभाषाएँ लिखिये।

१६ विवृत प्रयत्न किन-किन वर्णों का है? ध्वनियों का उच्चारण किन साधनों पर आश्रित है?

१७ सम्प्रसारण स्वर और अन्य स्वरों में क्या अन्तर है? वर्णोच्चार में जिह्वा का क्या उपयोग है? जिह्वा के बिना वर्णोच्चारण सम्भव है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयोऽध्यायः

सन्धि-विचार

जब किसी शब्द में दो वर्ण निकट आने पर मिल जाते हैं, तो उनके मेल से उत्पन्न होनेवाले विकार को 'सन्धि' कहते हैं।

संयोग और सन्धि में इतना भेद है कि जहाँ वर्ण अपने स्वरूप से विना किसी विकार के मिलते हैं, उसे संयोग और जहाँ विकृत होकर उनके स्थान में कोई आदेश होकर मिलते हैं, उसे सन्धि कहते हैं।

समास और सन्धि में यह अन्तर है कि समास में दो या अधिक पद अपनी विभक्तियों का त्याग कर मिलते हैं, पर सन्धि में विभक्तियों सहित पदों का संयोग होता है। संक्षेप में वर्णविकार सन्धि है और शब्द विकार समास।

संधि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वर-सन्धि (अच्-सन्धि), व्यंजन-संधि (हल्-सन्धि) और विसर्ग सन्धि।

सन्धि की व्यवस्था के सम्बन्ध में बताया गया है—

सन्धिरेकपदे नित्यो नित्यो धातूपसर्गयोः।
सूत्रेषुच भवेन्नित्यः सैवान्यत्र विभापया॥

एक पद—शब्द, धातु और उपसर्ग तथा समास—समस्त पद में सन्धि नित्य—निश्चित रूप से होती है; पर वाक्य में विवक्षा की अपेक्षा रखती है—वक्ता की इच्छा पर निर्भर होती है। यथा—एक पद में—ने + अनम् = नयनम्; भो + अति भवति।

धातु और उपसर्ग में—अधि + आगच्छति = अध्यागच्छति।

समास में—कृष्णस्य + अक्षम् कृष्णाक्षम्।

वाक्य में—रामः गच्छति वनम् अथवा रामो गच्छति वनम्।

स्वर-सन्धि-दो अत्यन्त निकट स्वरों के मिलाने से जो ध्वनि में विकार उत्पन्न होता है, उसे स्वर-सन्धि—अच्-सन्धि कहते हैं; जैसे—ने + अनम् नयनम्।

व्यञ्जन-सन्धि—व्यञ्जन वर्ण के साथ व्यञ्जन या स्वर वर्ण के मिलने से जो विकार होता है, उसे व्यञ्जन-हल्-सन्धि कहते हैं; जैसे—तस्मिन् + इति तस्मिन्निति; पेष् + ता = पेष्टा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विसर्ग सन्धि—विसर्ग के साथ स्वर वर्ण या व्यञ्जन वर्ण के मिलने से जो विकार होता है, उसे विसर्ग या विसर्जनीय कहते हैं; जैसे—रामः + टीकते = रामष्टीकते; रामः + गच्छति = रामोगच्छति ।

स्वर-सन्धि

स्वरसन्धि—अच्-सन्धि के आठ भेद हैं—दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण्, अयादिचतुष्टय, पररूप, पूर्वरूप और प्रकृतिभाव ।

१—अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१—ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ से उनका सवर्ण—सजातीय स्वर परे रहे तो दोनों के स्थान में सवर्ण दीर्घाकार होता है—उदाहरण—

(क) अ + अ = आ—दैत्य + अरिः = दैत्यारिः, शश + अङ्कः = शशाङ्कः ।
अ + आ = आ—कमल + आकरः = कमलाकरः, कुश + आसनम् = कुशासनम् ।
आ + अ = आ—विद्या + अर्थी = विद्यार्थी, दया + अर्णव = दयार्णवः ।
आ + आ = आ—विद्या + आलयः = विद्यालयः, दया + आनन्दः = दयानन्दः ।

(ख) इ + इ = ई—कवि + इन्द्रः = कवीन्द्रः, गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः ।
इ + ई = ई—गिरि + ईशः = गिरीशः, क्षिति + ईशः = क्षित शः ।
ई + इ = ई—मही + इन्द्रः = महीन्द्रः, महती + इच्छा = महतीच्छा ।
ई + ई = ई—श्री + ईशः = श्रीशः, पृथ्वी + ईश्वरः = पृथ्वीश्वरः ।

(ग) उ + उ = ऊ—विधु + उदयः = विधूदयः, सु = उक्तम् = सूक्तम् ।
उ + ऊ = ऊ—लघु + ऊर्म्मिः + लघूर्म्मिः ।
ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सवः = वधूत्सवः, बधू + उपरि = बधूपरि ।
उ + ऊ = ऊ—चमू + ऊर्जः = चमूर्जः, भू + ऊर्ध्वम् = भूर्ध्वम् ।

(घ) ऋ + ऋ = ॠ—पितृ + ऋणम् = पितॄणम्, होतृ = ऋकारः = होतॄकारः ।
ऋ + ऌ = ॠ—होतृ + ऌकारः = होतॄकारः होतॢकारः ।

यदि ऋ या ऌ के बाद ह्रस्व ऋ या ऌ आवे तो दोनों के स्थान पर ह्रस्व ऋ या ऌ भी स्वेच्छया कर सकते है, यथा—होतृ + ऋकारः = होतृकारः, होतृ + ऌकारः, होतृकारः, होतॢकारः ।

दीर्घसन्धि के अपवाद--

शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्---शकन्धु आदि शब्दों में जिस प्रकार उसकी सिद्धि हो, वैसा पररूप करना चाहिए । यथा—शक + अन्धुः = शकन्धुः, कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः ।

अचोऽन्त्यादि टि १।१।६४, तच्च टेः—शब्द के अन्त्य स्वर से लेकर आगे के वर्णों की टि संज्ञा होती है और इस टि संज्ञा का लोप होता है । यथा—मनस +

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईषा = मनीषा, हल + ईषा = हलीषा, लाङ्गल + ईषा = लाङ्गलीषा, कुल + अटा = कुलटा, पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः, सीमन् + अन्तः = सीमान्तः, सार + अङ्गः = सारङ्गः।

आकृति गणोऽयम्–स्वरूप या कार्य दर्शन से जो पहचाना जाय, उसे आकृति-गण कहते हैं, इसमें दीर्घ सन्धि का कार्य नहीं होता। यथा-मार्त + अण्डः = मार्तण्डः, सम + अर्थः = समर्थः।

२ **आद्गुणः**[1] ६।१।८७—अवर्ण से परे अच्–इ उ ऋ ऌ वर्ण हो तो पूर्व पर स्थान में एक गुणादेश होता है। यथा–

(क) अ + इ = ए—देव + इन्द्रः = देवेन्द्रः, उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः।
अ + ई = ए– पर + ईशः = परेशः, गण + ईशः = गणेशः।
आ + इ = ए—यथा + इच्छसि = यथेच्छसि, महा + इन्द्रः = महेन्द्रः।
आ + ई = ए—रमा + ईशः = + रमेशः, महा + ईश्वरः = महेश्वरः।

(ख) अ + उ = ओ—जन्म + उत्सवः = जन्मोत्सवः, सूर्य + उदयः = सूर्योदयः।
अ + ऊ = ओ—नव + ऊढा = नवोढा, एक + ऊनविंशति = एकोनविंशतिः।
आ + उ = ओ–गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्, महा + उरस्कः = महोरस्कः।
आ + ऊ = ओ—गङ्गा + ऊर्मिः = गङ्गोर्मिः, दया + ऊनः = दयोनः।

(ग) अ + ऋ = अर्—ब्रह्म + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः, देव + ऋषिः = देवर्षिः।
अ + ॠ = अर–उप + ॠकारीयति = उपर्कारीयति।
आ + ऋ = अर—महा + ऋषिः = महर्षिः, ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्मर्षिः।
आ + ॠ = अर—देवता + ॠकार = देवतर्कारः।

(घ) अ + ऌ = अल—तव + ऌकार = तवल्कारः।
आ + ऌ = अल्—आ + ऌकारः = आल्कारः।

गुणसन्धि के अपवाद–

१–अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् –(वा०) अक्ष शब्द से परे ऊहिनी शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में गुणादेश न होकर वृद्धि एकादेश होता है। यथा—अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी।

२–स्वादीरेरिणोः—(वा०) स्वशब्द से परे ईर का ईरिन् शब्द हो तो गुण न होकर वृद्धि होती है। यथा—स्व + ईरः = स्वैरः, स्व + ईरिणी = स्वैरिणी, स्व + ईरिन् = स्वैरी।

१—गुण सन्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३–प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु–(वा०) प्र उपसर्ग के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हों तो गुण न होकर वृद्धि होती है। यथा—प्र + ऊहः = प्रौढः, प्र + ऊढः = प्रौढः, प्र + एषः = प्रैषः, प्र + एष्यः = प्रैष्यः।

४–ऋते च तृतीया समासे–(वा०) अवर्ण से परे ऋत शब्द हो तो तृतीया समास में वृद्धि होती है। यथा—(सुखेन ऋतः) सुख + ऋतः = सुखार्तः। पर तृतीया समास से भिन्न समास में गुण होता है, यथा—परम + ऋतः = परमर्तः।

५–प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णवदशानामृणे–(वा०) प्रवत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दशा शब्द से परे यदि ऋण शब्द होता हो पूर्व पर (अ + ऋ) के स्थान में वृद्धि—अर् आदेश होता है। प्र + ऋणम् = प्रार्णम्, वत्सतर + ऋणम् = वत्सतरार्णम्, कम्बल + ऋणम् = कम्बलार्णम्, वसन + ऋणम् = वसनार्णम्, ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम्, दश + ऋणः = दशार्णः।

६—**उपसर्गादृतिधातौ** ६।१।९१—यदि उपसर्ग के अ या आ से परे धातु की ऋ हो तो पूर्व रूप के स्थान में वृद्धि—आर् होता है। यथा—प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति, उप + ऋच्छति—उपार्च्छति, प्र + ऋणोति = प्रार्णोति, प्र + ऋच्छन् = प्रार्च्छन्, उप = ऋच्छन् = उपार्च्छन्।

३ **वृद्धिरेचि**[1] ६।१।८८—अवर्ण से परे एच —ए ऐ ओ औ हो तो पूर्व—पर के स्थान में वृद्धि एकादेश—ऐ, औ, होता है। यथा—

(क) अ + ए = ऐ—कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्, एक + एकम् = एकैकम्।
अ + ऐ = ऐ - देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्, मत + ऐक्यम् = मतैक्यम्।
आ + ए = ऐ—सदा + एव = सदैव, यथा + एव = यथैव।
आ + ऐ = ऐ महा + ऐश्वर्यम् = महैश्वर्यम्, महा + ऐरावतः = महैरावतः।

(ख) अ + ओ = औ—दिव + ओकसः = दिवौकसः, तिल + ओदनम् = तिलौदनम्।
अ + औ = औ—कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्, तव + औदार्यम् = तवौदार्यम्।
आ + ओ = औ—गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः, महा + ओजः = महौजः।
आ + औ = औ—विश्वपा + औ = विश्वपौ, महा + औदार्यम् = महौदार्यम्।

एत्येधत्यूठसु ६।१।८९—अवर्ण से परे एजादि इण् धातु—एति, एध धातु—एधते तथा ऊठ् परे रहे तो वृद्धि होती है। यथा—
उप + एति = उपैति, उप + एधते = उपैधते, प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः।

वृद्धिसन्धि के अपवाद—

---

१ वृद्धि सन्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ **ओत्वोष्ठयोः समासे वा** (वा०)—यदि ओतु (बिल्ली) और ओष्ठ के ओ से पूर्व समास में अ या आ हो तो विकल्प से ओ या औ होता है। यथा—स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः या स्थूलौतुः, बिम्ब + ओठ = बिम्बोष्ठः या बिम्बौष्ठः।

२ **एवे चानियोगे** (वा०)—अकार से परे एव हो और अनियोग अर्थ हो तो दोनों के स्थान में एकार होता है। यथा—अद्य + एव = अद्यैव, नियोग—अवधारण अर्थ में अद्यैव।

३ **एङि पररूपम्** ६।१।९३—अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एकादेश—पूर्व वर्ण का लोप होता है। यथा—प्र + एजते = प्रेजते, उप + ओषति = उपोषति, प्र + एषयति = प्रेषयति।

४ **ओमाङोश्च** ६।१।९५—अवर्ण से परे ओम् अथवा आङ् हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है। यथा—शिवाय + ओन्नमः = शिवायोन्नमः, शिव + एहि = शिवेहि।

४ **इकोयणचि**[२] ६।१।७७—ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के परे, इनसे भिन्न कोई स्वर हो तो इसके स्थान पर य, उ के स्थाग पर व, ऋ के स्थान पर र् और लृ के स्थान पर ल होत है यथा—

इ + अ = य—दधि + अयनम् = दध्ययनम्, यदि + अपि = यद्यपि।

इ + आ = या—अभि + आगतः = अभ्यागतः, दधि + आनय = दध्यानय।

ई + अ = य—देवी + अर्थः = देव्यर्थः, देवी + अर्चा = देव्यर्चा।

ई + आ = या—मही + आलम्बनम् = मह्यालम्बनम्, देवी + आगच्छति = देव्यागच्छति।

इ + उ = यु—अति + उत्तमः = अत्युत्तमः, प्रति + उपकारः = प्रत्युपकारः।

इ + ऊ = यू—अति + ऊर्ध्वम् = अत्यूर्ध्वम्, प्रति + ऊहः = प्रत्यूहः।

ई + उ = यु—सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः, सुधी + उपासनम् = सुध्युपासनम्।

ई + ऊ = यू—स्त्री + ऊढा = स्त्र्यूढा, सखी + ऊढः = सख्यूढः।

इ + ॠ = यॄ—अभि + ॠकारः = अभ्यॄकारः, अति + ऋणम् = अत्यृणम्।

इ + ऋ = यृ—कुमारी + ऋतुमती = कुमार्यृतुमती, देवी + ऋषभः = देव्यृषभः।

इ + लृ = य—अति + लृकारः = अत्यलकारः।

इ + ए = ये—प्रति + एकार = प्रत्येकार।

ई + ए = ये—कृति + एधते = कृत्येधते, गौरी + एवम् = गौर्येवम्।

इ + ऐ = यै—अति + ऐश्वर्यम् = अत्यैश्वर्यम्, अति + ऐक्यम् = अत्यैक्यम्।

१—यह पररूप सन्धि में भी शामिल है। २—यण् सन्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ई + ऐ = यै—लक्ष्मी + ऐश्वर्यम् = लक्ष्म्यैश्वर्यम्, हस्ती + ऐरावतः = हस्त्यैरावतः ।

ई + ओ = यो—पचति + ओदनम् = पचत्योदनम्, दधि + ओदनम् = दध्योदनम् ।

ई + ओ = यो—सती + ओजः = सत्योजः, देवी + ओजः = देव्योजः ।

इ + औ = यौ—अपि + औदार्यम् = अप्यौदार्यम्, अति + औदास्यम् = अत्यौदास्यम् ।

ई + औ = यौ—प्रधी + औ = प्रध्यौ, सखी + औपम्यम् = सख्यौपम्यम् ।

उ + अ = व—अनु + अर्थम् = अन्वर्थम्, वस्तु + अत्र = वस्त्वत्र ।

ऊ + अ = व—वधू + अन्वेषणम् = वध्वन्वेषणम्, चमू + अवस्थानम् = चम्ववस्थानम् ।

उ + आ = वा—सु + आगतः = स्वागतः, लघु + आचारः = लघ्वाचारः ।

ऊ + आ = वा—वधू + आगमनम् = वध्वागमनम्, खलपू + आ = खलप्वा ।

उ + इ = वि—ऋतु + इक = ऋत्विक, लघु + इन्दुः = लघ्विन्दुः ।

उ + इ = वि—वधू + इच्छा = वध्विच्छा, तनू + इन्द्रः = तन्विन्द्रः ।

उ + ई = वी—अनु + ईक्षा = अन्वीक्षा, अघु + ईशः = अघ्वीशः ।

ऊ + ई = वी—चमू + ईशः = चम्वीशः, वधू + ईक्षणम् = वध्वीक्षणम ।

ऊ + ऋ = वृ—वसू + ऋणम् = वस्वृणम्, वधू + ऋणम् = वध्वृणम् ।

ऊ + ऋ = वृ—वधू + ऋतुः = वध्वृतुः ।

उ + लृ = व—मधु + लृतः = मध्वलृतः ।

उ + ए = वे—अनु + एजनम् = अन्वेजनम्, अनु + एषणम् = अन्वेषणम् ।

ऊ + ए = वे—वधू + एकत्वम् = वध्वेकत्वम्, वधू + एका = वध्वेका ।

उ + ऐ = वै—वस्तु + ऐक्यम् = वस्त्वैक्यम्, साधु + ऐक्यम् = साध्वैक्यम् ।

ऊ + ऐ = वै—वधू + ऐश्वर्यम् = वध्वैश्वर्यम्, तनू + ऐश्वर्यम् = तन्वैश्वर्यम् ।

उ + ओ = वो—तनु + ओकः = तन्वोकः, साधु + ओकः = साध्वोकः ।

ऊ + ओ = वो—चमू + ओघः = चम्वोघः, दृन्भू + ओषधिः = दृन्भ्वोषधिः ।

उ + औ = वौ—अनु + औषधम् = अन्वौषधम्, लघु + औदार्यम् = लघ्वौदार्यम् ।

ऊ + औ = वौ—पुनर्भू + औरसः = पुनर्भ्वौरसः, करभू + औडलौमिः = कारभ्वौडलौमिः ।

ऋ + अ = र—पितृ + अनुमति = पित्रनुमति, पितृ + अर्थम् = पित्रर्थम् ।

ऋ + आ = रा—मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा, मातृ + आकृतिः = मात्राकृतिः ।

ऋ + इ = रि—स्वसृ + इङ्गितम् = स्वस्रिङ्गितम्, मातृ + इच्छा = मात्रिच्छा ।

ऋ + ई = री—दुहितृ + ईहा = दुहित्रीहा, पितृ + ईहितम् = पित्रीहितम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋ + उ = रु—भर्तृ + उपदेशः = भत्रुपदेशः, पितृ = उदकम्=पित्रुदकम् ।

ऋ + ऊ = रू—भर्तृ + ऊढा=भत्रूढा, भ्रातृ + ऊनः = भ्रात्रूनः ।

ऋ + ए = रे—धातृ + एकत्वम्=धात्रेकत्वम्, धातृ + एवम् = धात्रेवम् ।

ऋ + ऐ = रै—भ्रातृ + ऐश्वर्यम् = भ्रात्रैश्वर्यम्, मातृ + ऐश्वर्यम् = मात्रैश्वर्यम् ।

ऋ + ओ=रो—यातृ + ओकः = यात्रोकः, जामातृ + ओकः = जामात्रोकः ।

ऋ = औ = रौ — पितृ + औदार्यम् = पित्रौदार्यम्, मातृ + औजसः = मात्रौजसः ।

लृ + अ = ल—लृ + अर्थम्=लर्थम् ।

लृ + आ=ला लृ + आकृतिः = लाकृतिः ।

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६।१।१२७

पदान्त का इक्— इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, लृ लॄ असवर्ण स्वर के परे विकल्प से ह्रस्व होता है । यथा—चक्री + अत्र=चक्रिअत्र, चक्र्यत्र ।

न समासे (वा०) समास में ह्रस्व नहीं होता है । यथा—वापी + अश्वः = वाप्यश्वः ।

मय उञो वो वा ८।३।३३—मय के परे उ के स्थान पर विकल्प से व् आदेश होता है । यथा किमु + उक्तमः = किम्वुक्तम्, किमु उक्तम् ।

ऋत्यकः ६।१।१२८—ऋकार के परे स्वर हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होता है । यथा ब्रह्म + ऋषि = ब्रह्मऋषिः—ब्रह्मर्षिः ।

समासेऽप्ययं प्रकृतिभावः (वा०) समास में भी विकल्प से प्रकृतभाव होता है । यथा—सप्त + ऋषीणाम् = सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम् ।

५ **एचोऽयवायावः**[1] ६।१।७८ —एच प्रत्याहार—ए ऐ ओ औ के बाद अच् प्रत्याहार—स्वर वर्ण हो तो एच के स्थान पर क्रमशः अय्, आय्, अव् और आव् हो जाते हैं । यथा—

ए + अ = अय—चे + अनम् = चयनम्, ने + अनम् = नयनम् ।

ऐ + अ=आय—नै + अकः = नायकः ।

ओ + अ = अव -यो + अनम्=यवनम् ।

औ + अ = आव —पौ + अकः=पावकः ।

ए + आ = अया—रमे + आ = रमया ।

ऐ + आ = आया—रै + आम् = रायाम् ।

ओ + आ = अवा—गो + आम् = गवाम् ।

औ + आ = आवा—ग्लौ + आ = ग्लावा ।

१—अयादि चतुष्टय सन्धि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए + इ = अयि -- शे + इतः = शयितः ।
ऐ + इ = आयि -- वै + इति = वायिति ।
ओ + इ = अवि -- पो + इत्रः = पवित्रः ।
औ + इ = आवि -- अभौ + इ = अभावि ।
ए + उ = अयु -- मृगे + उ = मृगयुः ।
ऐ + उ = आयु -- अस्मै + उद्धर = अस्मायुद्धर ।
ओ + उ = अवु -- अजुहो + उः = अजुहवुः ।
औ + उ = आवु -- द्वौ + उपमितौ = द्वावुपमितौ ।
ए + ए = अये -- कपे + ए = कपये ।
ऐ + ए = आये -- रै + ए = राये ।
ओ + ए = अवे -- धेनो + ए = धेनवे ।
औ + ए = आवे -- नौ + ए = नावे ।
ए + ऐ = अयै -- शे + ऐ = शयै ।
ऐ + ऐ = आयै -- कस्मै + ऐश्वर्यम् = कस्मायैश्वर्यम् ।
ओ + ऐ = अवै -- पटो + ऐः = पटवैः ।
ओ + ऐ = आवै -- द्वौ + ऐतिहासिकौ = द्वावैतिहासिकौ ।
ए + ओ = अयो -- विश्वे + ओः = विश्वयोः ।
ऐ + ओ = आयो -- रै + ओः = रायोः ।
ओ + ओ = अवो -- गो + ओः = गवोः ।
औ + ओ = आवो = नौ + ओः = नावोः ।
ए + औ = अयौ -- शे + औ = शयौ ।
ऐ + औ = आयौ = सखै + औ = सखायौ ।
ओ + औ = अवौ -- गो + औ = गवौ ।
औ + औ = आवौ -- नौ + औ = नावौ ।

लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९ – पदान्त य् या व् के पूर्व यदि अ अथवा आ रहे और पश्चात् कोई स्वर आवे तो य् और व् का विकल्प से लोप होता है । यथा--

हरे + इह = हरयिह या हर इह, विष्णो + इह -- विष्णइह -- विष्णविह सखे + आगच्छ = सख आगच्छ या सखयागच्छ, तौ + ईश्वरौ = ता ईश्वरौ या तावीश्वरौ, रवौ + अस्तङ्गते = रवा अस्तङ्गते -- रवावस्तङ्गते ।

वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७९ -- ओ और औ के परे ऐसा प्रत्यय आवे, जिसके आदि में य हो तो क्रम से अव् और आव् आदेश होता है । यथा--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गो + यम्=गव्यम् नौ + यम्=नाव्यम् ।

अध्वपरिमाणे च (वा०)—मार्ग परिमाण का बोध हो तो ओ के स्थान पर अवादेश होता है । यथा—

गो + यूतिः = गव्यूतिः, अन्यत्र गोयूतिः—बैलों का एक जोड़ा ।

अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३—यदि गो के बाद अकारादि शब्द हों तो गो शब्द के अन्तर्वर्ती ओकार के स्थान पर विकल्प से अवादेश होता है । यथा—

गो + अग्रम् = गवाग्रम् = गोऽग्रम् अथवा गो अग्रम्, गो + ईशः = गवेशः गो + अक्षः = गवाक्षः ।

इन्द्रे च ६।१।१२४—इन्द्र शब्द के परे रहते गो शब्दान्तर्गत ओ के स्थान पर अवादेश होता है । जैसे—

गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः ।

एङः पदान्तादति[1] ६।१।१०८—पद के अन्त में स्थित एङ्—ए और ओ के परे ह्रस्व अकार हो तो अकार का पूर्वरूप होता है । यथा—

हरे + अव=हरेऽव—हरेव, मुने + अत्र = मुनेऽत्र—मुनेत्र, विष्णो + अव = विष्णोऽव, गुरो + अत्र = गुरोऽत्र, सखे + अर्पय = सखेऽर्पय ।

७ जिस[2] प्रकार परवर्ण में मिल जाना पूर्वरूप कहलाता है, उसी प्रकार पूर्ववर्ण का परवर्ण में मिल जाना पररूप कहलाता है । पररूप सन्धि का कोई विशेष नियम नहीं है, यह कहीं गुण, कहीं वृद्धि और कहीं सवर्णदीर्घ के स्थान में भी होता है ।

एङि पररूपम् ६।१।९४—अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एकादेश होता । यथा—

प्र + एजते = प्रेजते, उप + ओषति = उपोषति, इह + एव = इहेव, आ + ओम् = ओम्, अघ + ओढा=अघोढा ।

गुण सन्धि के स्थान में पररूप सन्धि । यथा—ददा + उः = ददुः , पपा + उः = पपुः ।

सवर्ण दीर्घ सन्धि के स्थान में पररूप सन्धि । यथा—कुल + अटा = कुलटा ।

८ **दूराद्धूते च**[3] ८।२।८४—दूर से सम्बोधन में—नामोच्चारण कर पुकारने में प्रयुक्त वाक्य की टि को विकल्प से प्लुत भाव होता है । यथा आगच्छ कृष्ण ऽ अत्र गौश्चरति, सक्तून्पिब देवदत्त ३, हे ३ राम ।

१—पूर्वरूप सन्धि । २—पररूप सन्धि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५--प्लुत स्वर और प्रगृह्य संज्ञक का प्रकृति भाव होता है अर्थात् सन्धि कार्य नहीं होता। यथा---एहि कृष्ण ३ अत्र।

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११—स्वर वर्ण परे रहने पर द्विवचन में निष्पन्न--ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पद में सन्धि नहीं होती। यथा---हरी + एतौ = हरीएतौ, कवी + आगच्छतः = कवीआगच्छतः, विष्णू इमौ = विष्णू + इमौ गङ्गे + अमू = गङ्गे अमू, पचेते + इमौ, = पचेते इमौ, विद्य + इमे = विद्ये इमे, मले + इमे = माले इमे, मुनी + एतौ = मुनीएतौ।

अदसोमात्—१।१।१२-स्वर वर्ण परे रहने से अदस् शब्द निष्पन्न अमी अमू पद की सन्धि नहीं होती है। यथा-

अमी + ईशाः = अमी ईशाः, रामकृष्णवमू + आसाते = रामकृष्णावमू आसात, अमू अत्तः = अमू अत्तः, अमी + अश्वाः = अमी अश्वाः, अमू + अर्भकौ = अमू अर्भकौ।

ओत् १।१।१५-स्वर वर्ण परे रहने से ओकारान्त--अव्यय की सन्धि नहीं होती —प्रकृति भाव हो जाता है। यथा-

अहो + ईशाः = अहो ईशाः, अहो + आश्चर्यम् = अहो आश्चर्यम्।

निपात एकाजनाङ् १।१।१४—एक स्वर वाले निपात-अव्यय की सन्धि नहीं होती है। + यथा।-इ + इन्द्रः = इ इन्द्रः, उ + उमेश = उ उमेशः, अ + अच्युतः = अ अच्युतः, आ + एवं किलतत् आ एवं किलतत्।

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधौ च यः
एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्॥

अर्थ--आङ्--आ अव्यय की ईषत्-अल्प अर्थ होने से, क्रिया के साथ योग होने से तथा मर्यादा और अभिविधि अर्थ होने से सन्धि हो जाती है। यथा—

ईषत् अर्थ में-आ + उष्णम् = ओष्णम्—थोड़ा गर्म।

क्रिया के योग में-आ + इहि—ऐहि—आओ।

मर्यादा—सीमा अर्थ में—आ + अम्बुधेः = अम्बुधेः—समुद्र पर्यन्त।

अभिविधि—व्याप्ति अर्थ में-आ + एकदेशात् = ऐकदेशाम् व्याप्त कर।

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६—अवैदिक इति शब्द के परे सम्बुद्धि निमित्त ओकार का विकल्प से प्रगृह्य भाव होता है। यथा—

विष्णो इति = विष्णो इति—विष्णविति।

---

१ – प्राकृति भाव अन्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुशीलनी

१ Join the following words--निम्नाङ्कितों में सन्धि कीजिये।
अत्र + आसीत्, त्रिपुर + अरिः, प्रति + ईक्षणम्, भानु + उदयः, पितृ + ऋणम्, देव + इन्द्रः, गण + ईशः, तथा + इति, सदा + एव, शुभ्र + ऋषिः, गङ्गा + उत्तरम्, जन + एकता, जल + ओघः, प्र + ऋच्छति, सा + एव, प्र + एजते, उप + एति, विश्व + ऊहः, उप + ऋच्छन्, अव + एहि, कदा + ओढा, दधि + अत्र, वसु + इदम्, मधु + अत्र, मातृ + अर्थम्, चै + अकः, मुनि + ए, भौ + उकः, गो + यूतिः, गो + अयः, हरी + एतौ, हरे + अव, आ + एवम्, आ + इहि, आ + ऊणम्, आ + एवं नु मन्यते।

२ Disjoin the following words—निम्नाङ्कितों में सन्धिविच्छेद कीजिये।
गवाग्रम्, गवाक्षः, परोक्षः, अन्योन्यम्, रत्नाकरः, लक्ष्मीशः, महेन्द्रः, क्षितीशः, ऊरूद्भवः, तथेति, महोष्णम्, पञ्चैते, मैवम्, अर्पति, विश्वौहः, प्रैषयति, परार्त्तः, अवेहि, शिवेहि, नद्यम्बु, तन्वङ्गी, स्वागतम्, वध्वाचारः, मायुः, रायौ, भावुकः, कोऽपि, अत्याचारः, स्थूलौतु, एकैकम्, माले इमे, भयार्त्तः, उपयुक्तम्, भावितः, पवित्रः, धात्रेकत्वम्, दुहित्रीहा, चम्वोघः, वस्वृणम्, वध्विच्छा, सत्योजः, ऋत्विक्, प्रत्येकः, कृत्येवते, खलप्वा, वध्वतः, महोरस्कः, गवाः, नाव्यम्, पुरुषार्थः, ममात्मजः, वधूढा, पितृणम्, महेशः, गुरोऽत्र, यजन्ति, सीमन्त, पचति, ययुः, पपुः।

६ स्वरसन्धि किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं? सोदाहरण परिभाषा लिखिये।

४ अयादि चतुष्टय सन्धि को स्पष्ट कर यण् सन्धि का सोदाहरण स्वरूप लिखिये।

५ किन स्वरों की सन्धि में अन्तःस्थों का आदेश होता है और क्यों? सोदाहरण विवेचन कीजिये।

६ प्रगृह्य किसे कहते हैं और यह किन-किन अवस्थाओं में होता है। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

७ किन-किन स्थानों में सन्धि को नित्य माना गया है? पररूप और पूर्वरूप सन्धियों का क्या तात्पर्य है?

८ सन्धि और संयोग, सन्धि और समास एवं गुण और दीर्घ में क्या अन्तर है? वृद्धिसन्धि के पाँच उदाहरण लिखिये।

९ गुणसन्धि और वृद्धिसन्धि के अपवाद नियमों को लिखिये।

१० ईषदर्थे क्रियायोगे–इत्यादि कारिका की व्याख्या लिखिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यञ्जन-सन्धि

स्वर सन्धि के समान व्यञ्जन सन्धि के भेदों का वर्गीकरण करना सम्भव नहीं है। यत: व्यञ्जन वर्णों में परवर्ती स्वर और व्यञ्जनों के कारण अनेक प्रकार का विकार-परिवर्तन होता है। व्यञ्जन सन्धि के नियमों के निरूपण से ही उससे प्रमुख भेदों को अवगत किया जा सकेगा।

१ **स्तोः श्चुना श्चुः** ८।४।४०--सकार या तवर्ग का कोई व्यञ्जन शकार चवर्ग के किसी व्यञ्जन के योग में आता हो तो सकार और तवर्ग के स्थान में शकार और चवर्ग हो जाता है। यथा--

हरिस् + शेते = हरिश्शेते, रामस् चिनोति = रामश्चिनोति, सत् चित्=सच्चित् शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय, उत् + छिन्न:=उच्छिन्न:, उत् + ज्वल:=उज्ज्वल:, तत् + छवि:=तच्छवि:, एतद् + जलम् = एतज्जलम्, तद् + झनकार: = तज्झनकार:, महान् + जय=महाञ्जय:, गच्छन् + झटिति = गच्छञ्झटिति, + याच ना याच्ञा, यज् न:=यज्ञ:।

इस नियम का अपवाद--

विश् + न: = विश्न:, प्रश् + न = प्रश्न:।

२ **शात्** ८।४।४४--जब दन्त्य स्थानीय व्यञ्जन श् के बाद आते हैं तो उनके स्थान में चवर्ग के वर्ण नहीं होते। यथा--विश् + न: = विश्न:, प्रश् + न: = प्रश्न:।

३ **ष्टुना ष्टुः** ८।४।४१--जब स् अथवा टवर्ग के व्यञ्जन या ष् टवर्ग के किसी व्यञ्जन के योग में आते हैं तो स् के स्थान में ष् और तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाता है। यथा--

रामस् + षष्ठ: = रामष्षष्ठ:, रामस + टीकते=रामष्टीकते, तत् + टीका = तट्टीका, पेष् + ता=पेष्टा, चक्रिन् + ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे, अधिष् + थाता, अधिष्ठाता, उत् + डीन: = उड्डीन:, एतद् + ढक्का = एतड्ढक्का, महान् + डामर: = महाण्डामर:, आकृष् + त: = आकृष्ट:, षष् + थ:=षष्ठ:, प्रतिष् + था = प्रतिष्ठा।

४ **न पदान्ताट्टोरनाम्** ८।४।४२--पदान्त टवर्ग से परे नाम् प्रत्यय तथा नवति और नगरी शब्दों के नकार को छोड़ कर किसी भी तवर्ग वर्ण या सकार के स्थान में टवर्ग या षकार आदेश नहीं होता। यथा--

षट् + सन्त: = षटसन्त:, षट् + ते = षट् ते।

५ **अनाम्नवति नगरीणामिति वाच्यम् (वा०)**--

नाम्, नवति और नगरी शब्द के नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है। यथा --षट + नाम = षण्णाम्, षट + नवति: = षण्णवति:, षट् + नगर्य: षण्णगर्य:।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'न षदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र में 'पदान्त' इसलिए ग्रहण किया है कि ईड्+ते = ईट्टे में टवर्ग का निषेध न हो और टवर्ग से परे इसलिए कहा है कि निष्+तप्तम् = निष्टप्तम्, सर्पिष् तमम् = सर्पिष्टमम् में भी ष्टुत्व हो जाय।

६ **तोः षि** ८।४।४३—यदि तवर्ग के किसी वर्ण के उपरान्त ष आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता। यथा—सन्+षष्ठः = सन्षष्ठः।

७ **झलां जश् झशि** ८।४।५३—जब- झल-अन्तःस्थ और अनुनासिक व्यञ्जनों को छोड़कर अन्य किसी भी व्यञ्जन के पश्चात् झश—किसी वर्ग का तृतीय या चतुर्थ वर्ण आवे तो पूर्ववर्ती व्यञ्जन अपने वर्ग के तृतीय वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। यथा—एतत् दुष्टम् = एतद्दुष्टम्।

८ **झलां जशोऽन्ते** ८।२।३९—पदान्त में स्थित झल प्रत्याहार–स्वर वर्ण, वर्ग के चतुर्थ या तृतीय वर्ण या य र ल व परे रहने से जश प्रत्याहार– वर्ग का तृतीय अक्षर होता है। यथा—

वाक्+ईशः = वागीशः, चित्+रूपम् = चिद्रूपम्, दिक+अन्तः = दिगन्तः, वाक् +जालम् = वाग्जालम्, दिक+हस्ती = दिग्हस्ती, अच+अंन्तः = अजन्तः, जगत् +आदिः = जगदादिः, अप्+जम् = अब्जम्, तत्+धनम् = तद्धनम्, अप्+भाण्डः = अबभण्डः, षट्+विद्वांसः = षड्विद्वांसः, वाक्+दण्डः = वाग्दण्डः, उदक्+ अयनम् = उदगयनम्, अत्+अन्तः = अदन्तः।

९ **झयोहोऽन्यतरस्याम्** ।८।८।२—यदि किसी भी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ण से परे हकार हो तो उस वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय वर्ण और ह के स्थान में उसी वर्ग का चतुर्थ वर्ण विकल्प से होता है। यथा—

वाक्+हसति = वाग्घसति, अच्+हलः = अज्झलः, वाक्+हरिः = वाग्घरिः, तत् +हितम = तद्धितम्, विपत्+हेतुः = विपद्धेतुः, अच्+ह्रस्वः = अज्झ्रस्व, अप्+ हरणम् = अब्भरणम्, उत्+हरणम् = उद्धरणम्, तत्+हेयम् तद्धेयम्।

१० **उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य** ८।४।६१—उत् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ धातु के स् का लोप होता है। यथा—

उत्+स्थानम् = उत्थानम्, उत्+स्तम्नम् = उत्तम्भनम।

११ **खरिच** ८।४।५५—अनुनासिक और अन्तःस्थ वर्णों को छोड़ अन्य किसी भी व्यञ्जन के उपरान्त यदि खर—क् ख् च् छ् ट् ठ् त् थ् प् फ् में से कोई वर्ण आवे तो पूर्वोक्त व्यञ्जनों के स्थान में चर्—उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है। यथा—

भयाद्+करोति = भयात्करोति, वृक्षाद्+पतति = वृक्षात्पतति, दृशद्+पति =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इशत्पतति, उद्+थापकः = उत्थापकः, दिग्+पालः = दिक्पालः, विराड्+ +पुरुषः = विराट् पुरुषः ।

१२ **तोर्लि** ८।४।६० ल परे रहने पर त् और द् के स्थान में ल् और न के स्थान में सानुनासिक ल् होता है । यथा—

तत्+लयः = तल्लयः, तद्+लीनः = तल्लीनः, विद्वान्+लिखति = विद्वाँल् लिखति ।

१३ **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** ८।४।४५—पदान्त 'यर्' से परे अनुनासिक वर्ण हो तो 'यर' के स्थान में विकल्प से अपने वर्ग का अनुनासिक हो जाता है । यथा—

एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः, षट् + मासाः = षण्मासाः, दिक् + नागः— दिङ्नागः ।

१४ प्रत्यये भाषायां नित्यम् (वा०)—प्रत्यय पर में रहने पर नित्य ही पञ्चम वर्ण होता है । यथा—तत्+मात्रम् = तन्मात्रम् (मात्रच् प्रत्ययान्त) चित्+मयम् = चिन्मयम् (मयट् प्रत्ययान्त) ।

१५ **मोऽनुस्वारः** ८।३।२३—व्यञ्जन वर्ण पर हो तो पद के अन्त में स्थित म् के स्थान पर अनुस्वार होता है । यथा—हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे, गृहम्+गच्छति = गृहं गच्छति, ईश्वरम्+भजति = ईश्वरं भजति ।

१६ **मो राजि समः क्वौ** ८।३।२५—क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु से परे सम् के मकार के स्थान में मकार ही आदेश होता है—अनुस्वार नहीं होता । यथा—सम्+राट् = सम्राट् ।

१७ **हेमपरे वा** ८।३।२६—मकार परक हकार पर में होतो मकार के स्थान में विकल्प से अनुस्वार होता है । यथा—

किम्+ह्मलयति = किं ह्मलयति या किम् ह्मलयति ।

१८ यवल परे यवला वेति वक्तव्यम् (वा०) —यकार,वकार और लकार केपरे हकार के पूर्व पदान्त मकार के स्थान में विकल्प से क्रमशः सानुनासिक य् व् ल् हो जाते हैं । यथा—

किम्+ह्यः = कियँह्यः या किं ह्यः, किम्+ह्वलयति = किवँ ह्वलयति या किं ह्वलयति,किम्+ह्लादयति = किँल् ह्लादयति या किं ह्लादयति ।

१९ **नपरे नः** ८।३।२७—नकार परक हकार परे हो तो पदान्त मकार के स्थान में विकल्प से नकार होता है । यथा—किम्+ह्नुते = किन् ह्नुते, किं ह्नुते ।

२० **नश्चापदान्तस्य झलि** ८।३।२४—अपदान्त म् न् के बाद यदि अनुनासिक व्यञ्जन तथा अन्तःस्थ और ह को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो म् और न् के स्थान में अनुस्वार होता है । यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते, रम + स्यते = रंस्यते, यशान् + सि = यशांसि, दन् + शनम् ॥ दंशनम् ।

२१ **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** ८।४।५८ पद के मध्य में स्थित अनुस्वार बाद जिस वर्ग का वर्ण रहता है, अनुस्वार के स्थान में उसी वर्ग का पञ्चम वर्ण होता है। यथा—

आशं + कते = आशङ्कते, पं + फुल्यते = पम्फुल्यते, अं + चितः = अञ्चितः अं + चितः = अङ्कितः, शां + तः = शान्तः, वां + छति = वाञ्छति ।

२२ **वा पदान्तस्य** ८।४।५९—यदि अनुस्वार पद के अन्त में हो तो वर्ग का पञ्चम वर्ण विकल्प से होता है तथा पर में य् ल् व् हों तो क्रमशः अनुनासिक विशिष्ट य्, ल्, व् होते हैं। यथा—

त्वं + करोषि = त्वङ्करोषि—त्वं करोषि, पुस्तकं + पठति = पुस्तकम्पठति—पुस्तकं पठति, सं + यन्ता = सयँयन्ता-संयन्ता, यं + लोकम् = यलँलोकम्-यंलोकम्, वशं + वदः = वशवँवदः-वशंवदः, सम् + वत्सरः = सवँवत्सरः ।

२३ **ङ्णोः कुक् टुक् शरि** ८।३।२८—श्, ष्, स् परे रहने से ङ् या ण् के आगे क्रमशः कुक् या टुक् का आगम होता है।

२४ **चयोद्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्** (वा०)—पौष्करसादि आचार्य के मत में चय् प्रत्याहार को वर्ग के द्वितीय अक्षर होते हैं।

यथा—प्राङ् + षष्ठः = प्राङ् क् षष्ठः (क् + षः) = क्ष, प्रङ्क्षष्ठः, वर्ग का द्वितीय अक्षर करने पर प्राङ्ख् षष्ठः; सुगण् + षष्ठ = सुगण् ट् षष्ठः, वर्ग का द्वितीय अक्षर करने पर सुगण् ठ् षष्ठः और विकल्पाभाव में सुगण् ट् षष्ठः ।

२५ **डः सि धुट्** ८।३।२९—डकार से परे सकार को विकल्प के धुट् का आगम होता है। षड् + सन्तः = षट् ध् सन्तः = षट्त्सन्तः ।

२६ **नश्च** ८।३।३०—नकारान्त शब्दों से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है। यथा-सन् + सः = सन् ध् सः = सन्त्सः ।

२७ **शितुक्** ८।३।३१—पदान्त नकार को शकार के परे रहने से विकल्प से तुक् का आगम होता है।

२८ **शश्छोऽटि** ८।४।६३—झय् प्रत्याहार से परे शकार के स्थान में विकल्प से छकार होता है। यथा—

सन् + शम्भुः = सन् + त् + शम्भुः = सन् + च् + शम्भुः = सन् + च् + छम्भुः = सञ्च्छम्भुः-सञ्छम्भुः-सञ्चशम्भुः सञ्शम्भुः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९ **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्** ८।३।३२—पदान्त ङ्, ण्, न् के पूर्व में ह्रस्व स्वर और परे कोई स्वर हो तो उक्त वर्णों को द्वित्व हो जाता है। यथा—प्रत्यङ् +आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः, सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः धावन् + अश्वः = धावन्नश्वः, हसन् + आगतः = हसन्नागतः।

३० **समः सुटि** ८।३।५—सुट् (स्) परे होने से सम के मकार के स्थान में रु (र्) होता है।

३१ **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** ८।३।२—इस 'रु' के प्रकरण में रु के पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है।

३२ **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** ८।३।४—अनुनासिक को छोड़ रु से पूर्व वर्ण के परे अनुस्वार का आगम होता है।

३३ **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** ८।३।१५—खर प्रत्याहार परे अवसान में पदान्त के रकार को विसर्ग होता है।

३४ **सम्पुंकानां सो वक्तव्यः** (वा)–सम्, पुम् और काम् इन तीनों शब्दों के म्, म और न् के स्थान में रेफ हुआ हो और उस रेफ का विसर्ग किया गया हो तो विसर्ग के स्थान पर नित्य सकार होता है। यथा—
सम् + कर्त्ता = सँस्कर्त्ता,सस्स्कर्त्ता सम् + कारः = सँस्कारः–संस्कारः।

३५ **पुमः खय्यम्परे** ८।३।६—अम् परक खय् पर में होने पर पुम् के मकार के स्थान में रु (र्) होता है। यहाँ पर भी सन्धि कार्य में संस्कर्त्ता के समान ३१ ३२, ३३ और ३४ वें सूत्र के अनुसार कार्य होता है। यथा–
पुम + कोकिलः = पुँस्कोकिलः–पुंस्कोकिलः; पुम् + खनित्रम् = पुँस्खनित्रम्–पुंख-नित्रम, पुम् + चरित्रम् = पुँश्चरित्रम्-पुंश्चरित्रम्, पुम् + टीका = पुँष्टीका-पुंष्टीका।

३६ **नश्छव्यप्रशान्** ८।३।७–पदान्त न् के स्थान में च्, छ् परे रहने से अनुस्वार और श्; ट्, ठ् परे रहने से अनुस्वार और ष् एवं त् थ् परे रहने से अनुस्वार और स् होते हैं। यथा–
पश्यन् + चकितः = पश्यँश्चकितः–पश्यंश्चकितः; चलन् + टिट्टिभिः = चलँष्टिट्टिभिः—चलंष्टिट्टिभिः, पतन् + तरुः = पतँस्तरुः—पतंस्तरुः, महान् + छेदः = महाँश्छेदः–महांश्छेदः, महान् + टीकाकारः = महाँष्टीकाकारः—महांष्टीकाकारः, चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिँस्त्रायस्व–चक्रिंस्त्रायस्व।

३७ **नॄन्पे** ८।३।१०–यदि नकार परे हो तो नॄन् के नकार को विकल्प से रु (र्) होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३८ **कुप्वोः ̆क ̆पौ च** ८।३।३७—कवर्ग या पवर्ग परे हो तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से अर्ध विसर्ग ̆ होता है। सत्व होने पर 'नश्छव्यप्रशान्' सूत्र से अनुनासिक या अनुस्वार होने के पश्चात् रेफ का विसर्ग होता है और विसर्ग होने पर ३८ वें सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यथा—

नॄन्+पाहि = नॄँ ̆पाहि या नॄ ̆ या नॄः पाहि या नॄः पाहि।

३९ **कानाम्रेडितम्** ८।३।१२—आम्रेडित—दो वार आये हुए कान् शब्द के नकार के स्थान में रु होता है। इस विधि में सन्धि+सम्बन्धी अन्य कार्य ३२, ३३ और ३४ वें सूत्र के द्वारा सम्पन्न होते हैं। यथा—

कान्+कान् = काँस्कान्—कांस्कान्

पदान्त न निम्न स्थितियों में अविकृत रहता है।—

१ स्वरों से पूर्व, यथा—तान्+उवाच = तानुवाच।

२ कवर्ग और ह् से पूर्व; यथा—बुद्धिमान्+कथयति = बुद्धिमान् कथयति, तान्+हत्वा = तान् हत्वा।

३ पवर्ग के पूर्व-यथा—एतान् पाशान् भिनत्ति।

४ तवर्ग के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण से पूर्व यथा—राजपुत्रान् नयति।

५ अन्तःस्थों से पूर्व हंसान् रक्ष।

४० **छे च** ६।१।७३—ह्रस्व से परे छकार हो तो ह्रस्व स्वर को तुक् (त्) आगम होता है।

४१ **आङ्माङोश्च** ६।१।७४—आङ् और माङ् से परे छकार हो तो तुक् (त्) का आगम होता है।

४२ **दीर्घात्** ६।१।७५—दीर्घ से परे छकार हो तो तुक् (त्) का आगम होता है।

४३ **पदान्ताद्वा** ६।१।७६—पदान्त दीर्घ स्वर से परे छकार हो तो विकल्प से तुक् (त्) का आगम होता है।

उपर्युक्त सूत्रों से तुक् (त्) होने के उपरान्त त् को श्चुत्व होकर च होता है अर्थात् स्वर वर्ण के वाद 'छ' रहने से छ के स्थान में 'च्छ' हो जाता है यथा—

शिव+छाया = शिवच्छाया, आ+छादयति = आच्छादयति, मा+छिदत् = माच्छिदत्, सेनासुरा+छाया = सेनासुराच्छाया, लक्ष्मी+छाया = लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मीछाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुशीलनी

१ Join the following words--निम्नांकितों में सन्धि कीजिये ।

कृष्णस् + शेते, सत् + चित्रम्, तपस् + चिनोति, तद् + छविः, विपद् + जलम्, तत् + टीका, एतद् + मुरारिः, धीमान् + जय, राज् + ना, देवस् + टीकते, तत् + टीका, इष् + तः, पष् + थः, दिक् + अम्बरः, षट् + दर्शनम् , क्षुध् + श्याम् , अप् + जम् अच् + हलौ, दिक् + हस्ती, वाक् + हरिः, उद् + स्थानम्, भेद् + तुम्, अप् + नायकः, देवम् + भजति, पयान् + सि, जिघान् + सति, रामस् + षष्ठः, तत् + ठक्कुरः, चक्रिन् + डौकसे, महान् + डमरुः, अग्निचित् + ठकारः, तत् + भवनम, तादृक् + इति, तत् + भूतिः, जलमुक् + आघातः, विपद् + हानिः, पश्यन् + चलति, दोह् + धा, बोध् + धा, धीमान् + ठक्कुरः, महान् + चयः, सुगुण् + इति, पश्यन् + उवाच, हसन् + आगतः, हसन् + अवदत्, सम् + कर्त्ता, किम् ह्यः, पुम् + कोकिलः, पुम् + छविः, प्रत्यङ् + आस्ते, मनाक् + शूरः, जगत् + शान्तिः, अच् + शेषद्, तरु + छाया, मा + छिदत्, विद्युत् + लेलायते, भवान् + लक्षयति, भवान् + सनोति ।

२ Disjoin the following words निम्नांङ्कितों में सन्धि-विच्छेद कीजिए । देवाश्चिनोति, महच्चक्रम्,शरच्छटा, जगज्जीवनम्, राज्ञी, यज्ञः, देवष्षष्ठः, वृक्षष्टीकते, उड्डयनम, द्रष्टः, पुष्टः रामष्टीका, आकृष्टः, षडाननः, जगदीशः, अब्जम् वाग्दानम्, अब्भाजनम्, तद्विभूतिः, तद्धितम, वागरिः, तन्नवनम्, सुगणास्ते, धावन्नपतत्, एकस्मिन्नहनि, उत्तम्भते, एतल्लयः, जगन्निस्सार, कुण्ठितः, क्षन्तव्यम्, ग्रामं शास्ति, तं हन्ति, शम्भुः, शिशूच्छादयति, संस्करोति, महाँश्छेदः, भास्वाँश्चन्द्रः, पुंश्चमत्कारः, पुंस्कोकिलः, पुंष्टिटिभिः हसन्नागतः, यावच्छक्यम्, वृक्षच्छाया, स्वच्छायः, अग्निचिल्लुनाति, विद्युल्लेलायते, वष्टनम्, कण्टनम्, अञ्चनम्, अन्तितः, चण्डः, चम्पनस्, इच्छति, स्वच्छन्दः, ह्लाच्छति, आच्छादनम्, आच्छाया, विश्नः, षण्णवतिः, इट्टे, सपिष्टमम्, चिन्मयम्, लब्धः, लिप्सा, पयस्पाशम्, यशस्कल्पम् क खनति, सुप्तश्शिशुः, क ५लति ।

३ ष्टुत्व, और श्चुत्व का क्या तात्पर्य है ? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण लिखिये ।

४ तुक्, टुक् और कुक् का आगम किन-किन स्थितियों में होता है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये ।

५ नकार और भकार के स्थान पर सकार कब और कहाँ होता हैं, सोदाहरण लिखिये ।

६ पदान्त न् के स्थान पर विधीयमान सानुस्वार श् ष् और स् की स्थिति को उदाहरण-पूर्वक समझाइये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७ वर्ग के प्रथम वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ण किन-किन स्थितियों में होता है, सोदाहरण समझाइये ।

८ स्था धातु के स् का लोप किस स्थिति में होता है ? उदाहरण सहित प्रतिपादन कीजिये ।

९ व्यञ्जन सन्धि में तवर्गीय अनुनासिक अन्त्य न् किन-किन अवस्थाओं में अविकृत रहता है, सोदाहरण लिखिये ।

१० पदान्त दन्त्य न् का अन्य वर्णों से पूर्व क्या-क्या विकार होता है, सोदाहरण लिखिये ।

११ पदान्त म् किन-स्थितियों में अविकृत रहता है ? पदान्त म् के अनुस्वार होने का क्या नियम है ? सोदाहरण लिखिये ।

१२ यदि र् से आगे र् हो तो र् और पूर्ववर्ती स्वर की क्या स्थिति रहती है, सोदाहरण लिखिये ।

विसर्ग-सन्धि

विसर्ग दो प्रकार के होते हैं --सजात और रजात ।

(१) शब्द (२) विभक्ति और (३) प्रत्यय सम्बन्धी सकार के स्थान में र् होकर जो विसर्ग कहते हैं । यथा–

(१) निस् = निः, दुस = दुः, उच्चैस् = उच्चैः, पयस् = पयः ।

(२) रामस् = रामः, देवस् = देवः, देवैस् = देवैः, कृष्णस् = कृष्णः ।

(३) एकादशस् = एकादशः, बहुशस् = बहुशः ।

(१) स्वाभाविक और ऋकारस्थानिक 'र्' के स्थान में जो विसर्ग होता है, उसे रजात विसर्ग कहते हैं । यथा–

(१) स्वर् = स्वः, अन्तर् = अन्तः, प्रातर् = प्रातः, पुनर् = पुनः, निर् = निः, पुर = पुः, दुर = दुः ।

(२) गीर् = गीः, पूर = पूः, मातर् = मातः, पितर् = पितः, भ्रातर् = भ्रातः, दुहितर् = दुहितः । कहीं-कहीं न् के स्थान में भी विसर्ग होता है । यथा–अहन् = अहः ।

विसर्ग सन्धि का विकार–परिवर्तन निम्न छः प्रकार का होता है ।

(१) विसर्ग के स्थान पर श, ष् और स् होता है । यथा—पूर्णः + चन्द्रः = पूर्णश्चन्द्रः, भीतः + टलति = भीतष्टलति, विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता ।

(२) विसर्ग के स्थान पर रेफ होता है । यथा—निः + धनः = निर्धनः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) विसर्ग के स्थान पर उकार होता है, जो अकार के साथ मिलकर ओकार हो जाता है। यथा—नूतन: + घट: = नूतन + उ + घट: = नूतनोघट:।

(४) विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय और उपध्मानीय होता है। यथा—क: + करोति = क ᳵकरोति, क: + पचति = क ᳶपचति।

(५) विसर्ग के स्थान पर य् होता है; और विकल्प से य् का लोप होता है। यथा—देवा: + इह = देवा य् इह + देवायिह = देवा इह।

(६) विसर्ग का लोप होता है, यथा—नर: + इव = नर इव।

विसर्ग-सन्धि के नियम—

१ **विसर्जनीयस्य स:** ८।३।३४—विसर्ग के स्थान में च् छ् परे रहने से श्, ट् ठ् परे रहने से ष् और त् थ् परे रहने से स् होता है। यथा—
पूर्ण: + चन्द्र: = पूर्णश्चन्द्र:, तरो: + छाया = तरोश्छाया, भीत: + टलति = भीतष्टलति राम: + टीकते = रामष्टीकते, निम्ब: + तरु: = निम्बस्तरु:, विष्णु: + त्राता = विष्णुस्त्राता।

२ **वा शरि** ८।३।३६—यदि विसर्ग के बाद श्, ष् और स् आवे तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से श्, ष् और स् होता है। यथा—
सुप्त: + शिशु: = सुप्तश्शिशु:—सुप्त: शिशु:, हरि: + शेते = हरिश्शेते—हरि: शेते, मत्त: + षट्पद: = मत्तष्षट्पद:—मत्त: षट्पद:, प्रथम: + सर्ग: = प्रथमस्सर्ग:—प्रथम: सर्ग।

३ **कुप्वो: ᳵक ᳶपौ च** ८।३।३७—यदि विसर्ग के बाद क ख प फ में से कोई वर्ण आवे तो विसर्ग के स्थान में या तो विसर्ग ही बना रहता है अथवा क ख के आगे रहने पर जिह्वामूलीय (ᳵ) तथा प फ के आगे रहने पर उपध्मानीय (ᳶ) हो जाता है। यथा—
क: + करोति = क ᳵ करोति या क: करोति, क: + खनति = क ᳵ खनति या क: खनति, क: + पचति = क ᳶ पचति या क: पचति, क: + फलति = क ᳶ फलति, अथवा क: फलति।

४ **सोऽपदादौ** ८।३।३८—अपदादि में क ख प फ के परे रहने पर विसर्ग का दन्त्य स् होता है।

५ पाशकल्पकाम्येष्विति वाच्यम् (वा०)—पाश, कल्प और काम्य शब्द परे रहने पर ही विसर्ग को स् होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पयः + पाशम् = पयस्पाशम्, यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम्, यशः + कम् = यशस्कम्; यशस्कम्, यशः + काम्यति + यशस्काम्यति ।

अनव्ययस्येति वाच्यम् (वा०) अव्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में 'स्' नहीं होता । यथा—प्रातः + कल्पम् ।

७. काम्ये रोरेवेति वाच्यम् (वा०)—काम्य प्रत्यय के परे रजात विसर्ग के स्थान में 'स' नहीं होता । यथा—गीः + काम्यते = गीः काम्यते ।

८ **इणः सः** ८।३।३९—पाशादि प्रत्यय के परे इण् से पर में स्थित विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य 'ष्' होता है । यथा—सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम्, सर्पिः + कल्पम् = सर्पिष्कल्पम ।

९ **इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य** ८।३।४१—क् ख् प् फ् के परे इकार और उकार उपधा—अप्रत्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य ष् होता है । यथा—निः + कृतम् = निष्कृतम्, दुः + कृतम् = दुष्कृतम्, बहिः + कृतम् = बहिष्कृतम्, निः + फलः = निष्फलः ।

१० **इसुसोः सामर्थ्ये** ८।३।४४—क् ख् प् फ् के परे इस् और उस् भागान्त शब्द के स्थान में विकल्प से मूर्धन्य ष होता है । यथा—
सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति या सर्पिः करोति, धनुः + करोति = धनुष्करोति अथवा धनुः करोति ।

११ **नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य** ८।३।४५—समास में क ख अथवा प फ के परे अनुत्तरपदस्थ इस् और उस् भागान्त शब्द के विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य ष् होता है । यथा—
सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका, हविः + कुण्णम् = हविष्कुण्डम्, धनुः + खण्डम् = धनुष्खण्डम्, धनुः + काण्डम् = धनुष्काण्डम्, धनुः + पाणिः = धनुष्पाणिः, धनुः + कपालम् = धनुष्कपालम् ।

१२ **द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोर्थे** ८।३।४३—पौनःपुन्य वाचक द्विः, त्रिः और चतुः क्रियाविशेषण अव्ययों के बाद क् ख प् फ् आवें तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से मूर्धन्य ष् होता है । यथा—
द्विः + करोति = द्विष्करोति या द्विः करोति; त्रिः + खादति + त्रिष्खादति या त्रिः खादति, चतुः + पठति = चतुष्पठति या चतुः पठति ।

१३ **अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य** ८।३।४६—समास में कृ और कम् धातु निष्पन्न पद—कार, कर, काम, कान्त तथा कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा कर्णी शब्द पर में रहने से अकार से पर अव्यय सम्बन्ध भिन्न विसर्ग के स्थान में दन्त्य 'स्' होता है। यथा—

अयः + कारः = अयस्कारः, श्रेयः + कारः = श्रेयस्कारः, अयः + कामः = अयस्कामः अयः + कान्तः = अयस्कान्तः, अयः + कंसः = अयस्कंसः, पयः + कुम्भः = पयस्कुम्भः, पयः + पात्रम् = पयस्पात्रम्, अयः + कुशाः = अयस्कुशाः, अयः + कर्णी = अयस्कर्णी।

१४ **नमस्पुरसोर्गत्योः** ८।३।४०—क ख प फ के परे गति संज्ञक नमस् और पुरस् शब्द सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में दन्त्य 'स्' होता है। यथा—

नमः + करोति = नमस्करोति, नमः + कार = नमस्कारः, पुरः + करोति = पुरस्करोति।

१५ **तिरसोऽन्यतरस्याम्** ८।३।४२—क ख प फ के परे तिरस् शब्द सम्बन्धी विसर्ग के स्थान पर विकल्प से 'स्' होता है। यथा—

तिरः + करोति = तिरस्करोति या तिरःकरोति।

१६ **अधः शिरसी पदे** ८।३।४७—पद के परे रहने से अधस् और शिरस् शब्द के विसर्ग के स्थान में दन्त्य स् होता है। यथा—

अधः + पदम् = अधस्पदम्, शिरः + पदम् = शिरस्पदम्।

१७ **ससजुषो रुः** ८।२।६६—पदान्त सकार तथा सजुष् शब्द के षकार के स्थान में रु (र्) होता है। अभिप्राय यह है कि विसर्ग के पहले अ आ को छोड़ कर दूसरा कोई स्वर हो और विसर्ग से परे स्वर वर्ण, वर्ग का तृतीय चतुर्थ या पञ्चम वर्ण अथवा य् र् ल् व् ह् हों तो विसर्ग के स्थान में र् होता है। यथा—

कविः + अयम् = कविरयम्, रविः + उदेति = रविरुदेति, निः + धनः = निर्धनः, वायुः + वाति = वायुर्वाति, शिशुः + हसति = शिशुर्हसति, निः + झरः = निर्झरः, निः + गुणः = निर्गुणः, निः + यातः = निर्यातः, निः + वचनम् = निर्वचनम्, निः + अर्थः = निरर्थः।

१८ **अतोरोरप्लुतादप्लुते** ६।१।११३—अप्लुत अत् के परे रु (र्) के स्थान में उकार होता है। अभिप्राय यह है कि विसर्ग के पहले अ और विसर्ग के स्थान में ओकार होता है। यथा—

शिवः + अर्च्यः = शिवरु + अर्च्यः = शिवर + अर्च्यः = शिव उ अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः, यशः + अभिलाषी = यशोऽभिलाषी, नरः × अयम् = नरोऽयम्, वेदः + अधीतः = वेदोऽधीतः देवः + अयम् = देवोऽयम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९ **हशि च** ६।१।११४—हश्—वर्ग का तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण, य र ल व और ह के परे रहने पर अप्लुत—अकार से पर रु सम्बन्धी र् के स्थान पर उ होता है। तात्पर्य यह है कि यदि विसर्ग के पहले अ और विसर्ग का तृतीय, चतुर्थ पञ्चम वर्ण अथवा य् र् ल् व् ह् हों तो अ और विसर्ग के स्थान में ओ हो जाता है। यथा—

शोभनः+गन्धः=शोभनो, गन्धः, नूतनः+घटः=नूतनो घटः, देवः+गच्छति=देवो गच्छति, कृष्णः+जयति=कृष्णो जयति, मधुरः+झङ्कारः=मधुरो झङ्कारः, सुन्दर+डमरुः=सुन्दरो डमरुः, कसन्तेभ्यः+णः=कसन्तेभ्योणः, निर्वाणः+दीपः=निर्वाणो दीपः, मृगः+धावति=मृगो धावति, मनः+भावः=मनोभावः, नरः+याति=नरोयाति, मनः+रथः=मनोरथः, यशः+लभते=यशोलभते, बालः+हसति=बालो हसति, शीतः +वायुः=शीतो वायुः।

२० **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** ८।३।१७—यदि स या विसर्ग के स्थान में आदिष्ट रु के पूर्व भो, भगो, अघो और अ हों तो उसके अनन्तर अश् प्रत्याहार—कोई स्वर या मृदु व्यञ्जन हो तो रु के स्थान में यकार आदेश होता है।

२१ **हलि सर्वेषाम्** ८।३।२२—हल् प्रत्याहार के परे भो, भगो, अघो और अ हो तो यकार का लोप होता है। निष्कर्ष यह है कि भोः, भगोः और अघोः के विसर्ग से पहले अ और विसर्ग के बाद अ को छोड़ अन्य स्वर हो तो विसर्ग का लोप होता है। यथा—

भोः+देवाः=भोर्+देवाः=भो य् देवाः=भो देवाः, भगोः+नमस्ते=भगो-नमस्ते, अघोः+याहि=अघो याहि, कुतः+आगतः=कुत आगतः, नरः+इव=नर इव, देवः+इह=देव इह, ब्राह्मणः+आगतः=ब्राह्मण आगतः, रामः+एति=राम एति। पक्षान्तर में देवयिह, ब्राह्मणयागत, रामयेति, नरयेव।

२२ विसर्ग के पहले आ और विसर्ग से परे स्वर वर्ण; वर्ग का तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण अथवा य र् ल् व् ह् हो तो विसर्ग का लोप होता है। यथा—
अश्वाः+अमी=अश्वा अमी, हताः+गजाः=हता गजाः, अश्वाः+धावन्ति=अश्वा+धावन्ति, उन्नताः+नगाः=उन्नता नगाः, नराः+लभन्ते=नरा लभन्ते, वाताः+वान्ति=वाता वान्ति, बालकाः+हसन्ति=बालका हसन्ति।
स्वर वर्ण परे रहने से पक्षान्तर में विसर्ग के स्थान पर य् होता है; यथा—
गजाः+इमे=गजायिमे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपवाद:—

पुन:, प्रात:, अन्त:, दु:, नि:, प्रभृति शब्दों से तथा ऋकारान्त शब्दों के सम्बोधन एकवचन के रजात विसर्ग का न तो लोप होता है और न पूर्वस्थित अ के साथ मिलकर ओ होता है; किन्तु 'जलतुम्बिकान्यायेन' रेफ का ऊर्ध्व-गमन हो जाता है। यथा—

प्रात: + गमनम् = प्रातर्गमनम्, पुन: + धर्म: = पुनर्धर्म:, नि: + जलम् = निर्जलम्, दु: + झनत्कार: = दुर्झनत्कार, पुन: + अपि = पुनरपि, प्रात: + एव = प्रातरेव, स्व: + गत: = स्वर्गत:, दु: + गमनम् = दुर्गमनम्।

२३ **रोऽसुपि** ८।२।६९—यदि अहन् शब्द से परे विभक्तियों को छोड़कर कोई स्वर या मृदु व्यञ्जन आवे तो नकार के स्थान में रेफादेश होता है। यथा—

अहन् + अह: = अहरह:, अहन् + गण: = अहर्गण:।

२४ **रोरि** ८।३।१४—रेफ के परे रेफ का लोप होता है।

२५ **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण:** ६।३।१११ र् के बाद र् आवे और ढ् के बाद ढ् आवे तो र् और ढ् का लोप हो जाता है और पूर्व में आये हुए अ, इ, उ यदि ह्रस्व हों तो वे दीर्घ हो जाते हैं। यथा—

पुन: + रमते = पुनर् रमते = पुना रमते, हरि: + रम्य: = हरिर् रम्य: = हरी रम्य:, शम्भु: + राजते = शम्भू राजते, अन्त: + राष्ट्रीय: = अन्ताराष्ट्रीय:, हरि: + रक्षति = हरी रक्षति, गुरु: + रुष्ट: = गुरू रुष्ट:, नि: + रस: = नीरस:, नि: + रोग = नीरोग:, विधु: + राजते = विधू राजते।

२६ **एतत्तदो: सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** ६।१।१३२—नञ् समास को छोड़कर हल् प्रत्याहार के परे ककार रहित एतद् और तद् शब्द सम्बन्धी विसर्ग का लोप होता है। अभिप्राय यह है कि अ को छोड़ अन्य किसी वर्ण के परे रहने से स: और एष: के विसर्ग का लोप होता है और लोप होने पर फिर सन्धि नहीं होती। यथा—

स: + आगत: = स आगत:, स: + गच्छति = स गच्छति, एष: + आयति = एष आयाति, एष: + बालक: = एष बालक:।

२७ **अको: किम्। अनञ्समासे किम्।** क प्रत्यय तथा नञ् समास होने पर स: और एष: के विसर्ग का लोप नहीं होता। यथा—

न स:–अस: शिव:, एषक: + रुद्र: = एषको रुद्र:।

२८ **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** ६।१।१३४—लोप होने से ही यदि पद के पाद की पूर्ति होती हो तो स्वर के परे रहने पर स: के विसर्ग का लोप होता है तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विसर्ग लोप होने पर सन्धि भी हो जाती है। यथा—
सः एष दाशरथी रामः = सैष दाशरथी रामः।

अतिरिक्त सन्धि-प्रयोग :—

विद्वस् + जनः = विद्वज्जनः, पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः, पुम् + चकारः = पुंश्चकारः, भुवःर्लोकः + लोकः = भुवर्लोकः, अहः + रात्रः = अहोरात्रः।

२९ अ से परे विसर्ग का लोप होता है, जब कि उससे परे ह्रस्व अ को छोड़ अन्य कोई भी स्वर हो। यथा—
कः + आस्ते = क आस्ते, यः + ईशः = य ईशः, सः + उत्सवः = स उत्सवः, वः + ऋषिः = व ऋषिः, सूर्यः + एकः = सूर्य एकः, सः + ऐक्षतः = स ऐक्षतः, यतः + औषधिः = यत औषधिः।

३० अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः (वा०)—अहर् और स्वर् का पति के साथ समास में विकल्प से र् बना रहता है। यथा—
अहः + पतिः = अहर्पतिः—अहः पतिः, स्वः + पतिः = स्वर्पतिः—स्वः पतिः।

अनुशीलनी

१ Join the following words with rules—सनियम सन्धि कीजिये।
सुप्तः + शिशुः, गौः + गच्छति, सः + अहम् , मा: + भिः, वायुः + चलति, उन्नतः + तरुः, धनुः + टङ्कारः, वामः + हस्तः, एषः + रोदिति, शिष्यः + अत्र, निः + कण्टकम्, निः + क्रयः, निः + पापः, निः + फलम् , दुः + कर्म, दुः + फलम्, निः + चयः, निः + छलः, निः + तारः, मनः + गतः, नरः + याति, पयः + दः, अश्वः + धावति, मनः + लयः, मनः + तीतः, मनः + अवधानम्, धर्मः + अनुष्ठेयः, निः + गुणः, निः + णयः, निः + आकारः, निः + ईहः, कः + आस्ते, वः + ऋषिः, सः + गच्छति, भुवः + लोकः, सूर्यः + एकः, सः + उत्सवः, प्रातः + रक्तम्, निः + सक्तम्, गुरुः + राजते, सजूः + छिनत्ति, वासः + छादयति, पुरुषः + तरति, यशः + कल्पम, अयः + पाशम्, हविः + काम्यति, निः + पीतम्, सर्पिः + पात्रम्, चतुः + कपालम्, द्विः + करोति, त्रिः + पठति, धनुः + करः, कः + कः, कौतः + कुतः, भ्रातुः + पुत्रः, सद्यः + कः, गीः + कारः, वहिः + पूलम्, मेदः + पिण्डः, अधः + कृतम्, दिवः + पातु।

२ Disjoin the following words—सन्धि-विच्छेद कीजिये।
भो देवाः, नारद उवाच, शिवा इति, पुना रमते, शम्भू राजते, मनोरथः, नीरसः, नीरोगः, पितारक्षः, गौरेव, पुनारक्तम, इन्दू राजते, मनोलयः, नरोयाति, तेजोमयः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोतीतः, निष्पापः, निश्चयः, पूर्णोघटः, वालो ढौकते, सुन्दरोनरः, देवाष्षट्, तरोश्छाया, प्रथमस्सर्गः, हविष्कुण्डम्, धनुष्पाणिः, अन्तर्ढक्का, दुर्दिनम्, वहिष्कृतम्, निष्प्रत्यूहम्, तिरस्करोति, अयस्कान्तः, अयस्कर्णी पुरस्करोति, क ॅ करोति, वाचस्पतिः, देवायिह भोयच्युतः, हरिर्जयति, अहर्पतिः, अहोरात्रः, अहोरथान्तरम्, अहोरूपम्, हरीरम्यः, एषको रुद्रः, शिरस्पदम् सर्पिष्कम्, शिवच्छाया, काँस्कान् भास्करः, यजुष्पात्रम्, शार्ङ्गिश्छिन्धि, शिरस्पदम्, पुंश्चकोरः, चतुष्टयम्, एष बालकः, अहरहः, भो गदाधर, बालका हसन्ति, शीतोवायुः, अन्तर्धानम् ।

३ विसर्ग की उत्पत्ति किन-किन वर्णों में होती है, उदाहरणपूर्वक विवेचन कीजिये ।

४. विसर्ग के स्थान में ओकार किस अवस्था में होता है ? विसर्ग के पश्चात् स्वर वर्ण आने पर विसर्ग में कौन-कौन से विकार-परिवर्तन होते हैं, उदाहरणपूर्वक लिखिये ।

५ विसर्ग के स्थान पर प्रमुख कौन-कौन से विकार होते हैं ? विसर्ग-सन्धि के प्रमुख नियमों का विवेचन कीजिये ।

६ विसर्ग का लोप किस-किस अवस्था में होता है, इसके प्रमुख नियमों की सोदहरण व्याख्या कीजिये ।

७ न् कार के स्थान में रेफ विधायक नियम का सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

८ विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य ष् किस स्थिति में होता है ? तालव्य श् विधायक नियम का निरूपण कर शिरः और अधः शब्द के विसर्ग विकार—विसर्ग परिवर्तन का सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

९ विसर्ग के पहले आ और विसर्ग के परे स्वर वर्ण होने पर विसर्ग की क्या अवस्था रहेगी ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये ।

१० विसर्ग के स्थान में यकार किस अवस्था में होता है ? रेफ् के परे रेफ् के लोप विधायक नियम को सोदाहरण समझाइये ।

११ विसर्ग की जिह्वामूलीय और उपध्मानीय स्थिति का विवेचन कीजिये ।

१२ पाश, कल्प और काम्य शब्द के परे विसर्ग की क्या स्थिति रहती है, सोदाहरण समझाइये ।

१३ विसर्ग के बाद श्, ष् और स् हों तो विसर्ग में कौन सा विकार उत्पन्न होता है ? विसर्ग के स्थान पर रेफ विधायक नियम का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये ।

१४ क ख से परे निरस्, नमस् और पुरस् शब्द आने पर विसर्ग की कौन सी अवस्था रहती है, उदाहरणपूर्वक लिखिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णत्वविधान Change of न् into ण्

१ **रषाभ्यां नोणः समानपदे** ८।४।१—एक ही वाक्य में ऋ ॠ र् या ष् के बाद न् आवे तो न् के स्थान में ण् होता है। यथा—
नृ+नाम्=नृणाम्, तिसृ+नाम्=तिसृणाम्, भ्रातृ+नाम्=भ्रातृणाम्, पितृ+नाम=पितृणाम्, पूष्+ना=पूष्णा, कृष्+नः=कृष्णः, चतुर्+नाम्=चतुर्णाम।

२ **अट् कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि** ८।४।२—यदि र्, ष् ऋ, ॠ और न् के बीच में कोई स्वर; य्, व्, र्, ह, कवर्ग पवर्ग और अनुस्वार में से कोई एक वर्ण अथवा अनेक वर्ण हों तो न् के स्थान में ण् होता है। यथा—गर्व+न=गर्वेण, रवि+ना=रविणा, द्रव्ये+न=द्रव्येण, रामे+न=रामेण, हरी+नाम्=हरीणाम्, मृगे+न=मृगेण, पुरुषे+न=पुरुषेण, अर्केण, मूर्खेण, दीर्घेण, द्रुमेण, गर्भेण, आर्पेण, विरहेण, ग्रहणीयम।

३ **एकाजुत्तरपदे णः** ८।४।१२— **कुमति च** ८।४।१३—यदि पर पद एक स्वर वाला हो अथवा कवर्ग युक्त हो तो न् के स्थान में ण् होता है। यथा—
पुनर्+नाम्=पुनर्णाम्, प्रभु=ना+प्रभुणा। कवर्ग युक्त श्री+कामेन+श्रीकामेण, परि+पाकेन=परिपाकेण, दुर्+गमेन=दुर्गमेण।

४ **विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः** ८।४।६—औषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दों से परे वन शब्द के न के स्थान में विकल्प से ण होता है। यथा—
औषधि वाचक—व्रीहि+वनम्=व्रीहिवणम्—व्रीहिवनम्, दूर्वा+वणम्=दूर्वावनम्—दूर्वावनम्, नीवार+वनम्=नीवारवणम्; वृक्षवाचक—लोध्र+वनम्=लोध्रवणम्—लोध्रवनम्, वदरी+वनम्=वदरीवणम्—वदरीवनम्, शिरीष+वनम्=शिरीषवणम—शिरीषवनम्, जम्बीर+वनम्=जम्बीरवणम्।

अपवाद—

द्व्यच्त्र्यच्भ्यामेव (वा०)—दो स्वर या तीन स्वर का शब्द नहीं होने में वन शब्द के न को ण नहीं होता, यथा—
देवदासवनम्, उदुम्बरवनम्, नारिकेलवनम, कोविदारवनम्, कुरुवनम्।

६ **प्रनिरन्तः शरेक्षु प्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि** ८।४।५—शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, खदिर आदि शब्दों के परे वन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शर + वनम् = शरवणम्, प्लक्ष + वनम = प्लक्षवणम्, आम्र + वनम् = आम्रवणम्, इक्षु + वनम् = इक्षुवणम, खदिर + वनम् = खदिरवणम्, प्र + वनम् = प्रवणम्, कार्ष्य + वनम् = कार्ष्यवणम् । प्र, निर, अन्तर्, अग्रे आदि शब्दों के परे भी वन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

निर + वनम् = निर्वणम, अन्तर् + वनम् = अन्तर्वणम्, अग्रे + वनम् = अग्रेवणम् ।

७ **वाहनमाहितात्** ८।४।८—जिस पर रखकर वस्तु को ले जाया जाय, उस ले जानेवाले वाहन के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—इक्षुवाहणम् ।

८ **पानं देशे** ८।४।९—देश अर्थ गम्यमान हो तो पान शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

क्षीर + पानाः = क्षीरपाणाः, उशीनराः सुरा + पानाः सुरापाणाः प्राच्याः ।

९ **वा भावकरणयोः**—८।४।१०—दूसरे पद में रहनेवाले र् के परे पान शब्द के न के स्थान में विकल्प से ण होता है। यथा—

क्षीर + पानम् = क्षीरपाणम्—क्षीरपानम्, विष + पानम् = विषपाणम् ।

१० **त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्** (वा०)—वयस् अर्थ बोध हो तो त्रि और चतुर् शब्दों के परे हायन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

त्रि + हायनः + वत्सः = त्रिहायणोवत्सः, चतुर् + हायनः + गौः = चतुर्हायणो गौः ।

११ **अह्नोऽदन्तात्** ८।४।७—प्र, पूर्व, अपर इत्यादि शब्दों के परे अह्न शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

प्र + अह्नः = प्राह्णः, पूर्व + अह्नः = पूर्वाह्णः, अपर + अह्नः = अपराह्णः ।

१२ **अयनञ्च** ८।४।२५—पर, पार, उत्तर, चान्द्र और नार शब्दों के परे अयन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

पर + अयनम = परायणम् परा + अयनम् = परायणम्, उत्तर + अयनम् = उत्तरायणम्, चान्द्र + अयनम् = चान्द्रायणम, नार + अयनः = नारायणः ।

१३ **अग्रग्रामाभ्यां नयतेः** (वा०)—अग्र और ग्राम शब्दों के परे नी शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

अग्र + नीः = अग्रणीः, ग्राम + नीः = ग्रामणीः ।

१४ **पूर्वपदात्संज्ञायामगः** ८।४।३—संज्ञा बोध होने से शूर्प शब्द के परे नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

शूर्प + नखा = शूर्पणखा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५ **उपसर्गाद्बहुलम्** ८।४।२८—प्र, द्रु, खर और वार्ध्री के परे नस् शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

प्र + नसः = प्रणसः, द्रु + नसः = द्रुणसः, वार्ध्री + नसः = वार्ध्रीणसः।

१६ **गिरिनद्यादीनां वा** (वा०)—गिरि नदी, स्वर् नदी इत्यादि के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

गिरि + नदी = गिरीणदी—गिरिनदी, स्वर् + नदी = स्वर्णदी—स्वर्नदी, गिरि + नितम्बः = गिरिणितम्बः—गिरिनितम्बः, गिरि + नखः = गिरिणखः—गिरिनखः गिरि + नद्धः = गिरिणद्धः—गिरिनद्धः, चक्र + नदी = चक्रणदी — चक्रनदी, चक्र + नितम्बः = चक्रणितम्बः—चक्रनितम्बः, माषो + नः = माषोणः।

१७ **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** ८।४।१४—प्र, परा, परि और निर् इन चार उपसर्गों के परे, नद्, नम्, नश्, नह्, नी, नु, नुद्, अन् और हन् धातुओं के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

प्र + नदति = प्रणदति, प्र + नमति = प्रणमति, परि + नमति = परिणमति, परि + नामः = परिणामः, प्र + नश्यति = प्रणश्यति, परि + नाहः = परिणाहः प्र + नोदः = प्रणोदः, प्र + नयति = प्रणयति, प्र + नयः = प्रणयः।

१८ **नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च** ८।४।१७—गद्, नद, पत, पद, दा, धा, मा, सो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि, दिह् धातुओं के पूर्ववर्ती नि उपसर्ग के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

प्रनि + गदति = प्रणिगदति, प्रनि + पतति = प्रणिपतति, प्रनि + पातः = प्रणिपातः, प्रनि + धानम् = प्रणिधानम्, प्रनि + हन्ति = प्रणिहन्ति।

१९ **कृत्यचः** ८।४।२९—धातु के पहले प्र, परा, परि, निर् ये चार उपसर्ग या अन्तर् शब्द हो तो कृत् प्रत्यय के न् का ण् होता है। यथा—

प्र + यानम् = प्रयाणम्, प्र + हानम् = प्रहाणम् प्रवहमाणः, प्रमाणम्।

२० **हलश्चेजुपधात्** ८।४।३१—जिन धातुओं के पहले व्यञ्जन वर्ण हो और अन्त्य वर्ण के पहले अ आ भिन्न स्वर हो उनके परे कृत् प्रत्यय के न् का विकल्प से ण् होता है। यथा—

प्रकोपणम, परिगोपणम्।

२१ णयन्त धातु के परे कृत् प्रत्यय के न का विकल्प से ण् होता है। यथा—

प्रयाणम्, प्रयापणीयम्, प्रवाहणम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२ निस्, निक्ष्, निन्द् इन तीन धातुओं के न् का विकल्प से ण् होता है। यथा—
प्रणिसितव्यम्, प्रणिक्षणम्, प्रणिन्दति।

२३ हिनु और मीना के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—
प्रहिणोति, प्रहिणुतः, प्रहिण्वन्ति, प्रमीणाति, प्रमीणीतः, प्रमीणन्ति।

२४ लोट् की आनि विभक्ति के न् का ण् होता है। यथा—
प्रभवाणि, परिभवाणि, प्रवहाणि।
निम्नलिखित शब्दों में स्वाभाविक ण है—
वाणी-तूणीर-वेणी-फणि मणि-लवणं कोण-कल्याण-वीणः।
गोणी-घोणी-कणाणुधुण-विपाणं-पण स्थाणु पुण्यं बिषाणम्॥
माणिक्यं शोणशाणौ गुण-गण गणिका-वेणु-सिंहाण-वीणा।
निर्वाणो निक्वणौवा-क्वण-किण वणिजः कङ्कणं पाणितूणौ॥
पिणाकम्, चाणक्यम्—इत्यादिः।

अनुशीलनी

१ णत्व विधि के प्रमुख नियमों को सोदाहरण लिखिये।

२ ऋ, र् और ष् के परे न् के स्थान में णकार होने के पाँच उदाहरण लिखिये।

३ पान शब्द के नकार के स्थान पर णकार किन-किन अवस्थाओं में होता है, सोदाहरण विवेचन कीजिये।

४ वन शब्द के नकार के स्थान पर णकार किन-किन स्थितियों में होता है, प्रत्येक के दो-दो उदाहरण लिखिये। साथ ही इस नियम का अपवाद भी उदाहरण सहित समझाइये।

५ हायन शब्द के नकार के स्थान पर णकार किस अवस्था में होता है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

६ अयन शब्द के नकार के स्थान पर नकार विधायक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

७ नी शब्द के नकार के स्थान पर णकार किस अवस्था में होता है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

८ नख और नदी शब्द के नकार के स्थान पर णकार विधायक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

९ हिनु और मीना शब्द के नकार के स्थान पर णकार किस अवस्था में होता है? प्रत्येक का एक-एक उदाहरण दीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० कृत् प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये।

११ स्वाभाविक ण किन-किन शब्दों में हैं, उनकी एक तालिका दीजिये।

१२ प्रवाहणम्, प्रहिणोति, प्रणिगदति, स्वर्णदी, प्रणामः, प्रणिधानम्, प्रभावेण, करणम्, प्रभुणा और परिपाकेण में णकार विधायक नियमों को स्पष्ट कीजिये।

१३ शूर्पणखा शब्द में णकार किस सूत्र से हुआ है? नारायणः के णकार विधायक नियम को ससूत्र लिखिये।

१४ पूर्वाह्णः और अपराह्णः में णकार विधायक नियम की व्याख्या कीजिये।

षत्व विधान Change of स into ष

१ **अपादन्तस्य मूर्धन्यः** ८।३।५५; **इण्कोः** ८।३।५७; **आदेशप्रत्यययोः** ८।३।५९—अ आ छोड़कर किसी स्वर, अन्तःस्थ वर्ण अथवा क वर्ग के अनन्तर कोई प्रत्यय सम्बन्धी स अथवा किसी दूसरे वर्ण के स्थान में आदेश किया गया स आवे और वह पदान्त में न हो तो उसके स्थान में मूर्धन्य ष् होता है। यथा—
मुनि + सु = मुनिषु, रामे + सु = रामेषु, नदी + सु = नदीषु, ए + साम् = एषाम्, अन्ये + साम् = अन्येषाम्, मति + सु = मतिषु, वधू + सु = वधूषु, गो + सु = गोषु, मुनि + सु = मुनिषु, दिक् + सु = दिक् + षु = दिक्षु।

अपवाद—

सात् प्रत्यय के परे दन्त्य स् का मूर्धन्य ष नहीं होता। यथा—
अग्नि + सात् = अग्निसात्, धूलि + सात् = धूलिसात्, वायु + सात् = वायुसात्।

२ **नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि** ८।३।५८—अ आ भिन्न स्वर, कवर्ग, र् अथवा ह् और स् के मध्य में अनुस्वार, विसर्ग तथा श् ष् स् का व्यवधान होने पर भी दन्त्य स् के स्थान में मूर्धन्य ष् हो जाता है। यथा—
धनून् + सि = धनूंषि, हवींषि, आशीःषु।

अपवाद—

नपुंसक लिङ्ग की प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन से भिन्न अनुस्वार का व्यवधान हो तो स के स्थान पर ष् नहीं होता।
यथा—पुम् + सु = पुंसु।

३ **एति संज्ञायामगात्** ८।३।९९—नाम समझे जाने से अ आ भिन्न स्वर के परे सेन शब्द के स के स्थान पर षत्व होता है। यथा—
सु + सेनः = सुषेणः, हरि + सेनः = हरिषेणः, मधु + सेनः = मधुषेणः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपवाद—

यदि नाम न समझा जाय तो षत्व नहीं होता। यथा—कुरुसेना, यदुसेना, कपिसेना आदि।

४ भूमि और दिवि शब्दों के परे स्थ शब्द के सकार के स्थान पर षत्व होता है। यथा—भूमि + स्थः = भूमिष्ठः, दिवि + स्थः = दिविष्ठः।

५ **गवियुधिभ्यां स्थिरः** ८।३।९५—युधि शब्द से परे स्थिर शब्द से स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—

युधि + स्थिरः = युधिष्ठिरः।

६ **मातृपितृभ्यां स्वसा** ८।३।८४—समास होने पर मातृ और पितृ शब्दों के परे स्वसृ शब्द के प्रथम स् के स्थान पर ष् होता है। यथा—

मातृष्वसा, पितृष्वसा। विभक्ति रहने पर विकल्प से षत्व होता है। यथा—मातुः ष्वसा–मातुः स्वसा, पितुःष्वसा—पितुः स्वसा।

७ **उपसर्गात्सुनोति सुवति स्यति-स्तौति स्तोभतिस्थासेनयसेधसिच-सञ्जस्वञ्जाम्** ८।३।३५—इकारान्त—नि, वि, परि, प्रति, अति, अधि, अपि, अभि और उकारान्त—सु, अनु, उपसर्गों से परे सु, सू, सो, स्तु, स्तुभ्, स्था, सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद् और स्तम्भ धातुओं के स् के स्थान पर ष् होता है। यथा—

सु—अभिषुणोति, सू (तुदादि गणीय)–अभिषुवति, अनुषुवति; सो—अभिष्यति; स्तु—अभिष्टौति; स्तुभ्–प्रतिष्टोभते, अनुष्टोभते; स्था—अधिष्ठास्यतिः, अनुष्ठास्यति, सेनि-अभिषेणयति; सिध्—प्रषेधति, अनुषेधति (गमनार्थ सिध् धातु के स् के स्थान पर ष् नहीं होता; यथा–गृहं प्रतिसेधति, परिसेधति, अभिसेधति), सिच्–निषिञ्चति; सञ्ज्–निषजति, अनुषजति; स्वञ्ज्–परिस्वजते; सद्–विषीदति, अनुषीदति, (प्रति पहले हो तो षत्व नहीं होता; यथा—प्रतिसीदति), स्तम्भ्—अभिष्टभ्नाति।

८ **परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्** ८।३।७०—परि, नि, वि पूर्वक सेव्, सिव्, सह् धातु के सकार के स्थान पर षत्व होता है। यथा—

निषेधति, परिषेवते, निषेवते, विषहते। सह् का सोढ होने पर षत्व नहीं होता। यथा—निसोढुम्, विसोढः।

९ **स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य** ८।३।६४—इकारान्त और उकारान्त उपसर्गों के परे सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज और सेव के धातुओं के अभ्यस्त होने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों स्थानों के दन्त्य स् के स्थान पर मूर्धन्य ष् होता है। यथा—
अभिषिषेणयिषति, निषिषेध, प्रतिषिषेधयिषति, अभिषिषेच।

१० **स्तम्भेः** ८।३।६७—इकारान्त और उकारान्त उपसर्गों के परे अभ्यस्त स्था और स्तम्भ् धातुओं के स् में तकार का व्यवधान होने पर भी षत्व होता है। यथा—
स्था—अनुतष्ठौ, अधितष्ठौ, अभितष्ठौ; स्तम्भ—अनुतष्टम्भ। प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध में षत्व नहीं होता है तथा ण्यन्त करने पर लुङ् में स्तम्भ् का ष् नहीं होता। यथा—पर्यस्तम्भत्।

११ परिपूर्वक स्कृ धातु के स् का ष् होता है। यथा—परिष्करोति, परिष्कारः।

१२ **अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्तेरप्राणिषु** ८।३।७२—अनु, वि, परि, अभि, नि पूर्वक स्यन्द् धातु के स् का विकल्प से षत्व होता है। यथा—
अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते, विष्यन्दते—विस्यन्दते, निष्यन्दते—निस्यन्दते।

१३ **सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः** ८।३।८८—सु, वि, निर्, दुर् के परे स्वप् का सुप् हो तो सकार के स्थान पर षत्व हो जाता है। यथा—
सुषुप्तः, विषुप्तः, निःषुप्तः; दुःषुप्तः।

१४ **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** ८।३।८७—इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग तथा प्रादुः शब्द के परे अस् धातु के स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—
निषन्ति, प्रतिषन्ति, अधिषन्ति, अनुषन्ति, प्रादुःषन्ति।

१५ **शासिवसिघसीनाञ्च** ८।३।६०—उस् प्रत्यय परे रहने पर वस् धातु के स् का षत्व होता है। यथा—
उषितः, उषितवान्, ऊषतुः, ऊषुः।

१६ **समासेऽङ्गुलेः सङ्गः** ८।३।८०—समास होने पर अंगुलि शब्द के परे सङ्ग शब्द के स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—अंगुलिषङ्गः।

१७ सु, वि, निर्, दुर् उपसर्ग के परे सम शब्द के सकार के स्थान पर षत्व होता है। यथा—
सुषमः, सुषमा, दुःषमः, दुःषमा, विषमः, विषमा।

१८ वि पूर्वक स्कम्भ धातु के स् का षत्व होता है। यथा—
विष्कम्भः, विष्कम्भकः, विष्कम्भितुम्, विष्कम्भ्नाति।

१९ परि और वि पूर्वक स्कन्द् धातु के सकार के स्थान पर विकल्प से षत्व होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिष्कन्दति, परिष्कण्णः—परिस्कन्दति, परिस्कन्नः; निष्कन्ता—निस्कन्ता, विष्कन्तुम्—विस्कन्तुम् ।

२० नि, निर्, वि पूर्वक स्फुर और स्फुल धातु के सकार के स्थान पर विकल्प से षत्व होता है । यथा—

स्फुर्—निष्फुरति–निस्फुरति, विष्फुरति–विस्फुरति; स्फुल्—निष्फुलति–निस्फुलति, विष्फुलति–विस्फुलति ।

२१ सह् धातु से बने साह् शब्द का साट् और साड् हुआ हो तो स् के स्थान पर षत्व होता है । यथा—

तुराषाट्, तुराषाड्, तुरषाट्सु, तुराषाड्भ्यः ।

साह् रहने से सकार के स्थान पर षत्व नहीं होता । यथा—

तुरासाहौ, तुरासाहः, तुरासाहम् ।

२२ धातु के परे सन् प्रत्यय का ष् हो तो धातु के स् का ष् नहीं होता । यथा—

सिच्—सिसीक्षति; सू—सुसूषति; सेव्—सिसेविषते; स्तम्भ—तिस्तम्भिषति; स्तुम्भ्—तुस्तोभिषते; स्नु—सुस्नूषति ।

केवल स्तु धातु का षत्व होता है । यथा—तुष्टूषति ।

सन् प्रत्यय का स् रहे तो धातु के स् का षत्व होता है । यथा—

स्था—तिष्ठासति, स्वप्—सुषुप्सति, सो—सिषासति ।

निम्नाङ्कित शब्दों में स्वाभाविक षत्व है—

आषाढः, इक्षुः, ईषत्, उत्कर्ष, औषधः, कोषः, दोषः, द्वेषः, दुष्पम्, भीष्मः, महिषः, मेषः, मूषिका, वृषा, वर्षः, षोडशः, पुरुषः, विषयः, षट्ः, हर्षः, पाषाणः, कष्टम्, वाष्पः ।

अनुशीलनी

१ षत्व विधायक प्रमुख नियमों को सोदाहरण लिखिये ।

२ सेना या सेनः शब्द के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये ।

३ स्थिर् और स्थः शब्दों के सकार के स्थान पर किस अवस्था में षत्व होता है ? सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

४ स्वस्ट शब्द के सकार के स्थान पर किस स्थिति में षत्व होता है ? सम शब्द के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये ।

५ वस् धातु के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखकर स्कम्भ धातु के षत्व नियम को उदाहरण पूर्वक समझाइये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ स्यन्द्, स्कन्द् और स्कम्भ् धातु के सकार के स्थान पर किस-किस अवस्था में षत्व होता है ? उदाहरणपूर्वक लिखिये ।

७ अभ्यस्त स्था और स्तम्भ् धातु के सकार के स्थान पर षत्व किस स्थिति में होता है ? अस् धातु के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम का सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

८ सु, तू, स्तु, स्तुभ, स्था, सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज, स्वञ्ज, सद् और स्तम्भ धातुओं के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये ।

९ सेव्, सिव् और सह धातु के सकार के स्थान में षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये ।

१० स्वाभाविक षत्व किन-किन शब्दों में है ? स्वाभाविक षत्व का क्या तात्पर्य है ?

११ परिषेवते, मुनिषु, पितुः ष्वसा, दिविष्ठः अधिष्ठास्यति, अभिषुनोति, निषेवते, विष्कम्भः, विष्वक्तः अनुष्यन्दते, परिष्करोति, निषिषेधः, अविषन्ति, सुषमः, दुःषुप्तः, अंगुलिषङ्गः, पुरुषः, पाषाणः, वृषभः, अभिषेकः एवं रामेषु शब्दों में षत्व विधायक नियमों को लिखिये ।

१२ षत्व विधायक सामान्य और विशेष नियमों को स्पष्ट रीति से समझाइये ।

—: ० :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीयोऽध्यायः

सुबन्त प्रकरण या शब्दरूप

भाषा का आधार वाक्य है और वाक्य का आधार शब्द। शब्दों की रचना वर्णों के मेल से होती है।

जो कान से सुनायी पड़ता है, वह शब्द है। शब्द दो प्रकार के होते हैं—सार्थक और निरर्थक। सार्थक शब्द की पद संज्ञा है। इसीका विवेचन व्याकरण शास्त्र में किया जाता है। पद के दो भेद हैं—संज्ञा और क्रिया।

संस्कृत में रूपान्तर के अनुसार पदों के—सार्थक शब्दों के दो भेद हैं—विकारी और अविकारी। जिस सार्थक शब्द के रूप में कोई विकार या परिवर्तन होता है, उसे विकारी कहते हैं। यथा—रामः, रामौ, रामाः; भवति, भवतः, भवन्ति। विकारी पदों—सार्थक शब्दों के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया और विशेषण ये चार मूल भेद हैं। अविकारी वे पद हैं, जिनके रूप में विकार—परिवर्तन नहीं होता। ये अविकारी पद अव्यय कहलाते हैं। यथा—अधः, सम्प्रति, अन्यत्, उच्चैः, नीचैः आदि।

प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार संस्कृत भाषा में तीन प्रकार के शब्द हैं—नाम, आख्यात और अव्यय। सर्वनाम, संख्यावाचक और विशेषण भी नाम के अन्तर्गत हैं। नाम को प्रातिपदिक कहा गया है। प्रातिपदिकों के साथ सुप् प्रत्यय लगाने से संज्ञापद बनते हैं। प्रत्येक संज्ञा के पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग ये तीन लिङ्ग होते हैं।

संस्कृत भाषा में लिङ्गभेद स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ स्त्री का अर्थ बतलाने के लिए दारः, भार्या और कलत्र ये तीन शब्द प्रचलित हैं। इनमें दारः शब्द पुंल्लिङ्ग, भार्या शब्द स्त्रीलिङ्ग और कलत्र शब्द नपुंसक लिङ्ग है। इसी प्रकार शरीर का बोध करानेवाले अनेक शब्दों में लिङ्गभेद वर्तमान है। यथा—तनुः स्त्रीलिङ्ग, देहः पुंल्लिङ्ग और शरीर नपुंसक लिङ्ग है। कई शब्द ऐसे हैं, जिनके रूप एक से अधिक लिङ्ग में चलते हैं; जैसे गौ शब्द पुंल्लिङ्ग में बैल वाचक और स्त्रीलिङ्ग में गाय वाचक है। किन्हीं पुंल्लिङ्ग शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द बनते हैं और किन्हीं प्रत्ययों के योग से नपुंसक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिङ्ग के शब्द बन जाते हैं। इतना होने पर भी यह सत्य है कि संस्कृत में शब्द प्रायः नियतलिङ्गी होते हैं। शब्दों के लिङ्ग निर्धारित हैं।

संस्कृत भाषा में लिङ्ग के समान वचन भी तीन हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। जिसके कहने से एक व्यक्ति या वस्तु का बोध हो, वह एकवचन; जो दो पदार्थों का ज्ञान करावे, वह द्विवचन और जो दो से अधिक वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हो, वह बहुवचन कहलाता है। द्विवचन का प्रयोग विश्व की किसी भी भाषा में नहीं होता; किन्तु संस्कृत में एक और बहुत्व से दो को भिन्न मानकर द्विवचन का प्रयोग किया गया है। संख्या शास्त्र के नियम के अनुसार दो संख्या बहुत्वसूचक नहीं है। बहुत्व की गणना तीन की संख्या से की जाती है। अतः उक्त वैज्ञानिक तथ्य को दृष्टि में रखकर ही संस्कृत में द्विवचन का विधान किया गया है। यथा—वृक्षः, वृक्षौ, वृक्षाः।

(क) जाति के अभिधान—कथन में एकवचन को बहुवचन भी हो जाता है। यथा—मनुष्यः = मनुष्याः, अश्वः = अश्वाः।

(ख) युष्मद् और अस्मद् शब्द के एकवचन और द्विवचन को भी पक्ष में बहुवचन हो जाता है। यथा—अहं ब्रवीमि = वयं ब्रूमः, आवां ब्रूवः = वयं ब्रूमः; त्वं, गच्छसि = यूयं गच्छथ, युवां गच्छथः = यूयं गच्छथ।

(ग) आदर अर्थ में भी एकवचन को बहुवचन हो जाता है। यथा—गुरुरभिवादनीयः = गुरवोऽभिवादनीयाः।

संस्कृत में तीन पुरुष होते हैं—उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और प्रथमपुरुष। प्रथमपुरुष को अन्यपुरुष भी कहा जाता है।

कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण इन सात कारकों को प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति कहा जाता है। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

विभिन्न विभक्तियों को प्रकट करने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें सुप् कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें तिङ् कहते हैं। सुप् और तिङ् को भी विभक्ति कहा जाता है।

विभक्तियों की आकृतियाँ

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु (:)	औ	जस् (अः)
द्वितीया	को	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	से, से द्वारा	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भिः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी	के लिए	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पञ्चमी	से	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	का, की, के	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	में, पै, पर	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप् (सु)

सम्बोधन के लिए अलग प्रत्यय नहीं दिये गये हैं; अतः इनके रूपों में प्रथमा विभक्ति के ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं। ये प्रत्यय सुप् कहलाते हैं।

प्रत्ययों को जोड़ने की प्रतिक्रिया कुछ जटिल है, पर है यह इतनी व्यवस्थित जिससे एक बार हृदयंगम करने के पश्चात् कुछ कष्ट नहीं होता। यहाँ जिन प्रत्ययों के जोड़ने में विशेषता है, उन प्रत्ययों के सम्बन्ध में प्रकाश डालना आवश्यक है।

१ **तस्माच्छसो नः पुंसि** ६।१।१०३—अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों में शस् के सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। यथा—राम+शस् = राम+अस् = राम+अन् = रामान्।

२ **टाङसिङसामिनात्स्याः** ७।१।१२—अकारान्त शब्दों से टा, ङसि और ङस् के स्थान में क्रमशः इन, आत् और स्य आदेश होते हैं। यथा—राम+टा = राम+इन = रामेण; राम+ङसि = राम+आत् = रामात्, राम+ङस् = राम+स्य = रामस्य।

३ **अतोभिस् ऐस्** ७।१।९—अकारान्त शब्दों से भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है। यथा—राम+भिस् = राम+ऐस् = रामैस् = रामैः।

४ **ङेर्यः** ७।१।१३—अकारान्त शब्दों से ङे के स्थान में य आदेश होता है। यथा—राम+ङे = राम+य।

५ **सुपि च** ७।३।१०२—य आदि विभक्ति के प्रत्यय अकारान्त से परे आवे तो अकारान्त को दीर्घ होता है। राम+य = रामाय।

६ **बहुवचने झल्येत्** ७।३।१०३—झलादि बहुवचन सुप् परे हो तो अकारान्त अंग को एकार होता है। यथा—राम+भ्यस् = रामेभ्यः।

७ **ओसि च** ७।३।१०४—ओस् प्रत्यय परे हो तो अकारान्त अंग को एकार होता है। यथा—राम+ओस् = रामे+ओस् = रामयोः।

८ **ह्रस्वनद्यापो नुट्** ७।१।५४—ह्रस्वान्त, नद्यन्त, आबन्त अंग से परे आम् को नुट् का आगम होता है। यथा—राम+आम् = राम नुट्+आम् = रामन् आम् = रामाणाम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९ **आङोनाऽस्त्रियाम्** ७।३।१२०—सखि और नदी संज्ञक शब्दों को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों में टा के स्थान पर ना हो जाता है। यथा—मुनि+टा=मुनिना।

१० **घेर्ङिति** ७।३।१११—ङस्, ङसि, ङे, ङि इन प्रत्ययों के परवर्ती होने पर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त सखि भिन्न और अनदी संज्ञक शब्दों के अन्त में आनेवाले स्वर को गुण होता है। यथा-हरि+ङे=हरि+ए=हरे+ए=हरये।

११ **अच्च घेः** ७।३।११९—इकारान्त और उकारान्त के पश्चात् ङि की इ को औ आदेश होता है और इ तथा उ के स्थान पर अकार आदेश होता है। यथा—हरि+ङि=हरि+इ=हर्+औ=हरौ।

१२ **ऋत् उत्** ६।१।१११—ऋकारान्त प्रातिपदिक के पश्चात् जब ङसि, ङस् आवें तो ऋ को उ आदेश होता है। यथा—क्रोष्टृ+ङसि=क्रोष्टृ+अस्=क्रोष्ट्+उर्+स्=क्रोष्टुः।

१३ **जसः शी** ७।१।१७—अकारान्त सर्वनाम के परे जस् के स्थान में शी होता है। यथा—सर्व+जस्=सर्व+शी=सर्व+इ=सर्वे।

१४ **सर्वनाम्नः स्मै** ७।१।१४—अकारान्त सर्वनाम से परे ङे के स्थान में स्मै आदेश होता है। यथा—सर्व+स्मै=सर्वस्मै।

१५ **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** ७।१।१५—अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि के स्थान में स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं। यथा—सर्व+ङसि=सर्वस्मात् सर्व+ङि=सर्वस्मिन्।

१६ **आमि सर्वनाम्नः सुट्** ७।१।५२—अकारान्त सर्वनाम से विहित आम् को सुट् का आगम होता है। यथा—सर्व+आम्=सर्व+स्=आम्=सर्वेषाम्।

१७ **औङ आपः** ७।१।१८—जब अकारान्त शब्द में औ जुड़ता है तो उसके स्थान में शी (ई) आदेश होता है। यथा—रमा+औ=रमा+ई=रमे।

१८ **आङि चापः** ७।३।१०५—टा और ओस् प्रत्यय परे रहने पर आकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाची शब्दों के स्थान पर एकार आदेश होता है। यथा—रमा+टा=रमे+आ=रमया।

१९ **याडापः** ७।३।११३—आकारान्त शब्दों में ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर आ के पश्चात् या का आगम होता है। रमा+ङे=रमायै।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२० **सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च** ७।३।११४—आकारान्त सर्वनाम के पश्चात् ङे, ङसि् और ङि के जुड़ने पर आकार का अकार हो जाता है और प्रत्यय तथा शब्द के बीच स्या का आगम होता है। यथा—सर्वा + ङे = सर्व + स्या + ए = सर्वस्यै, सर्वा + ङसि = सर्व + स्या + अस् = सर्वस्याः, सर्वा + ङि = सर्व + स्या + आम् = सर्वस्याम्।

२१ **स्वमोर्नपुंसकात्** ७।१।२३—नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक के पश्चात् सु और अम् का लोप होता है। यथा—वारि + सु = वारि।

२२ **अतोऽम्** ७।१।२४—अकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों में सु के स्थान पर अम् आदेश होता है। यथा—ज्ञान + सु = ज्ञान + अम् = ज्ञानम्।

२३ **नपुंसकाच्च** ७।१।१९—अकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों में औ के स्थान पर शी (ई) आदेश होता है। यथा—ज्ञान + औ = ज्ञान + ई = ज्ञाने।

२४ **जश्शसोः शिः** ७।१।२०—नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक से जस्, शस् जुड़ने पर उनके स्थान पर शि (इ) आदेश होता है तथा इ के पूर्व नुम् (न) का आगम होता है। यथा—ज्ञान + जस् = ज्ञान + न् + शि (इ) = ज्ञानानि।

२५ **इकोऽचि विभक्तौ** ७।१।७३—इकारान्त नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक के पश्चात् अजादि प्रत्यय आने पर बीच में न् का आगम होता है। यथा—वारि + औ = वारि + न् + ई = वारिणी।

संस्कृत में प्रातिपदिक शब्दों के मूलतः दो भेद हैं—स्वरान्त-अजन्त और व्यञ्जनान्त हलन्त। स्वरान्त में प्रायः अकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग दोनों होते हैं। आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग वाची होते हैं। इकारान्त शब्द तीनों लिङ्गों में आते हैं। ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। किन्तु कुछ पुंल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त होते हैं। उकारान्त शब्द तीन लिङ्गों में आते हैं। ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों में आते हैं। ऋकारान्त शब्द प्रायः पुंल्लिङ्ग में आते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्द बहुत कम हैं। शेष स्वरों में अन्त होनेवाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं होते हैं।

देव शब्द में समस्त विभक्तियों को जोड़ा जाता है। इसी प्रकार समस्त शब्दों में अपनी-अपनी विशेषता के अनुसार विभक्तियों को जोड़ लेना चाहिए।

देव + सु = देवस् = देवः	प्रथमा—एकवचन
देव + औ = देवौ	प्रथमा—द्विवचन
देव + जस् = देव + अस् = देवाः	प्रथमा—बहुवचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव + अम् = देवम्	द्वितीया—एकवचन
देव + औट् = देवौ, देवौ	द्वितीया—द्विवचन
देव + शस् = देव + अस्—देवान्	द्वितीया—बहुवचन
देव + टा = देव + इन = देवेन	तृतीया—एकवचन
देव + भ्याम् = देवाभ्याम्	तृतीया—द्विवचन
देव + भिस् = देव + ऐस्—देवैः	तृतीया—बहुवचन
देव + ङे—देवाय	चतुर्थी—एकवचन
देव + भ्याम्—देवाभ्याम्	चतुर्थी—द्विवचन
देव + भ्यस् = देवेभ्यः	चतुर्थी—बहुवचन
देव + ङसि—देवात्	पञ्चमी—एकवचन
देव + भ्याम् = देवाभ्याम्	पञ्चमी—द्विवचन
देव + भ्यस्—देवेभ्यः	पञ्चमी—बहुवचन
देव + ङस् = देवस्य	षष्ठी—एकवचन
देव + ओस—देवयोः	षष्ठी—द्विवचन
देव + आम्—देवानाम्	षष्ठी—बहुवचन
देव + ङि—देव + इ = देवे	सप्तमी—एकवचन
देव + ओस् = देवयोः, देवयोः	सप्तमी—द्विवचन
देव + सु—देवेषु, देवेषु	सप्तमी—बहुवचन

स्वरान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

अकारान्त—गज

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गजः	गजौ	गजाः
द्वितीया	गजम्	गजौ	गजान्
तृतीया	गजेन	गजाभ्याम्	गजैः
चतुर्थी	गजाय	गजाभ्याम्	गजेभ्यः
पञ्चमी	गजात्	गजाभ्याम	गजेभ्यः
षष्ठी	गजस्य	गजयोः	गजानाम्
सप्तमी	गजे	गजयोः	गजेषु
सम्बोधन	हे गज	हे गजौ	हे गजाः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम शब्दः

रामः	रामौ	रामाः
रामम्	रामौ	रामान्
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
रामे	रामयोः	रामेषु
हे राम	हे रामौ	हे रामाः

कृष्ण, देव, अजगर, अध्यक्ष, अन्तराय, अब्द, बालक, अमात्य, अरुण, अर्थ आकर, आचार्य, आभीर, आय, आयुध, उपल, ओदन, कच्छप, कूर्म, कट, कर्णधार, कलङ्क, कलह, काक, काम, काल, कुक्कुर, कुञ्जर, कुम्भ, कोण, कोदण्ड, कोष, क्रोश, क्षण, क्षुर, खञ्जन, गुच्छ, घातक, चटक, चर्मकार, चारण, छाग, जम्बुक, जाल्म, जीमूत, डिम्ब, तण्डुल, तस्कर, ताण्डव, ताल,दत्तक, दम्भ, दायाद, धनिक, मुकुन्द, पाठक, अध्यापक, दनुज, दैत्य, स्वाध्याय, अनुभाव, विभाव, भाव, भव, अभाव, सहाय, प्रचय, निकाय, निश्चय, अनिश्चय, ध्वज, नकुल, नक्र, नाद, कंस, वसुदेव, पक्ष, पण, पयोद, पर्यङ्क, पारावत, पाश, पिक, पुञ्ज, पुरस्कार, पौर, विडाल, भक्त, भट, भृत्य, मठ, मञ्च, मण्डप, मण्डूक, मराल, मस्तिष्क, मशक, मानव, माष, मृग, यक्ष, यव, यांत्रिक, योध, रसाल, लगुड, ललाट, यजमान, लुब्धक, वंश, वयस्य, वर, वल्मीक, वारण, वासर, विनिमय, वृष, व्यतिकर, व्याज, शाक, शावक, श्वापद, वृष, सचिव, षण्ड, सहाय, सूद, सैनिक, स्तम्भ, स्तूप, स्तेन, स्यन्दन, हय, स्वेद, अधिकार, विहार, प्रहार, संहार, उपहार, अनुहार, नीहार, आसार, प्रसार, संसार, आचार, व्यवहार, विचार, संचार, परिहार, मार, तुषार, आकार, प्रकार, सदाचार, समाहार, आधार, आहार, आदर, आदि अकारान्त शब्दों के रूप गज के समान चलते हैं ।

आकारान्त विश्वपा—देवता, सूर्य, चन्द्रमा, संसार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पञ्चमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
सम्बोधन	हे विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः

(क) गोपा, सोमपा, धूम्रपा, बलदा, शंखध्मा, इत्यादि धातु-निष्पन्न आकारान्त शब्दों के रूप विश्वपा के समान चलते हैं।

(ख) धातु से बने हुए होने पर आकारान्त शब्दों में विभक्तियाँ जुड़ जाती हैं।

यथा—हाहा—गन्धर्व विशेष।

प्रथमा	हाहा	हाहौ	हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहाः
तृतीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
चतुर्थी	हाहे	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
पञ्चमी	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
षष्ठी	हाहाः	हाहोः	हाहाम्
सप्तमी	हाहे	हाहोः	हाहासु
सम्बोधन	हाहाः	हाहौ	हाहाः

ईकारन्त पुंल्लिङ्ग हरि—भगवान्

प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

अतिथि, मुनि, अरि, अलि, असि, अहि, ऋषि, कवि, कुक्षि, कृमि, गिरि, ग्रन्थि, धूर्जटि, ध्वनि, निधि, पाणि, बलि, यति, रवि, रश्मि, विधि, व्याधि और सारथि शब्द के रूप हरि के समान होते हैं।

पुंल्लिङ्ग सखि—मित्र

प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे	सखायौ	सखायः

पति

प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	हे पते	पती	पतयः

पति शब्द का अन्य शब्दों के साथ समास होने पर 'हरि' शब्द के समान रूप होते हैं। यथा—नृपति, भूपति, महीपति, श्रीपति, सीतापति, सेनापति इत्यादि शब्दों के रूप हरि के समान चलते हैं।

ईकारान्त सुधी—बुद्धिमान् व्यक्ति

प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

शुष्की, पक्वी, शुद्धधी और परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

ईकारान्त ग्रामणी—गाँव का प्रधान पुरुष

प्रथमा	ग्रामणीः	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
द्वितीया	ग्रामण्यम्	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
तृतीया	ग्रामण्या	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभिः
चतुर्थी	ग्रामण्ये	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभ्यः
पञ्चमी	ग्रामण्यः	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभ्यः
षष्ठी	ग्रामण्यः	ग्रामण्योः	ग्रामणीनाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	ग्रामण्याम्	ग्रामण्योः	ग्रामणीषु
सम्बोधन	हे ग्रामणीः	हे ग्रामण्यौ	हे ग्रामण्यः

सेनानी, अग्रणी, प्रधी, उन्नी आदि शब्दों के रूप ग्रामणी के समान होते हैं।

ईकारान्त नी—ले चलनेवाला

प्रथमा	नीः	नियौ	नियः
द्वितीया	नियम्	नियौ	नियः
तृतीया	निया	नीभ्याम्	नीभिः
चतुर्थी	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः
पञ्चमी	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः
षष्ठी	नियः	नियोः	नियाम्
सप्तमी	नियाम्	नियोः	नीषु
सम्बोधन	हे नीः	हे नियौ	हे नियः

उकारान्त भानु—सूर्य

प्रथमा	भानुः	भानू	भानवः
द्वितीया	भानुम्	भानू	भानून्
तृतीया	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
चतुर्थी	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पञ्चमी	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
षष्ठी	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सप्तमी	भानौ	भान्वोः	भानुषु
सम्बोधन	हे भानो	हे भानू	हे भानवः

अणु, इक्षु, इषु, ऋजु, ऋतु, गुरु, गोमायु, जन्तु, तन्तु, तरु, दस्यु, धातु, परशु, पशु, पांशु, प्रभु, बन्धु, वटु, विन्दु, साधु, भिक्षु, मनु, मृत्यु, बाहु, वायु, विभु, विष्णु, वेणु, शत्रु, सूनु, हेतु इत्यादि शब्दों के रूप भानु के समान होते हैं।

ऊकारान्त अग्निभू—अग्नि से उत्पन्न—कार्तिकेय

प्रथमा	अग्निभूः	अग्निभुवौ	अग्निभुवः
द्वितीया	अग्निभुवम्	अग्निभुवौ	अग्निभुवः
तृतीया	अग्निभुवा	अग्निभूभ्याम्	अग्निभूभिः
चतुर्थी	अग्निभुवे	अग्निभूभ्याम्	अग्निभूभ्यः
पञ्चमी	अग्निभुवः	अग्निभूभ्याम्	अग्निभूभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	अग्निभुवः	अग्निभुवोः	अग्निभुवाम्
सप्तमी	अग्निभुवि	अग्निभुवोः	अग्निभूषु
सम्बोधन	हे अग्निभूः	हे अग्निभुवौ	हे अग्निभुवः

अधिभू, जितभू, प्रतिभू, मनोभू (कामदेव), स्वभू-स्वयम्भू इत्यादि के रूप अग्निभू के समान होते हैं।

करभू, खलपू, हम्भू, वर्षाभू, सुलू, हूहू इत्यादि शब्दों में उव् न होकर सन्धि-नियमानुसार विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं। पर हूहू इत्यादि कई शब्दों की द्वितीया के एकवचन और बहुवचन क्रम से हूहूम् और हूहून् होते हैं। यथा—

सुलूः सुल्वौ सुल्वः इत्यादि

ऋकारान्त धातृ—ब्रह्मा

प्रथमा	धाता	धातारौ	धातारः
द्वितीया	धातारम्	धातारौ	धातृन्
तृतीया	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः	धात्रोः	धातृणाम्
सप्तमी	धातरि	धात्रोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः

अधिष्ठातृ, कर्तृ, क्रेतृ, जेतृ, ज्ञातृ, द्रष्टृ, दातृ, विधातृ, श्रोतृ, सवितृ, त्वष्टृ, हन्तृ इत्यादि शब्दों के रूप धातृ के समान होते हैं।

ऋकारान्त पितृ—पिता

प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितृन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितृणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

ऋकारान्त भ्रातृ—भाई

प्रथमा	भ्राता	भ्रातरौ	भ्रातरः
द्वितीया	भ्रातरम्	भ्रातरौ	भ्रातृन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	भ्रात्रा	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभिः
चतुर्थी	भ्रात्रे	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
पञ्चमी	भ्रातुः	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
षष्ठी	भ्रातुः	भ्रात्रोः	भ्रातॄणाम्
सप्तमी	भ्रातरि	भ्रात्रोः	भ्रातृषु
सम्बोधन	हे भ्रातः	हे भ्रातरौ	हे भ्रातरः

ऐकारान्त—रै—धन, द्रव्य

प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
ततीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	हे राः	हे रायौ	हे रायः

ओकारान्त गो—गाय, पृथ्वी

प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
ततीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्बोधन	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

औकारान्त ग्लौ—चन्द्र

प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
चतुर्थी	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पञ्चमी	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सम्बोधन	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः

ईकारान्त श्री–लक्ष्मी

प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रिये, श्रियै	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियः, श्रियाः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियः, श्रियाः	श्रियोः	श्रियाम्, श्रीणाम्
सप्तमी	श्रियि. श्रियाम्	श्रियोः	श्रीषु
सम्बोधन	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

धी, भी, ह्री इत्यादि के रूप श्री के समान होते हैं।

उकारान्त धेनु—गाय

प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वा, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्-धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
सम्बोधन	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

उडु, चञ्चु, तनु, रज्जु, रेणु, स्नायु आदि शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

ऊकारान्त—वधू–स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सम्बोधन	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चमू, पुनर्भू, श्वश्रू, प्रसू, वीरसू आदि शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

ऋकारान्त—मातृ

प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

दुहितृ, ननान्दृ, यातृ, स्वसृ शब्द के रूपों में स्वसृ के रूप धातृ शब्द के समान होते हैं। परन्तु भेद केवल इतना है कि द्वितीया के बहुवचन में स्वसॄन् के स्थान पर स्वसॄः बनता है और दुहितृ, ननान्दृ तथा यातृ के रूप मातृ के समान बनते हैं। जिन ऋकारान्त शब्दों के ई प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग रूप बनाये जाते हैं उनके रूप नदी की तरह होते हैं।

ऐकारान्त रै—धन

प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	हे राः	हे रायौ	हे रायः

ओकारान्त द्यो—आकाश

प्रथमा	द्यौः	द्यावौ	द्यावः
द्वितीया	द्याम्	द्यावौ	द्याः
तृतीया	द्यवा	द्योभ्याम्	द्योभिः
चतुर्थी	द्यवे	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
पञ्चमी	द्योः	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
षष्ठी	द्योः	द्यवोः	द्यवाम्
सप्तमी	द्यवि	द्यवोः	द्योषु
सम्बोधन	हे द्यौः	हे द्यावौ	हे द्यावः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

आकारान्त—लता

प्रथमा	लता	लते	लताः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
पञ्चमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	हे लते	हे लते	हे लताः

अर्च्चना, आत्मजा, आज्ञा, आशा, इच्छा, कनिष्ठा, कन्या, करुणा, कला, कलिका, कविता, कान्ता, कुलटा, कृतज्ञता, कृपा, क्षपा, क्षमा क्षुधा, गङ्गा, गणिका, गुहा, ग्रीवा, घण्टिका, घृणा, चिता, चिन्ता, चेष्टा, छटा, छाया, जंघा, जनता, जाया, जिह्वा, जीविका, ज्योत्स्ना, तन्द्रा, तमिस्रा, तारा, दशा, द्राक्षा, नासा, पण्डा, पादुका, पुत्तलिका, प्रभा, प्रमदा प्रार्थना, बालिका, भार्य्या, भाषा, मदिरा, महिला, माला, मुक्ता, मुद्रा, मृत्तिका, मेखला, यवनिका, यूथिका, रेखा, लज्जा, ललना, वसुधा, वाञ्छा, वासना, वार्ता, शय्या, शिक्षा, शिखा, शिला, शोभा, सभा, सिकता, सुधा, सेना, सेवा, हत्या इत्यादि शब्दों के रूप लता के समान होते हैं।

इकारान्त—मति

प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	हे मते	हे मती	हे मतयः

अगुलि, अन्त्येष्टि, अवनति, उन्नति, ऋद्धि, कान्ति, कीर्ति, कृति, कृषि, केलि, क्षिति, खनि, गति, चक्रवृद्धि, चुल्लि, छवि, जन्मभूमि, जाति, तिथि, त्रुटि, द्युति, धरणि, धूलि, धृति, नीति, पंक्ति, प्रकृति, भूति, भूमि, मुक्ति, मूर्त्ति, युवति, रात्रि, रीति, रुचि, वर्ति,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विपत्ति, वृत्ति, वृष्टि, शक्ति, शान्ति, स्मृति, सृष्टि, हानि इत्यादि शब्दों के रूप मति के समान होते हैं।

प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	हे नदि	नद्यौ	हे नद्यः

अटवी, उर्व्वी, कठिनी, कदली, कामिनी, काली, गौरी, कुमारी, कौमुदी, गर्भिणी, ग्रहिणी, जननी, तटिनी, तरंगिनी, तर्ज्जनी, तन्त्री, दासी, धरणी, धात्री, नगरी, नन्दिनी, नारी, पत्नी, पुरी, पुस्ती, पृथ्वी, भगिनी, मञ्जरी, महिषी, मही, युवती, रजनी, राज्ञी, लेखनी, वाणी, वापी, वाहिनी, विभावरी, शर्वरी, श्रेणी इत्यादि शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं।

किन्तु अवी, (विधवा नारी) तरी, तन्त्री, लक्ष्मी और स्तरी के प्रथमा एकवचन में विसर्ग भी होता है। यथा, अवीः, तरीः इत्यादि। शेष रूप नदी के समान होते हैं।

ईकारान्त—स्त्री

प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सम्बोधन	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

धी—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	धीः	धियौ	धियः
द्वितीया	धियम	धियौ	धियः
तृतीया	धिया	धीभ्याम्	धीभिः
चतुर्थी	धियै, धिये	धीभ्याम	धीभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी	धियाः, धियः	धीभ्याम्	धीभ्यः
षष्ठी	धियाः, धियः	धियोः	धियाम्, धीनाम्
सप्तमी	धियाम्, धियि	धियोः	धीषु
सम्बोधन	हे धीः	हे धियौ	हे धियः

ऊकारान्त भू—स्त्रीलिंग

प्रथमा	भूः	भुवौ	भुवः
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृतीया	भुवा	भूभ्याम	भूभिः
चतुर्थी	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पञ्चमी	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
षष्ठी	भुवाः, भुवः	भुवोः	भुवाम्, भूनाम
सप्तमी	भुवाम, भुवि	भुवोः	भूषु
सम्बोधन	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः

ऊकारान्त वर्षाभू—स्त्रीलिंग

प्रथमा	वर्षाभू	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
द्वितीया	वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभूः
तृतीया	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
चतुर्थी	वर्षाभ्वै	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
पञ्चमी	वर्षाभ्वाः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
षष्ठी	वर्षाभ्वाः	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूणाम्
सप्तमी	वर्षाभ्वाम्	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु
सम्बोधन	हे वर्षाभु	हे वर्षाभ्वौ	हे वर्षाभ्वः

औकारान्त नौ—नाव, डोंगी

प्रथमा	नौः	नावौ	नावः
द्वितीया	नावम्	नावौ	नावः
तृतीया	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
चतुर्थी	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पञ्चमी	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
षष्ठी	नावः	नावोः	नावाम्
सप्तमी	नावि	नावोः	नौषु
सम्बोधन	हे नौः	हे नावौ	हे नावः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरान्त नपुंसकलिङ्ग

अकारान्त—फल

प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
तृतीया	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
चतुर्थी	फलाय	फलाभ्याम	फलेभ्यः
पञ्चमी	फलात्	फलाभ्याम	फलेभ्यः
षष्ठी	फलस्य	फलयोः	फलानाम
सप्तमी	फले	फलयोः	फलेषु
सम्बोधन	हे फल	हे फले	हे फलानि

अघ, अङ्क, अङ्ग, अनङ्ग, अज्ञान, अध्यात्म, अन्तर, अन्तरिक्ष, अपत्य, अमृत, अरविन्द, अर्श, अश्रु, अहिफेन, आलवाल, आसन, इन्द्रिय, इन्धन, उत्तरीय, उत्पल, उदर, उद्यान, उपाधान, ऋण, औषध, धन, वित्त, रत्न, सुख, दुःख, अरण्य, कानन, कार्य्य, कर्त्तव्य, नेत्र, पुष्प, वचन, नगर, चक्र, भूषण, तृण, मूल, रक्त, ताम्र, रजत, पुस्तक, वस्त्र, वसन, गृह, मुख, वदन, कमल, गीत, वक्त्र, नयन, क्षेत्र, गरल, अमृत, लक्षण, शुक्ल, पित्तल, चरित्र, वातायन, ललाट, अंगुलीयक, चूर्ण, खनित्र, पवित्र, बीज, विष, चित्त, अस्त्र, शस्त्र, लवण, व्याकरण, व्रण, व्रत, शव, शष्प, शस्य, शीर्ष, साक्ष्य, सादृश्य, साहस, साहित्य, सुवर्ण, सोपान इत्यादि शब्दों के रूप फल के समान होते हैं।

आकारान्त श्रीपा—लक्ष्मी का रक्षक

प्रथमा	श्रीपम्	श्रीपे	श्रीपाणि
द्वितीया	श्रीपम्	श्रीपे	श्रीपाणि
तृतीया	श्रीपेण	श्रीपाभ्याम्	श्रीपैः
चतुर्थी	श्रीपाय	श्रीपाभ्याम्	श्रीपेभ्यः
पञ्चमी	श्रीपात्-द्	श्रीपाभ्याम्	श्रीपेभ्यः
षष्ठी	श्रीपस्य	श्रीपयोः	श्रीपाणाम्
सप्तमी	श्रीपे	श्रीपयोः	श्रीपेषु
सम्बोधन	हे श्रीपम्	हे श्रीपे	हे श्रीपाणि

इकारान्त अक्षि—आँख

प्रथमा	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
द्वितीया	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
चतुर्थी	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
पञ्चमी	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
षष्ठी	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
सप्तमी	अक्षिण, अक्षणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु
सम्बोधन	हे अक्षे, हे अक्षि	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि

इकारान्त वारि—जल

प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

ईकारान्त-सुधी—उत्तम ध्यानी कुल

प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
तृतीया	सुधिया सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
चतुर्थी	सुधिये सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
पञ्चमी	सुधियः सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
षष्ठी	सुधियः सुधिनः	सुधियोः सुधिनोः	सुधियाम् सुधिनाम्
सप्तमी	सुधियि सुधिनि	सुधियोः सुधिनोः	सुधिषु
सम्बोधन	हे सुधे हे सुधे	हे सुधिनी	हे सुधीनि

उकारान्त

उकारान्त मधु—मदिरा

प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	सधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	हे मधो / हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

ऊकारान्त सुलू–अच्छा काटनेवाला हथियार

प्रथमा	सुलु	सुलुनी	सुलूनि
द्वितीया	सुलु	सुलुनी	सुलूनि
तृतीया	सुल्वा / सुलुना	सुलुभ्याम्	सुलुभिः
चतुर्थी	सुल्वे / सुलुने	सुलुभ्याम्	सुलुभ्यः
पञ्चमी	सुल्वः / सुलुनः	सुलुभ्याम्	सुलुभ्यः
षष्ठी	सुल्वः / सुलुनः	सुल्वोः / सुलुनोः	सुल्वाम् / सुलूनाम्
सप्तमी	सुल्वि / सुलुनि	सुल्वोः / सुलुनोः	सुलुषु
सम्बोधन	हे सुलो / हे सुलु	हे सुलुनी	हे सुलूनि

ऋकारान्त धातृ—धारण करनेवाली वस्तु

प्रथमा	धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वितीया	धातृ	धातृणी	धातॄणि
तृतीया	धात्रा / धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे / धातृणे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पंचमी	तुधाः / धातृणः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः / धातृणः	धात्रोः / धातृणोः	धातॄणाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	धातरि / धातृणि	धात्रोः / धातृणोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः / हे धातृ	हे धातृणी	हे धातृणि

हकारान्त विश्वावाह और
हकारान्त विश्ववाह्—भगवान्

प्रथमा	विश्ववाट् ड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
द्वितीया	विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौहः
तृतीया	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
चतुर्थी	विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
पंचमी	विश्वौहः	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
षष्ठी	विश्वौहः	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
सप्तमी	विश्वौहि	विश्वौहोः	विश्वाट्सु / विश्ववाट्त्सु
सम्बोधनः	हे विश्ववाट् / हे विश्ववाड्	हे विश्ववाहौ	हे विश्ववाहः

हकारान्त अनडुह्—बैल

प्रथमा	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वितीया	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृतीया	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
चतुर्थी	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
पञ्चमी	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
षष्ठी	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
सप्तमी	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
सम्बोधन	हे अनड्वान्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

वकारान्त सुदिव्—निर्मलाकाश दिवस

प्रथमा	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
द्वितीया	सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः
तृतीया	सुदिवा	सुद्यु भ्याम्	सुद्यु भिः
चतुर्थी	सुदिवे	सुद्यु भ्याम्	सुद्यु भ्यः
पञ्चमी	सुदिवः	सुद्यु भ्याम्	सुद्यु भ्यः
षष्ठी	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्यु षु
सम्बोधन	हे सुद्यौः	हे सुदिवौ	हे सुदिवः

व्यञ्जनान्त—हलन्त पुँल्लिग शब्द

संस्कृत साहित्य में व्यञ्जनान्त शब्द भी पुँल्लिग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। अतः यहाँ आवश्यक व्यञ्जनान्त पुँल्लिग शब्दों के रूप दिये जाते हैं।

हकारान्त लिह्—चाटनेवाला

प्रथमा	लिट्—ड्	लिहौ	लिहः
द्वितीया	लिहम्	लिहौ	लिहः
तृतीया	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः
चतुर्थी	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
पञ्चमी	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
षष्ठी	लिहः	लिहोः	लिहाम्
सप्तमी	लिहि	लिहोः	लिट्सु / लिड्सु
सम्बोधन	हे लिट्—ड्	हे लिहौ	हे लिहः

हकारान्त दुह्—दुहनेवाला

प्रथमा	धुक्—धुग्	दुहौ	दुहः
द्वितीया	दुहम्	दुहौ	दुहः
तृतीया	दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः
चतुर्थी	दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
पञ्चमी	दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
षष्ठी	दुहः	दुहोः	दुहाम्
सप्तमी	दुहि	दुहोः	धुक्षु
सम्बोधन	हे धुक्—ग्	हे दुहौ	हे दुहः

नकारान्त राजन्—राजा

प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
ततीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	राज्ञि / राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

नकारान्त आत्मन्—आत्मा

प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पञ्चमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

नकारान्त वृत्रहन्—इन्द्र भगवान्

प्रथमा	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
द्वितीया	वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः
तृतीया	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
चतुर्थी	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
पञ्चमी	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
षष्ठी	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
सप्तमी	वृत्रघ्नि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
सम्बोधन	हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः

नकारान्त मघवन्—इन्द्र

प्रथमा	मघवा	मघवानौ	मघवानः
द्वितीया	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
तृतीया	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
चतुर्थी	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पञ्चमी	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
षष्ठी	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
सप्तमी	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
सम्बोधन	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकारान्त श्वन्—कुक्कुर

प्रथमा	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पञ्चमी	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
षष्ठी	शुनः	शुनोः	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनोः	श्वसु
सम्बोधन	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः

नकारान्त युवन्—युवक

प्रथमा	युवा	युवानौ	युवानः
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यूनः
तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पञ्चमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
षष्ठी	यूनः	यूनोः	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनोः	युवसु
सम्बोधन	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

नकारान्त पथिन्—मार्ग

प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

जकारान्त

जकारान्त ऋत्विज्—हवन करनेवाला

प्रथमा	ऋत्विक्-ग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
द्वितीया	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः
चतुर्थी	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
पञ्चमी	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
षष्ठी	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
सप्तमी	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु
सम्बोधन	हे ऋत्विक्–ग्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः

चकारान्त पयोमुच्—बादल

प्रथमा	पयोमुक् / पयोमुग्	पयोमुचौ	पयोमुचः
द्वियीया	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृतीया	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः
चतुर्थी	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
पञ्चमी	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
षष्ठी	पयोमुचः	पयोमुचोः	पयोमुचाम्
सप्तमी	पयोमुचि	पयोमुचोः	पयोमुक्षु
सम्बोधन	हे पयोमुक् / हे पयोमुग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः

तकारान्त महत्—बड़ा, श्रेष्ठ

प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृतीया	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
चतुर्थी	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पञ्चमी	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
षष्ठी	महतः	महतोः	महताम्
सप्तमी	महति	महतोः	महत्सु
सम्बोधन	हे महत्	हे महान्तौ	हे महान्तः

तकारान्त भवत्—आप

प्रथमा	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वितीया	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृतीया	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
चतुर्थी	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
षष्ठी	भवतः	भवतोः	भवताम्
सप्तमी	भवति	भवतोः	भवत्सु
सम्बोधन	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

तकारान्त भगवत्—परमेश्वर

प्रथमा	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
द्वितीया	भगवन्तम्	भगवन्तौ	भगवतः
तृतीया	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
चतुर्थी	भगवते	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
पञ्चमी	भगवतः	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
षष्ठी	भगवतः	भगवतोः	भगवताम्
सप्तमी	भगवति	भगवतोः	भगवत्सु
सम्बोधन	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

तकारान्त भूभृत् - राजा, पर्वत

प्रथमा	भूभृत्—द्	भूभृतौ	भूभृतः
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पञ्चमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
सम्बोधन	हे भूभृत्-द्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः

सकारान्त पुम्स्—पुरुष

प्रथमा	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वितीया	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
चतुर्थी	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पञ्चमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
षष्ठी	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
सप्तमी	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सम्बोधन	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकारान्त वेधस्—ब्रह्मा

प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पञ्चमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	{ वेधस्सु वेधःसु
सम्बोधन	हे वेधः	हे वेधसौ	हे वेधसः

शकारान्त तादृश्—उसके समान

प्रथमा	तादृक्	तादृशौ	तादृशः
द्वितीया	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृतीया	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
चतुर्थी	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
पञ्चमी	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
षष्ठी	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
सप्तमी	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु
सम्बोधन	हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः

यादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश्, एतादृश्, इत्यादि के रूप तादृश् के समान होते हैं।

सकारान्त विद्वस्—विद्वान्

प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पञ्चमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
षष्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सम्बोधन	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकारान्त श्रेयस्--अधिक प्रशंसनीय

प्रथमा	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
द्वितीया	श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयसः
तृतीया	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
चतुर्थी	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
पञ्चमी	श्रेयसः	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
षष्ठी	श्रेयसः	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
सप्तमी	श्रेयसि	श्रेयसोः	श्रेयस्सु / श्रेयःसु
सम्बोधन	हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग शब्द

हकारान्त उपानह्--जूता

प्रथमा	उपानत्–द्	उपानहौ	उपानहः
द्वितीया	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृतीया	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
चतुर्थी	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पञ्चमी	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
षष्ठी	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
सप्तमी	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
सम्बोधन	हे उपानत्–द्	हे उपानहौ	हे उपानहः

वकारान्त दिव्—आकाश

प्रथमा	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वितीया	दिवम्	दिवौ	दिवः
तृतीया	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
चतुर्थी	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
पञ्चमी	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
षष्ठी	दिवः	दिवोः	दिवाम्
सप्तमी	दिवि	दिवोः	द्युषु
सम्बोधन	हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः

रेफान्त गिर्—वचन

प्रथमा	गीः	गिरौ	गिरः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृतीया	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
चतुर्थी	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पञ्चमी	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीर्षु
सम्बोधन	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

तकारान्त सरित्--नदी

प्रथमा	सरित्–द्	सरितौ	सरितः
द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
पञ्चमी	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
षष्ठी	सरितः	सरितोः	सरिताम्
सप्तमी	सरिति	सरितोः	सरित्सु
सम्बोधन	हे सरित्–द्	हे सरितौ	हे सरितः

चकारान्त वाच्—बात

प्रथमा	वाक्–ग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पञ्चमी	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
षष्ठी	वाचः	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचोः	वाक्षु
सम्बोधन	हे वाक्—ग्	हे वाचौ	हे वाचः

शकारान्त दिश्—दिशा

प्रथमा	दिक्—दिग्	दिशौ	दिशः
द्वितीया	दिशम्	दिशौ	दिशः
तृतीया	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
चतुर्थी	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
पञ्चमी	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	दिशः	दिशोः	दिशाम्
सप्तमी	दिशि	दिशोः	दिक्षु
सम्बोधन	हे दिक्—ग्	हे दिशौ	हे दिशः

षकारान्त आशिष्—आशीर्वाद

प्रथमा	आशीः	आशिषौ	आशिषः
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पञ्चमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीष्षु / आशीःषु
सम्बोधन	हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः

रेफान्त वार्—पानी

प्रथमा	वाः	वारी	वारि
द्वितीया	वाः	वारी	वारि
तृतीया	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
चतुर्थी	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
पञ्चमी	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
षष्ठी	वारः	वारोः	वाराम्
सप्तमी	वारि	वारोः	वार्षु
सम्बोधन	हे वाः	हे वारी	हे वारि

नकारान्त अहन्--दिन

प्रथमा	अहः	अह्नी-अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी-अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि	अह्नोः	अहत्सु / अहःसु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बोधन	हे अहः	हे अह्नी हे अहनी	हे अहानि

तकारान्त ददत्—दाता

प्रथमा	ददत्-द्	ददती	ददति ददन्ति
द्वितीया	ददत्-द्	ददती	ददन्ति
तृतीया	ददता	ददद्भ्याम्	ददद्भिः
चतुर्थी	ददते	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
पञ्चमी	ददतः	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
षष्ठी	ददतः	ददतोः	ददताम्
सप्तमी	ददति	ददतोः	ददत्सु
सम्बोधन	हे ददत्-द्	हे ददती	हे ददति हे ददन्ति

तकारान्त पचत्—पकानेवाला

प्रथमा	पचत्-द्	पचती	पचन्ति
द्वितीया	पचत्-द्	पचती	पचन्ति
तृतीया	पचता	पचद्भ्याम्	पचद्भिः
चतुर्थी	पचते	पचद्भ्याम्	पचद्भ्यः
पञ्चमी	पचतः	पचद्भ्याम्	पचद्भ्यः
षष्ठी	पचतः	पचतोः	पचताम्
सप्तमी	पचति	पचतोः	पचत्सु
सम्बोधन	हे पचत्-द्	हे पचती	हे पचन्ति

षकारान्त चक्षुष्—नेत्र

प्रथमा	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
द्वितीया	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
तृतीया	चक्षुषा	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भिः
चतुर्थी	चक्षुषे	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
पञ्चमी	चक्षुषः	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
षष्ठी	चक्षुषः	चक्षुषोः	चक्षुषाम
सप्तमी	चक्षुषि	चक्षुषोः	चक्षुःषु चक्षुष्षु
सम्बोधन	हे चक्षुः	हे चक्षुषी	हे चक्षूंषि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकारान्त पयस्—दूध या पानी

प्रथमा	पयः	पयसी	पयांसि
द्वितीया	पयः	पयसी	पयांसि
तृतीया	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
चतुर्थी	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पञ्चमी	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
षष्ठी	पयसः	पयसोः	पयसाम्
सप्तमी	पयसि	पयसोः	पयस्सु / पयःसु
सम्बोधन	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि

सर्वनाम शब्द

संस्कृत में सर्वनाम शब्दों की संख्या ३५ है। इनमें कुछ सर्वनाम शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी के समान संज्ञाओं के बदले प्रयुक्त होते हैं। कुछ विशेषणों के समान भी व्यवहार में लाये जाते हैं। सर्वनाम शब्दों की तालिका निम्न प्रकार है—

१ सर्व २. विश्व ३. उभ ४. उभय ५. डतर अर्थात् डतर जोड़कर बनाये हुए शब्द यथा कतर, यतर इत्यादि ६. डतम अर्थात् डतम जोड़कर बनाये हुए शब्द; यथा कतम, यतम इत्यादि ७. अन्य ८. अन्यतर ९. इतर १० त्वत् ११. त्व १२. नेम १३. सम १४. सिम १५. पूर्व १६. पर १७. अवर १८. दक्षिण १९. उत्तर २०. अपर २१. अधर २२. स्व २३. अन्तर २४. त्यद् २५. तद् २६. यद् २७. एतद् २८. इदम् २९. अदस् ३०. एक ३१. द्वि ३२. युष्मद् ३३. अस्मद् ३४. भवत् ३५. किम्।

इनमें त्वत् और त्व दोनों ही परस्पर पर्यायवाची हैं। नेम अर्ध का और सम सर्व का पर्याय है।

यह शब्द के लिए संस्कृत में इदम् और एतद् शब्द हैं। इसी प्रकार वह के लिये भी दो शब्द हैं तद् और अदस्। इनके प्रयोगों के सम्बन्ध में निम्न नियम प्रचलित हैं।

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अर्थात् इदम् शब्द के रूपों का प्रयोग तभी करना चाहिए, जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध करना हो। यदि किसी बहुत ही निकटस्थ वस्तु का बोध करना हो तो एतद् शब्द के रूपों का प्रयोग करना उपयुक्त है। दूरस्थ वस्तु का बोध कराने के लिए अदस् शब्द के रूप तथा जो वस्तु सामने नहीं—परोक्ष है उसके ज्ञान के लिए तद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द के रूपों का प्रयोग अधिक संगत है। जैसे—यदि दो पुरुष पास बैठे हुए हैं तो जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में एतद् शब्द और जो जरा दूर है उसके विषय में इदम् शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई बात कहनी है तो अदस् शब्द का प्रयोग करेंगे। तद् शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के विषय में होगा जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं है।

सर्वनाम शब्दों के रूप नीचे लिखे जाते हैं।

सर्व—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

सर्वा—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सम्बोधन	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

सर्व—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

विश्व, अन्य, इतर, कतर, अभ्यन्तर इत्यादि शब्दों के रूप सर्व शब्द के समान चलेंगे।

इदम्—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृतीया	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

इदम्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एताः
तृतीया	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

इदम्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम	इमे	इमानि
तृतीया	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

एतद्—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पञ्चमी	एतस्मात् एतस्माद्,	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

एतद्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	एषा	एते	एताः
द्वितीया	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः
तृतीया	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पञ्चमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

एतद्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	एतत्, एतद्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते, एने	एतानि, एनानि
तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पञ्चमी	एतस्माद्, एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

तद्—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पञ्चमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

तद्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	तत्	ते	तानि
द्वितीया	तत्	ते	तानि
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

अदस्—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

अदस्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अदस्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	अदः	अमू	अमूनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमूनि
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्‌द्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

यद्—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पञ्चमी	यस्मात्-द्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

यद्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पञ्चमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

यद्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	यत्	ये	यानि
द्वितीया	यत्	ये	यानि
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पञ्चमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किम्—पुंल्लिङ्ग

प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्, द्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

किम्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभि
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पञ्चमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

किम्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्-द्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

युष्मद्—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पञ्चमी	त्वत्, द्	युवाभ्याम्	युष्मत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

अस्मद्—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

संख्यावाचक शब्द

संस्कृत में संख्या वाचक शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ आवश्यक संख्यावाचक शब्दों के रूप दिये जाते हैं। एक शब्द के रूप केवल एकवचन और तीनों लिङ्गों में होते हैं।

एक शब्द—एक अर्थ का वाचक

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्रथमा	एकः	एकम्	एका
द्वितीया	एकम्	एकम्	एकाम्
तृतीया	एकेन	एकेन	एकया
चतुर्थी	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
पञ्चमी	एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः
षष्ठी	एकस्य	एकस्य	एकस्याः
सप्तमी	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में तथा तीनों लिङ्गों में होते हैं। नपुंसक लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में समान शब्द ही रूप होते हैं।

द्वि—दो

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
	द्विवचन	द्विवचन
प्रथमा	द्वौ	द्वे
द्वितीया	द्वौ	द्वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
चतुर्थी	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पञ्चमी	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
षष्ठी	द्वयोः	द्वयोः
सप्तमी	द्वयोः	द्वयोः

त्रि शब्द के रूप केवल वहुवचन में होते हैं।

त्रि—तीन

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	वहुवचन	वहुवचन	वहुवचन
प्रथमा	त्रयः	त्रीणि	तिस्रः
द्वितीया	त्रीन्	त्रीणि	तिस्रः
तृतीया	त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः
चतुर्थी	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
पञ्चमी	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
षष्ठी	त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
सप्तमी	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

चतुर्—(चार)

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	वहुवचन	वहुवचन	वहुवचन
प्रथमा	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
द्वितीया	चतुरः	चत्वारि	चतस्रः
तृतीया	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
चतुर्थी	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभिः
पञ्चमी	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
षष्ठी	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
सप्तमी	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

पञ्चन् और इससे आगे वाली सभी संख्याओं में शव्द रूप केवल वहुवचन में और तीनों लिङ्गों में समान होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चन्—पाँच

पुलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

	बहुवचन
प्रथमा	पञ्च
द्वितीया	पञ्च
तृतीया	पञ्चभिः
चतुर्थी	पञ्चभ्यः
पंचमी	पञ्चभ्यः
षष्ठी	पञ्चानाम्
सप्तमी	पञ्चसु

षष्—छः सप्तन्—सात

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

बहुवचन

	षष्	सप्तन्
प्रथमा	षट्	सप्त
द्वितीया	षट्	सप्त
तृतीया	षड्भिः	सप्तभिः
चतुर्थी	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
पञ्चमी	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
षष्ठी	षण्णाम्	सप्तानाम्
सप्तमी	षट्सु	सप्तसु

अष्टन्—आठ

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	अष्टौ, अष्ट
द्वितीया	अष्टौ, अष्ट
तृतीया	अष्टाभिः, अष्टभिः
चतुर्थी	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
पञ्चमी	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
षष्ठी	अष्टानाम्
सप्तमी	अष्टासु, अष्टसु

नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, चतुर्दशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् सप्तदशन्, अष्टादशन् शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक-से होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊनविंशति से लेकर विंशति में अन्त होने वाले संख्यावाचक शब्दों के रूप केवल एकवचन में ही ह्रस्व इकारान्त रुचि के समान होते हैं। यथा—

विंशति

	एकवचन
प्रथमा	विंशतिः
द्वितीया	विंशतिम्
तृतीया	विंशत्या
चतुर्थी	विंशत्यै, विंशतये
पञ्चमी	विंशत्याः, विंशतेः
षष्ठी	विंशत्याः, विंशतेः
सप्तमी	विंशत्याम, विंशतौ

त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत् तथा शत् में अन्त होनेवाले अन्य संख्यावाचक शब्दों के रूप 'सरित्' के समान होते हैं।

	त्रिंशत् एकवचन	चत्वारिंशत् एकवचन
प्रथमा	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वितीया	त्रिंशतम्	चत्वारिंशम्
तृतीया	त्रिंशता	चत्वारिंशता
चतुर्थी	त्रिंशते	चत्वारिंशते
पञ्चमी	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
षष्ठी	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
सप्तमी	त्रिंशति	चत्वारिंशति

षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति इत्यादि इकारान्त संख्यावाचक शब्दों के रूप 'त्रिंशति' के समान चलते हैं।

	षष्टि एकवचन	सप्तति एकवचन
प्रथमा	षष्टिः	सप्ततिः
द्वितीया	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृतीया	षष्ट्या	सप्तत्या
चतुर्थी	षष्ट्यै, षष्टये	सप्तत्यै, सप्ततये
पंचमी	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
सप्तमी	षष्ट्यां, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, पद्म, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, और इनके रूप फल के समान तीनों वचनों में चलते हैं। कोटि शब्द के रूप रुचि के समान होते हैं।

क्रमवाचक (Ordinals)

(क) एक, द्वि, त्रि, चतुर् और षष् के क्रमवाचक रूप अनियमित हैं। पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन् के क्रमवाचक न् हटाकर म् लगाने से बनते हैं। यथा—पञ्चमः, सप्तमः, अष्टमः, नवमः और दशमः।

(ख) एकादशन् से नवदशन् (ऊनविंशति) तक केवल न् हटाने से क्रमवाचक शब्द बन जाते हैं। यथा—एकादशः, द्वादशः, त्रयोदशः, चतुर्दशः, पञ्चदशः, षोडशः, सप्तदशः, अष्टादशः, नवदशः—एकोनविंशः—एकोनविंशतितमः।

(ग) विंशति से ऊपर तम लगाने से अथवा विंशति के ति और शेष व्यञ्जन के हटाने से क्रमवाचक संख्या शब्द बनते हैं। इस अवस्था में संयुक्त गणनावाचकों का अन्त्य स्वर अ में बदल जाता है। परन्तु षष्टि, सप्तति, अशीति और नवति को तम लगाने से ही क्रमवाचक शब्द बनते हैं। यथा—विंशतितमः, विंशः, त्रिंशत्तमः, चत्वारिंशत्तमः, षष्टितमः, एकषष्टिः—एक षष्टितमः, शततमः, सहस्रतमः—इत्यादि।

एक शब्द के क्रमवाचक प्रथमः, आदिमः, अग्रिमः आदि; द्वि के द्वितीयः; त्रि के तृतीयः चतुर के चतुर्थः; और षष् के षष्ठः होते हैं। यथा—

क्रमवाचक

संख्या	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिंग
एक	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
द्वि	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
चतुर	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
षष्ठ	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
विंशति	विंशतितमः	विंशतितमी	विंशतितमम्

क्रमवाचक शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में गज, नपुंसक लिंग में फल और स्त्रीलिंग में नदी के समान होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलनात्मक विशेषण (Degree of Comparison).

१—तुलना के द्वारा दो में से एक का उत्कर्ष जाना जाय तो शब्द के परे तरप् और अनेक में से एक का उत्कर्ष जाना जाय तो तमप् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। तरप् और तमप् के लगने से ई और ऊ का विकल्प से ह्रस्व होता है।

२—गुणवाचक विशेषण के परे तरप् और तमप् के स्थान में क्रम से ईयसुन् और इष्ठन् प्रत्ययों को जोड़ा जाता है। ईयसुन् और इष्ठन् प्रत्ययों के लगने से मत्, वत्, इन् और तृ प्रत्ययान्त विशेषणों से इन प्रत्ययों का लोप हो जाता है। यथा—वलवान्—वलीयस्, वलिष्ठः, मतिमान्—मतीयस्, मतिष्ठः।

३—ईयसुन् और इष्ठान् प्रत्यय के आने पर व्यञ्जन के पूर्ववर्ती ऋकार के स्थान पर र् हो जाता है। यथा—कृश्—क्रशीयस्, क्रशिष्ठः, दृढ—द्रढीयस्, द्रढिष्ठः।

तालिका

कुशलः	कुशलतरः	कुशलतमः
विद्वात्	विद्वत्तरः	विद्वत्तमः
धनी	धनितरः	धनितमः
महान्	महत्तरः	महत्तमः
लघुः	लघुतरः, लघीयान्	लघुतमः, लघिष्ठः
पाचकः	पाचकतरः	पाचकतमः
पटुः	पटीयस् (पटीयान्)	पटिष्ठः
प्रशस्यः	श्रेयस् (श्रेयान्), ज्यायान्	श्रेष्ठः, ज्येष्ठः
वृद्धः	ज्यायस् (ज्यायान्)	ज्येष्ठः
अन्तिकः	नेदीयस् (नेदीयान्)	नेदिष्ठः
अल्पः	अल्पीयस् (अल्पीयान्)	अल्पिष्ठः
	कनीयस् (कनीयान्)	कनिष्ठः
उरुः (विशाल)	वरीयस् (वरीयान्)	वरिष्ठः
क्षिप्रः (शीघ्र)	क्षेपीयस् (क्षेपीयान्)	क्षेपिष्ठः
क्षुद्रः	क्षोदीयस् (क्षोदीयान्	क्षोदिष्ठः
गुरुः	गरीयस् (गरीयान्)	गरिष्ठः
दीर्घः	द्राघीयस् (द्राघीयान्)	द्राघिष्ठः
दूरः	द्रवीयस् (द्रवीयान्)	द्रविष्ठः
प्रियः	प्रेयस् (प्रेयान्)	प्रेष्ठः
तृप्रः	त्रपीयस् (त्रपीयान्)	त्रपिष्ठः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहु	भूयस् (भूयान्)	भूयिष्ठः
बहुल	बंहीयस् (बंहीयान्)	बंहिष्ठः
बाढम्	साधीयस् (साधीयान्)	साधिष्ठः
युवन्	यवीयस् (यवीयान्)	यविष्ठः
	कनीयस् (कनीयान्)	कनिष्ठः
विपुलः	ज्यायस् (ज्यायान्)	ज्येष्ठः
वृन्दारकः	वृन्दीयस् (वृन्दीयान्)	वृन्दिष्ठः
स्थिरः	स्थेयस् (स्थेयान्)	स्थेष्ठः
स्थूलः	स्थवीयस् (स्थवीयान्)	स्थविष्ठः
स्फिरः	स्फेयस् (स्फेयान्)	स्फेष्ठः
ह्रस्वः	ह्रसीयस् (ह्रसीयान्)	ह्रसिष्ठः
मृदु	म्रदीयस् (म्रदीयान्)	म्रदिष्ठः
भृश्	भ्रशीयस् (भ्रशीयान्)	भ्रशिष्ठः
पृथु	प्रथीयस्	प्रथिष्ठः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

स्त्रीप्रत्यय

स्त्रीलिङ्ग शब्द दो प्रकार के होते हैं—मूल स्त्रीलिङ्ग शब्द और प्रत्यय के योग से बने स्त्रीलिङ्ग शब्द। जिन शब्दों का अर्थ मूल से ही स्त्रीवाचक है और रूप पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में नहीं होते, उनको मूल स्त्रीवाचक शब्द कहते हैं। यथा—

लता, रमा, माला, शाला, मति, कृति, धेनु, वधू, नौ, मातृ, स्वसृ, आपद्, शरत्, प्रतिपत्, समिध्, उषस्, आशिष्, ककुभ्, वाच्, गिर् आदि।

प्रत्यय के योग से बने स्त्रीलिङ्ग शब्द मूल से स्त्रीलिङ्ग नहीं होते; किन्तु स्त्रीप्रत्यय जोड़ देने से उनमें स्त्रीत्व आता है; ऐसे शब्द जोड़ीदार होते हैं अर्थात् पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों लिङ्गों में व्यवहृत होते हैं। अतः—

स्त्रीप्रत्यय—वे प्रत्यय हैं, जिनके लगने पर पुंल्लिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग हो जाते हैं। स्त्रीप्रत्यय कुल आठ हैं—

टाप्, डाप्, चाप् (आ); ङीप्, ङीष्, ङीन् (ई); ऊङ् (ऊ) और ति।

टाप् (आ)

१ **अजाद्यतष्टाप्** ४।१।४—अज, एड, कोकिल, चटक, अश्व, मूषिक, बाल, होड, पाक, वत्स, विलात, पूर्वापहाण, अपरापहाण, कुञ्च, उष्णिह, देवविश, ज्येष्ठ, कनिष्ठ, मध्यम, दंष्ट्र शब्दों में तथा अकारान्त शब्दों में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए टाप् (आ) प्रत्यय लगता है। यथा—

अज + टाप् = अज + आ = अजा (बकरी), अश्व + टाप् = अश्व + आ = अश्वा, चटक + टाप् = चटक + आ = चटका (गौरैया), एडक + आ = एडका (भेंड़ी), मूषिक + आ = मूषिका, बाल + आ = बाला, वत्स + आ = वत्सा (बछिया), होड + आ = होडा (छोकरी), मन्द + आ = मन्दा (कन्या), विलात + आ = विलाता (कन्या), कोकिल + आ = कोकिला, ज्येष्ठ + आ = ज्येष्ठा, कनिष्ठ + आ = कनिष्ठा, मध्यम + आ = मध्यमा।

अकारान्त शब्द—दक्ष—दक्षा, कृश—कृशा, चपल—चपला, क्रूर—क्रूरा, सरल—सरला, तरल—तरला, दृढ—दृढा, कुशल—कुशला, प्रबल—प्रबला, अचल—अचला,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निपुण--निपुणा, मलिन --मलिना, चतुर---चतुरा, दक्षिण-- दक्षिणा, उत्तर--- उत्तरा, पूर्व---पूर्वा पश्चिम—पश्चिमा, प्रथम—प्रथमा, द्वितीय—द्वितीया, तृतीय—तृतीया, मनोहर— मनोहरा, अनुकूल—अनुकूला, प्रतिकूल—प्रतिकूला।

२ **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** ७।३।४४—टाप् प्रत्यय जोड़ने के पूर्व यदि शब्द में 'क' अन्त में आवे और उसके पूर्व अ हो तो अ के स्थान में 'इ' हो जाती है। परन्तु यह नियम तभी लगता है, जब क किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व सुप् प्रत्ययों में से कोई न लगा हो। यथा—

मूषक+टाप् (आ)=मूषिका, कारक+आ=कारिका, सर्व+आ=सर्विका, मायक+आ=मायिका, पाचक+आ=पाचिका, नाटक=आ=नाटिका, पालक +आ=पालिका, बालक+आ=बालिका, नायक+आ=नायिका, दाक्षिणात्यक +आ=दाक्षिणात्यिका, गायक+आ=गायिका, घातक+घातिका, परिव्राजक +आ=परिव्राजिका, दायक+आ=दायिका, दारक+आ=दारिका।

(क) यदि क किसी प्रत्यय का न हो तो पूर्ववर्ती अकार का इकार नहीं होता। यथा—

शङ्क+टाप्=शङ्क+आ=शङ्का—यहाँ पर 'क' किसी प्रत्यय का नहीं है, किन्तु धातु का है।

(ख) इत्व विधायक नियम के अपवाद—

३—**आशिषि चोपसंख्यानम्** (वा०) आशीर्वाद अर्थ में वर्तमान शब्दों को इत्व नहीं होता है। यथा—

जीवतात्—जीवक+आ=जीवका, नन्दतात् — नन्दक + आ=नन्दका, भवतात्=भवक+आ=भावका।

४ **उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम्** (वा०) उत्तरपद का जहाँ लोप हुआ हो, वहाँ इत्व नहीं होता। यथा—देवदत्तिका=देवका, यज्ञदत्तिका=यज्ञका।

५ क्षिपका, ध्रुवका; नक्षत्र अर्थ में तारका, कन्यका और अष्टका शब्दों में ककार के पूर्ववर्ती अकार को इकार नहीं होता। यथा—अष्टक+आ=अष्टका, कन्यक+आ=कन्यका, तारक+आ=तारका, कारक+आ=कारका, चटक+आ=चटका, अधित्यक+आ=अधित्यका, उपत्यक+आ=उपत्यका।

डाप् (आ)

६ **डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्** ४।१।१३—बहुव्रीहि समास होने से मन्नन्त शब्द और अन् प्रत्ययान्त शब्दों के उत्तर विकल्प से डाप् (आ) प्रत्यय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा—

मन्नन्त—पाम + डाप् = पाम + आ = पामा, पामे, पामाः, सीम + आ = सीमा, सीमे, सीमाः। अन् भागान्त—बहूनि सन्त्यस्यां पर्वणि बहुपर्वा—बहुपर्व + आ = बहुपर्वा, बहुपर्वे, बहुपर्वाः—पक्षान्तर में—बहुपर्वा, बहुपर्वाणौ, बहुपर्वाणः।

७ **ऊन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्** ४।१।२८—जिन अन् भागान्त शब्दों की उपधा का लोप होता है, उनके परे बहुव्रीहि समास होने से विकल्प से डाप् और ङीप् प्रत्यय होते हैं। यथा—

बहवः सन्त्यत्र राजानः—बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः, ङीप् में बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्यौ, बहुराज्ञ्यः। पक्षान्तर में बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः।

चाप् (आ)

८ **यङश्चाप्** ४।१।७४—जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के लिए चाप् (आ) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

आम्बष्ट्य + चाप् = आम्बष्ठ्य + आ = आम्बष्ठ्या, सौवीर्य + आ = सौवीर्या, कारीषगन्ध्य + आ + कारीषगन्ध्या, वाराह्य + वाराह्या।

९ **षाच्च यञः** (वा०)—षकार से परे यञ् भागान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए चाप् प्रत्यय लगता है। यथा—

शार्कराक्ष्य + आ = शार्कराक्ष्या, पौतिमाष्य + आ = पौतिमाष्या, गौकक्ष्य + आ = गौकक्ष्या।

१० **आवट्याच्च** ४।१।७५—जातिवाची आवट्य शब्द से चाप् प्रत्यय होता है।

यथा—आवट्य + आ = आवट्या।

११ **सूर्याद्देवतायां चाब् वक्तव्यः** (वा०)—सूर्य से देवता अर्थ में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से चाप् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—सूर्य + आ = सूर्या—सूर्य नामक देवता की स्त्री; विकल्पाभाव पक्ष में सूर्य + ङीष् = सूर्य + ई = सूरी—कुन्ती।

ङीप् (ई)

१२ **ऋन्नेभ्यो ङीप्** ४।१।५—ऋकारान्त और नकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों में ङीप् (ई) जोड़ देने से स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाये जाते हैं। यथ—

(क) ऋकारान्त—दातृ + ङीप् = दातृ + ई = दात्री, गन्तृ + ई = गन्त्री, हन्तृ + ई = हन्त्री, धातृ + ई = धात्री, कर्तृ + ई = कर्त्री, भोक्तृ + ई = भोक्त्री, संवादयितृ + ई = संवादयित्री, जनयितृ + ई = जनयित्री, प्रसवितृ + ई = प्रसवित्री।

(ख) नकारान्त—तेजस्विन् + ई = तेजस्विनी, मायाविन् + ई = मायाविनी, गुणिन् + ई = गुणिनी, कामिन् + ई = कामिनी, यशस्विन् + ई = यशस्विनी, तपस्विन् + ई =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तपस्विनी, मानिन्+ई+मानिनी, मेधाविन्+मेधाविनी, मनोहारिन्+ई= मनोहारिणी, अधिकारिन् + ई=अधिकारिणी, उपकारिन्+ई = उपकारिणी, अनुरागिन्+ई = अनुरागिणी, प्रियवादिन्+ई=प्रियवादिनी, विलासिन्+ई =विलासिनी।

अपवाद—

१३ **न षट् स्वस्रादिभ्यः** ४।१।१०—स्वसृ इत्यादि ऋकारान्त शब्दों में ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं लगते हैं। यथा—

स्वसा, याता, दुहिता, माता, ननान्दा, तिस्रः, चतस्रः (ये शब्द स्वाभाविक स्त्रीवाची हैं)।

१४ **अल्लोपोऽनः** ६।४।१३४—ङीप् होने से अन् भागान्त शब्दों की उपधा का लोप होता है। यथा—

राजन्+ङीप्=राजन्+ई=राज्न्+ई=राज् न् (ज्ञ्) ई=राज्ञी। स्वरान्त शब्दों के अन्तिम स्वर का भी लोप हो जाता है। यथा—

सुमङ्गल+ई=सुमङ्गल्+ई=सुमङ्गली।

१५ **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** ४।१।१५—टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच् दघ्नच्, मात्रच्, तयप ठक्, ठञ्, कञ् क्वरप्, आदि प्रत्ययों से बने अकारान्त शब्दों से ङीप प्रत्यय लगता है। यथा—

टित्—वनेचर—वनेचरी, सेनाचर—सेनाचरी; ढ—वैनतेय—वैनतेयी (गरुड़ की स्त्री), गाङ्गेय—गाङ्गेयी, सारमेय—सारमेयी, अण्—कुम्भकार—कुम्भकारी, अञ्—तापस—तापसी, द्वयसच्—जानुद्वयस—जानुद्वयसी, दघ्नच्—जानुदघ्न—जानुदघ्नी, मात्र—जानुमात्र—जानुमात्री, तयप्—चतुष्टय—चतुष्टयी, दशतय—दशतयी, ठक्—धार्मिक—धार्मिकी, ठञ्—मासिक—मासिकी, लावणिक—लावणिकी, कञ्- यादृश—यादृशी, तादृश—तादृशी; क्वरप्—नश्वर—नश्वरी, गत्वर—गत्वरी।

१६ उ और ऋ लोप होने वाले प्रत्ययों के योग से बने शब्दों के उत्तर में ङीप् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

उकारेत्—भवत्—भवती, इयत्—इयती, श्रीमत्—श्रीमती, बुद्धिमत्—बुद्धिमती, पुत्रवत्—पुत्रवती, लज्जावत्—लज्जावती, बलवत्—बलवती, प्रभावत्—प्रभावती, कृतवत्—कृतवती, प्रेयस्—प्रेयसी, श्रेयस्—श्रेयसी, गरीयस्—गरीयसी, लघीयस्—लघीयसी, कनीयस्—कनीयसी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋकारेत्—सत्—सती, रुदत्—रुदती, शृण्वत्—शृण्वती, बिभ्रत्—बिभ्रती, कुर्वत् —कुर्वती, गृह्णत—गृह्णती, जानत्—जानती ।

विशेष नियम (क) ङीप् होने से भ्वादि, दिवादि और चुरादि गणीय धातु के उत्तर शतृ प्रत्यय को न् का आगम होता है। यथा -भ्वादि—धावत्—धावन्ती, गच्छत्—गच्छन्ती, पतत्—पतन्ती, तिष्ठत्—तिष्ठन्ती, चलत्—चलन्ती, पश्यत्—पश्यन्ती; दिवादि—दीव्यत्—दीव्यन्ती, नश्यत्—नश्यन्ती, जीर्यत्—जीर्यन्ती, मुह्यत् — मुह्यन्ती । चुरादि—कारयत्—कारयन्ती, स्मारयत्—स्मारयन्ती, स्थापयत्—स्थापयन्ती, पालयत्—पालयन्ती । तुदादिगणीय और अदादिगणीय धातुओं में विकल्प से न् का आगम होता है । यथा—तुदत्—तुदन्ती - तुदती, इच्छत्—इच्छन्ती—इच्छती । अदादिगणीय—यात् - यान्ती—याती, मात्—मान्ती—माती, स्नात्-स्नान्ती —स्नाती ।

(ख) ङीप् होने से स्यत् प्रत्ययान्त शब्दों को विकल्प से न् का आगम होता है । यथा—भविष्यत्—भविष्यन्ती, करिष्यत्—करिष्यन्ती—करिष्यती, दास्यत्—दास्यन्ती—दास्यती, यास्यत्—यास्यन्ती—यास्यती ।

१७ पादोऽन्यतरस्याम्—पाद भागान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—

द्विपाद्—द्विपादी, त्रिपाद्—त्रिपादी, चतुष्पाद्—चतुष्पादी ।

१८ **यञश्च** ४।१।१६—यञ् प्रत्ययान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय जुड़ता है ।

१९ **हलस्तद्धितस्य** ६।४।१५०—ङीप् प्रत्यय होने से हल् वर्ण के परवर्ती य प्रत्यय का लोप होता है। यथा—

गार्ग्य + ङीप्=गार्ग्य + ई = गार्ग + ई = गार्गी, वात्स्य—वात्सी, आगस्त्य—आगस्ती, माण्डव्य—माण्डवी, मौद्गल्य— मौद्गली ।

२० **द्विगोः** ४।१।२१—द्विगुसंज्ञक अकारान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है । यथा—पञ्चमूली, दशमूली, अष्टाध्यायी, अष्टसहस्री, त्रिलोकी ।

२१ **पुरुषात् प्रमाणेऽन्तरस्याम्** ४।१।२४—तद्धित का लोप हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में पुरुषान्त द्विगु शब्दों से विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा द्विपुरुषा—द्विपुरुषी, त्रिपुरुषा—त्रिपुरुषी ।

इस सूत्र में प्रमाण ग्रहण इसलिए किया है कि—द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा, त्रिपुरुषा में विकल्प से ङीप् न हो और तद्धित लुक् इसलिए कहा है कि द्विपुरुषी आदि समाहार में निषेध न हो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२ **दामहायनान्ताच्च** ४।१।२७—जिन शब्दों के आदि में संख्या और अन्त में दामन या हायन हों, उन शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—द्वे दाम्नी यस्याः सा द्विदाम्नी, त्रिदाम्नी, द्विहायनी, त्रिहायणी, चतुर्हायणी।

२३ **वयसि प्रथमे** ४।१।२०—वृद्धा अवस्था को छोड़ अन्य अवस्थाएँ विदित हों तो अकारान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—
कुमारी, किशोरी, वधूटी, चिरण्टी, कलभी, वर्क्करी।

२४ **अन्तर्वत् पतिवतोर्नुक्** ४।१।३२—अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से ङीप् प्रत्यय और नुक् का आगम होता है। यथा—अन्तर्वत्नी, पतिवत्नी।

२५ **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे** ४।१।३३—यज्ञफल के भागित्व को प्रकट करने के लिए पति शब्द के उपरान्त ङीप् प्रत्यय लगता है और स्त्रीप्रत्यय के पूर्व न् का आगम होता है। यथा—
पति-पत्नी—यज्ञफलभोक्त्री, वशिष्ठस्य पत्नी, दिलीपस्य पत्नी।

विशेष—
यदि यज्ञफलभोक्त्री अर्थ न हो तो स्त्रीत्व होने पर भी पति शब्द में कोई परिवर्तन नहीं होता। यथा—
शकुन्तला एव अस्य आश्रमस्य पतिः—शकुन्तला ही इस आश्रम की स्वामिनी है। यहाँ यज्ञ सम्बन्ध न होने से पति शब्द का पत्नी नहीं बना।

२६ **विभाषा सपूर्वस्य** ४।१।३४-पूर्वपद सहित पति शब्द हो तो विकल्प से ङीप् और न् का आगम होता है। यथा—वृद्धपतिः—वृद्धपत्नी, स्थूलपतिः—स्थूलपत्नी, जीवपतिः—जीवपत्नी।

२७ **नित्यं सपत्न्यादिषु** ४।१।३५—सपत्नी आदि शब्दों में पति शब्द से निपातन के द्वारा नित्य ङीप् और न् का आगम होता है। यथा—समानः पतिरस्याः सा सपत्नी, एकपत्नी, वीरपत्नी इत्यादि।

२८ **वनो र च** ४।१।७—वन् प्रत्ययान्त शब्दों तथा उन समासों में, जहाँ ऐसे शब्द उत्तर पद में हों, ङीप् प्रत्यय लगता है और न् के स्थान पर र् हो जाता है। यथा—पीवन्—पीवरी, धीवत्—धीवरी, अति धीवर—अति धीवरी, पारदृश्वन्—पारदृश्वरी।

२९ **मनोरौ वा** ४।१।३८—मनु शब्द से स्त्रीलिङ्ग बनाने में ङीप् प्रत्यय लगता है और मनु शब्द को औकार और पक्ष में ऐकारादेश होता है। यथा—मनोः स्त्री = मनायी मनावी और मनुः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ङीष् (ई)

३० **षिद्गौरादिभ्यश्च** ४।१।४१—षित् शब्दों—नर्तक, खनक, पथिक प्रभृति तथा गौरादि गण के शब्दों—गौर, मनुष्य, मत्स्य, शृङ्ग, पिङ्गल, हय, गवय, ऋष्य, द्रुण, हरिण, कोकण, अणक, आपलक, शष्कुल, वदर, उभय, नट, मङ्गल के अनन्तर ङीष् (ई) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—नर्तक+ङीष्=नर्तकी, खनक+ङीष् =खनक+ई=खनकी, पथिक+ई=पथिकी, गौर—गौरी, कुमार—कुमारी, किशोर—किशोरी, सुन्दर—सुन्दरी, तरुण—तरुणी, पितामह—पितामही, मातामह—मातामही, नद—नदी, पट—पटी, कदल—कदली, स्थल—स्थली, काल—काली, नाग—नागी, मण्डल—मण्डली, सल्लक—सल्लकी, वेतस—वेतसी, अमलक—अमलकी, तूण—तूणी, द्रोण—द्रोणी, बदर—बदरी, कवर—कवरी।

३१ **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** ४।१।६३—जाति अर्थ में जातिवाचक अकारान्त शब्दों के उत्तर ङीष् प्रत्यय लगता है। यथा—
सिंह+ई=सिंही, व्याघ्र—व्याघ्री, मृग—मृगी, भल्लुक—भल्लुकी, हरिण—हरिणी, कुरङ्ग—कुरङ्गी, शूकर—शूकरी, कुक्कुर—कुक्कुरी, जम्बूक—जम्बूकी, शृगाल—शृगाली, विडाल—विडाली, घोटक—घोटकी, महिष—महिषी, हस—हंसी, सारस—सारसी, चक्रवाक—चक्रवाकी, मानुष—मानुषी, ब्राह्मण—ब्राह्मणी, गोप—गोपी, चाण्डाल—चण्डाली, पिशाच—पिशाची, राक्षस—राक्षसी, निशाचर—निशाचरी।

३२ **पुंयोगादाख्यायाम्** ४।१।४८—पुंलिङ्ग शब्द जो नर का द्योतक है, उससे स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीष् प्रत्यय जोड़ा जाता है। पर पालकान्त शब्दों के अनन्तर ङीष् प्रत्यय नहीं जुड़ता। यथा—ब्राह्मणस्य जाया—ब्राह्मणी, शूद्रस्य जाया—शूद्री, गोपस्य जाया—गोपी, गणकस्य जाया—गणकी, नापितस्य जाया—नापिती, निषादस्य जाया—निषादी। गोपालकस्य जाया—गोपालिका, पशुपालकस्य जाया—पशुपालिका—यहाँ पालकान्त होने से ङीष् नहीं हुआ।

३३ **जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककवराद्वृत्त्यमत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु** ४।१।४२—जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक और कवर शब्दों से वृत्ति, अमत्र, आवपन—माप, अकृत्रिमा, श्राणा—पकाने योग्य आदि एकादश अर्थों में क्रमशः ङीष् प्रत्यय होता है।
जानपद+ङीष्=जानपदी वृत्तिः, जानपदी रीतिः, कुण्डी—अमत्रपात्रम्, अन्यत्र कुण्डा, गोणी—माप विशेष, अन्यत्र गोणा, स्थली—अकृत्रिमा भूमिः, अन्यत्र स्थला,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाजी—पकाने योग्य शाक, अन्यत्र भाजा, नागी—अति मोटी, अन्यत्र नागा, काली—काले वर्ण की, अन्यत्र काला, नीली जो वस्त्र न हो, नहीं तो नीला शाटी, कुशी—लोहे का फाल, अन्यत्र कुशा, कामुकी—मैथुनेच्छावाली. अन्यत्र कामुका, कवरी—वालों का सँभालना।

३४ नील शब्द से औषधी और प्राणी अर्थ में ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—नीली औषधिः, नीली गौः, नीली वडवा, नीली गवयी। संज्ञा अर्थ में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है; यथा—नीली, नीला। यथा—

३५ **इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्** ४।१।४९—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य, हिम, अरण्य, यव, यवन मातुल, उपाध्याय शब्दों में ङीष् लगने के पूर्व आनुक् (आन) जोड़ दिया जाता है। इन्द्र + ङीष् = इन्द्र + आन् + ई = इन्द्राणी, भवानी, हिमानी; शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, आचार्याणी, अरण्यानी, यवानी—खराव जौ, यवनानी—यवनों की लिपि, मातुलानी, उपाध्यायानी।

३६ **अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा** (वा०)—अर्य्य और क्षत्रिय शब्दों से ङीष् प्रत्यय और आन् का आगम विकल्प से होता है। यथा—
अर्य्या, अर्य्याणी क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

३७ **क्रीतात् करणपूर्वात्** ४।१।५०—करणकारकवाची पूर्वपदयुक्त क्रीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—
वस्त्रेण क्रीता सा वस्त्रक्रीती, वसनक्रीती, रथक्रीती आदि।

३८ धर्म विधि से पाणिग्रहण—विवाह अर्थ प्रकट हो तो पाणिग्रहण शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—पाणिगृहीति भार्या। अन्य किसी प्रकार से पाणिग्रहण किया गया हो तो वहाँ पाणिग्रहण शब्द से टाप् प्रत्यय होता है। यथा—पाणिगृहीता नारी।

३९ **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** ४।१।५४—बहुव्रीहि समास होने पर अवयव वाचक शब्द के उत्तर विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; सुकेशी, सुकेशा, ताम्रनखी, ताम्रनखा।

४० **नखमुखात्संज्ञायाम्** ४।१।५८—संज्ञावाची नखान्त और मुखान्त शब्दों से ङीष् प्रत्यय नहीं होता। यथा—शूर्प्पणखा, वज्रणखा, गौरमुखा, कालमुखा। संज्ञा नहीं होने पर ताम्रमुखी कन्या—ताम्र के समान मुखवाली।

४१ **दिक्पूर्वपदान्ङीप्** ४।१।६०—दिक् पूर्वपद हो जिसके उस स्वाङ्गवाची शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राङ्मुखी; प्रत्यङ्मुखी; प्राङ्नासिका—इत्यादि ।

४२ वाहान्त शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—दित्यौही, प्रष्ठौही, विश्वौही ।

४३ **पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च** ४।१।६४—जिन शब्दों के उत्तरपद में पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल और वाल हों, उन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग वनाने के लिए ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

ओदनपाकी, शंकुकर्णी, शालपर्णी, शङ्खपुष्पी, दामीफली; दर्भमूली, गोवाली ।

४४ **इतो मनुष्यजातेः** ४।१।६५—मनुष्यजातिवाची इकारान्त शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—अवन्ती, कुन्ती, दाक्षी, प्लाक्षी, औदमेयी ।

४५ **नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च** ४।१।५५—नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण और शृङ्ग शब्दों से विकल्प से ङीष् होता है। यथा—तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका, दीर्घोदरी, दीर्घोदरा ।

४६ **वोतो गुणवचनात्** ४।१।४४—उकारान्त गुणवाचक शब्दों से स्त्रीलिङ्ग वनाने के लिए विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

मृदु + ङीष् = मृदु + ई = मृद्वी—मृदुः साध्वी—साधुः, पट्वी—पटुः; पर उपधा में संयुक्त वर्ण हो तो ङीष् प्रत्यय नहीं जुड़ता। यथा—पाण्डुः—स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों में होगा।

४७ **वह्वादिभ्यश्च** ४।१।४५—वहु आदि गण के शब्दों से स्त्रीलिङ्ग वनाने के लिए ङीष् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—वहु + ङीष् = वह्वी, वहुः – वहुत स्त्री ।

४८ क्तिन् प्रत्ययान्त भिन्न इकारान्त कृत्प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीत्व करने के लिए विकल्प से ङीष् प्रत्यय लगता है। यथा—रात्रि + ङीष् = रात्री—रात्रिः। राजी, राजिः।

आली, आलिः, कटी, कटिः, रजनी, रजनिः, शारी, शारिः, यष्टी, यष्टिः, अही अहिः, कपी, कपिः, मुनी, मुनिः, शकटी, शकटिः, सखी ।

४९ क्तिन् प्रत्यय से बने हुए इकारान्त शब्दों के उत्तर ङीष् नहीं होता। यथा—गतिः, स्थितिः, कृतिः, मतिः, भक्तिः, मुक्तिः, वुद्धिः ।

शक्ति और पद्धति शब्द में विकल्प से ङीष् होता है। यथा—

शक्ती, शक्तिः, पद्धती, पद्धतिः ।

ङीन् (ई)

५० **शाङ्गरवाद्यञो ङीन्** ४।१।७३—शाङ्गरव, कापटव आदि गण के जाति वाचक शब्दों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है। यथा—शाङ्गरव + ङीन् = शाङ्गरव + ई = शाङ्गरवी—शृङ्गारु ऋषि के वंश की कन्या ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१ नृनरयोर्वृद्धिश्च (वा०)—ङीन् प्रत्यय परे रहने पर नृ और नर शब्दों में वृद्धि आदेश होता है। यथा—नृ + ङीन् = नृ + ई = नारी।

ऊङ् (ऊ)

५२ ऊङुतः ४।१।६६—मनुष्यवाचक उकारान्त शब्दों से जिनकी उपधा में य न हो उङ् प्रत्यय लगता है। यथा—कुरुः—कुरूः, कद्रूः, अलाबूः, कर्कन्धूः, ब्रह्मबन्धूः।

५३ तनु आदि शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से उङ् प्रत्यय लगता है। यथा—तनूः, तनुः, चञ्चूः, चञ्चुः।

५४ रज्जु आदि शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय नहीं लगता। यथा—रज्जुः, धेनुः, आखुः, हनुः, कमण्डलुः, कृकवाकुः, कृतयाहुः, अध्वर्युः।
संज्ञा अर्थ में कद्रू और कमण्डलु शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—कद्रूः, कमण्डलूः। संज्ञा भिन्न अर्थ में कमण्डलुः रहता है।

५५ पङ्गुः शब्द से ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—पंगूः।

५६ श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च (वा०)—श्वशुर शब्द के उकार तथा अकार का लोप होता है और उङ् प्रत्यय भी। यथा—श्वशुर + ऊङ = श्वशुर + ऊ = श्वश्रूः।

५७ ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९—उपमा अर्थ में ऊरु के उत्तर ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—रम्भे इवास्या ऊरू = रम्भोरूः, करभाविवास्या ऊरूः = करभोरूः, करिकराविवास्या ऊरूः = करिकरोरूः।

५८ वाम इत्यादि के परवर्ती ऊरू के उत्तर ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—वामोरूः, सहितोरूः, सहोरूः, लक्षणोरूः, शफोरूः।

ति

५९ यूनस्तिः ४।१।७७—युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ति प्रत्यय जुड़ता है और प्रत्यय से पूर्व के नकार का लोप होता है। यथा—
युवन् + ति = युवतिः, युवती, यूनी; श्वन्—शुनी, मघवन्—मघोनी—मघवती।

कतिपय अध्ययनीय शब्द

पुंल्लिङ्ग रूप	स्त्रीलिङ्ग रूप
राजा	राज्ञी
श्वा—कुत्ता	शुनी
विद्वान्	विदुषी
मघवा—इन्द्र	मघोनी, मघवती
मनुष्यः	मानुषी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मातुलः	मातुली, मातुलानी
मत्स्यः	मत्सी
कुरुः	कुरूः
गृहपतिः	गृहपतिः, गृहपत्नी
श्वशुरः	श्वश्रूः
समानपतिः	सपत्नी
एकपतिः	एकपत्नी
वीरपतिः	वीरपत्नी
ग्रामपतिः	ग्रामपतिः, ग्रामपत्नी
अधिपतिः	अधिपतिः
तुदन्	तुदन्ती, तुदती
दीव्यन्	दीव्यन्ती
बोधयन्	बोधयन्ती
गरीयान्	गरीयसी
भयङ्करा	भयङ्करी
सखा	सखी
मुनिः	मुनी, मुनिः
मृदुः	मृद्वी, मृदुः
साधुः	साध्वी, साधुः
युवा	युवतिः, यूनी, युवती
बहुराजः	बहुराजा, बहुराज्ञी
सुकेशः	सुकेशी, सुकेशा
महाराजः	महाराजी
अग्निः	अग्नायी
नश्वरः	नश्वरी
धीवरः	धीवरी
मनुः	मनायी, मनावी, मनुः
शूद्रः	शूद्रा, शूद्री,
सूर्यः	सूर्या, सूरी
आचार्यः	आचार्या, आचार्यानी
क्षत्रियः	क्षत्रिया, क्षत्रियी, क्षत्रियाणी
उपाध्यायः	उपाध्याया, उपाध्यायी, उपाध्यायिनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभापतिः	सभापतिः, सभापत्नी
पाण्डुः	पाण्डुः
पठन्	पठन्ती
आर्यः	आर्या, आर्याणी,
कमण्डलु.	कमण्डलूः, कमण्डलुः
कद्रुः	कद्रूः, कद्रुः
धीवन्	धीवरी
पीवन्	पीवरी
चञ्चुः	चञ्चूः
इन्द्रः	इन्द्राणी
गोपः	गोपी, गोपा
गोपालकः	गोपालिका
धाता	धात्री
मनस्वी	मनस्विनी
छात्रः	छात्री, छात्रा
श्रुः	श्रूः

कतिपय शब्द-युग्मों में अर्थभेद—

१ { क्षत्रियाणी, क्षत्रिया—क्षात्र धर्म से युक्त स्त्री अथवा क्षत्रिय जाति की स्त्री ।
क्षत्रियी—एक क्षत्रिय विशेष की स्त्री ।

२ { आर्याणी, आर्या—स्वामिनी या वैश्या अर्थात् वैश्य जाति की स्त्री ।
अर्यी—एक स्वामी या वैश्य की स्त्री ।

३ { शूद्रा—शूद्र जाति की सामान्य स्त्री ।
शूद्री—शूद्र जाति के व्यक्तिविशेष की स्त्री ।

४ { उपाध्याया—शिक्षा देनेवाली स्त्री ।
उपाध्यायी, उपाध्यायानी—उपाध्याय की स्त्री ।

५ { आचार्या—आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाली नारी ।
आचार्यानी—आचार्य की स्त्री ।

६ { यवानी—खराब जौ, जिनसे अंकुर न निकलें ।
यवनानी—यवन लिपि ।

७ { भाजी—पकाने योग्य तरकारी ।
भाजा—पकाने की योग्यता से रहित तरकारी ।

८ { स्थला—कृत्रिम भूमि ।
स्थली—अकृत्रिम भूमि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९ {गोपी—गोपस्य स्त्री—गोपजाति के व्यक्तिविशेष की स्त्री ।
गोपा—गोपा तु गोपकन्यका—गोप जाति की सामान्य नारी ।

१० {नीला—सामान्य वस्तुओं के वर्णवाची—यथा—कुवलयदलनीला कोकिला, नीला शाटी, नीला मेघसंहति ।
नीली—प्राणि और औषधि वाचक—यथा—नीली औषधिः, नीली वडवा, नीली गौः ।

११ {कुशा—कुशा नाम की घास—यथा—कुशा रज्जुः ।
कुशी—लौह विकार—फाल ।

१२ {कामुकी—मैथुन करने की इच्छा वाली स्त्री ।
कामुका—धनादि पदार्थ लेने की इच्छा ।

१३ {पतिवत्नी—सौभाग्यवती स्त्री—जीवति भर्त्तरि ।
पतिमती—अधिनायकवाली—यथा—पतिमती सेना ।

१४ {अन्तर्वत्नी—गर्भिणी स्त्री ।
अन्तर्वती—अन्तरवाली भूमि ।

१५ {गोणी—अनाज रखने का वस्त्र निर्मित पात्रविशेष ।
गोणा—साधारण अर्थ में प्रयुक्त संज्ञा ।

१६ {पाणिगृहीती—धार्मिक विधि से परिणीत भार्या ।
पाणिगृहीता—जिस किसी तरह से ग्रहण की गयी स्त्री ।

१७ {कुण्डी—पात्री ।
कुण्डा—जारजा, अर्गला = वेडा ।

१८ {कवरा—चित्र-विचित्र वर्णवाली—चितकवरी ।
कवरी—केशवेशः—वेणी ।

१९ {धनक्रीती—धन से द्वारा खरीदी गयी कोई भी वस्तु ।
धनक्रीता—धन द्वारा खरीदी गयी स्त्री—यथा—सा हि तस्य धनक्रीता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।

२० {चद्रभागी—चन्द्रिका—चाँदनी ।
चद्रभागा—नदी ।

२१ {द्विपुरुषी—दो पुरुषा गहरी—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या खातायाः ।
द्विपुरुषा—दो पुरुषों के द्वारा खरीदी गयी—द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता ।

२२ {त्रिपुरुषी—तीन पुरुषा गहरी ।
त्रिपुरुषी—तीन पुरुषों के द्वारा खरीदी गयी ।

२३ {सभापतिः—किसी सभा में अध्यक्ष का आसन ग्रहण करनेवाली नारी ।
सभापत्नी—सभापति की स्त्री ।

२४ {सूर्या—सूर्य देवता की स्त्री ।
सूरी—कुन्ती ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५ { नागी—स्थूला—नागी भवति स्थौल्यं चेत्, नागा अन्या ।
नागा—जातिवाचक, हस्तिनी और सर्पिणी ।

२६ { शर्वरी—रात्रिः ।
गर्वरी—सन्ध्या ।

२७ { पूतना—सेना ।
पूतना—राक्षसी ।

२८ { सुगेषणा—किन्नरी ।
सुदेष्णा—विराट् पत्नी ।

२९ { वधूटी—युवति, प्रथमवया स्त्री ।
चिरण्टी—अप्राप्तवया स्त्री ।

३० { पतिः—स्वामिनी—यथा—ग्रामस्य पतिः इयं ब्राह्मणी ।
पत्नी—यज्ञफलभोक्त्री—यज्ञ का फल प्राप्त करनेवाली; यथा—वशिष्ठस्य पत्नी —वशिष्ठानुष्ठित यज्ञफलभोक्त्री । अथवा—पुरुष के धन की स्वामिनी— —अस्य पुंसः वित्तस्य स्वामिनी ।

३१ { चन्द्रमुखा—संज्ञा विशेष ।
चन्द्रमुखी—चन्द्रमा के समान मुखवाली ।

३२ { शूर्पणखी—शूर्पमिवनखा अस्याः—शूर्प के समान नखवाली ।
शूर्पणखा—नामविशेष ।

अनुशीलनी

१ निम्नलिखित शब्दों के स्त्रीलिङ्ग बनाइये ।
ब्राह्मण, कर्तृ, मत्स्यः, महाराज, श्वा, रजकः, नश्वरः, कोकिलः, अश्वः, पीवन्, तरुणः, नायकः, रज्जुः, इच्छन्, कामिन्, श्वशुरः ।

२ निम्नाङ्कितों के लिए एक शब्द प्रयुक्त कीजिये—
आचार्यस्य जाया, मृग इव नयनेऽस्याः, समानः पतिरस्याः, गर्भिणी नारी, परिणयेन पाणिः गृहीतः यस्याः सा, यूनो जाया, अस्ति पतिर्यस्याः सा, क्षत्रियवर्णे जाता स्त्री, स्वयमध्यापयति या सा, लज्जा अस्या विद्यते सा, विदुषो जाया, करिकराविवास्या ऊरूः एका पतिरस्याः पञ्चपतयोऽस्याः, वीरः पतिरस्याः, मातुलस्य जाया, शर्वस्य जाया, दुष्टो यवः, महत् हिमं, पीनमस्या ऊरूः, घटवदस्याः ऊरूः, द्वे अस्याः दाम्नी, द्वे अस्याः हायने, बहूनि सन्त्यस्यां पर्वाणि, बहवः सन्त्यत्र राजानः, नास्ति-अस्याः शिशुः ।

३ प्रमुख स्त्री प्रत्ययों को सोदाहरण समझाइये ।

४ ङीप् प्रत्यय का उदाहरण सहित विवेचन कीजिये ।

५ ऊङ् प्रत्यय के चार उदाहरण दीजिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अव्यय

ऐसे शब्द जिनके रूप में कोई विकार-परिवर्तन उत्पन्न न हो और जो सदा एक से—सभी विभक्ति, सभी वचन और सभी लिङ्ग में एक समान रहें, अव्यय कहलाते हैं।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्।

लिङ्ग, विभक्ति और वचन के अनुसार जिनके रूपों में व्यय—घटती-बढ़ती न हो; वे अव्यय हैं। यथा—उच्चैः (ऊँचे), नीचैः (नीचे), अभितः (चारों ओर) आदि।

अव्यय पाँच प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग, (२) क्रियाविशेषण, (३) समुच्चयादिबोधक (Conjunctions), (४) मनोविकारसूचक (Interjections) और (५) अतिरिक्त अव्यय।

उपसर्ग

जो अव्यय क्रिया के पूर्व आते हैं, उन्हें उपसर्ग कहते हैं। उपसर्ग लगाने से क्रिया के अर्थ में परिवर्तन या वैशिष्ट्य आ जाता है। उपसर्ग की स्थिति तीन प्रकार की होती है—

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते।
विशिनष्टितमेवार्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा।

कोई उपसर्ग धातु के मुख्यार्थ को बाधकर नवीन अर्थ का बोध कराता है, कोई धात्वर्थ का ही अनुवर्त्तन करता है और कोई विशेषण होकर उसी धातु-अर्थ को और भी स्पष्ट कर देता है।

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराऽऽहार-संहार-विहार-परिहारवत्॥

उपसर्ग के योग से धातु का अर्थ कुछ का कुछ हो जाता है। हरति—ले जाता है, अपहरति—चुराता है, अनुहरति—नकल करता है, परिहरति—छोड़ता है, आहरति—लाता है, प्रहरति—मारता है, विहरति—विहार करता है, उपहरति—उपहार देता है, आदि।

उपसर्ग २२ हैं—प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, सु, उद्, अभि, अति, प्रति, परि और उप।

१ प्र—प्रकर्ष—अधिकता, जैसे प्रभवति नृपः।
२ परा—विपरीत—पराजयते (हारता है), पराभवति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ अप—दूर—अपहारः—दूर ले जाना, अपकरोति—हानि या बुरा करता है।

४ सम्—अच्छी तरह—संस्कारः—अच्छी तरह किया हुआ काम।

५ अनु—पीछे, साथ—राममगच्छति लक्ष्मणः।

६ अव—नीचे, दूर, अभाव—अवतारः—नीचे आना, अवमानः—नीचा मानना।

७-८ निस्—निर्—निषेध, वाहर, दूर—निस्सारः—सार रहित, रामस्तं निराकरोति।

९-१० दुस्, दुर्—कठिन, बुरा—दुष्करोऽस्ति—कठिन है, दुर्योधनस्य दुर्नीतिर्फलम्।

११ वि—अलग होना, विना—वियोगः—विरह, विश्लिष्यति—अलग करता है।

१२ आङ्—तक, कम—दिलीपः आसमुद्रं पृथिव्याः पतिरासीत्।

१३ नि—अन्दर, नीचे—दुष्टान् नियमति—दुष्टों को अधीन या नीचे करता है।

१४ अधि—ऊपर—अधिरोहति—ऊपर चढ़ता है।

१५ अपि—भी, निकट—देवत्तोदऽपि नागतः।

१६ अति—वाहुल्य अथवा उल्लंघन—अतिक्रमः—सीमा का उल्लंघन, अतिनिद्रा—अधिक नींद।

१७ सु—अच्छा, सहज—सुकृतं—अच्छा कार्य, सुगम—सहज।

१८ उत् - ऊपर ऊँचा, श्रेष्ठ—उत्तमः, अद्भुतः, उत्साहः।

१९ अभि—ओर—अभिगमनम्—किसी ओर जाना।

२० प्रति—ओर, उलटा—प्रतिकारः—वदला, त्वं पितरं प्रतिगच्छ।

२१ परि—चारों ओर—पृथ्वी सूर्यं परिगच्छति = पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है।

२२ उप—निकट—उपमानम्—मान के समीप—उपासना—निकठ बैठना, प्रार्थना।

क्रियाविशेषण

क्रियाविशेषण संस्कृत में कई प्रकार के होते हैं। कुछ क्रियाविशेषण स्वः आदि अव्ययों में परिगणित हैं, कुछ सर्वनामों से बनते हैं—जैसे—इदानीम्, यथा, तथा आदि; कुछ संख्यावाची शब्दों से बनते हैं—जैसे—एकधा, द्विधा, त्रिधा आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कुछ संज्ञाओं में तद्धित प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं जैसे—पुत्रवत्, भस्मसात् आदि।

नीचे अकारादि क्रम से प्रमुख क्रियाविशेषणों को दिया जाता है—

अकस्मात् = हठात्, इकबारगी
अग्रतः = आगे
अग्रे = पहले
अचिरम्, अचिरात्, अचिरेण } शीघ्र, तुरन्त
अजस्रम् = निरन्तर, सदा
अञ्जसा = ठीक से, निश्चय से
अन्तर् = अन्दर
अतः = इसलिए
अतीव = बहुत
अत्र = यहाँ
अथ = तब, फिर
अथकिम् = हाँ, तो क्या
अद्य = आज
अधः, अधस्तात् } नीचे
अपरम् = और
अपरेद्युः = दूसरे दिन
अधुना = अब
अनिशम् = निरन्तर
अन्तरेण = बारे में, बिना
अन्तरा = बिना, बीच में
अन्तरे = बीच में
अन्यच्च = और
एव = ही
एवम् = इस तरह
कच्चित्, कच्चन } क्या

अन्यत्र = दूसरी जगह
अन्यथा = दूसरी
अभितः = चारों ओर
अभीक्ष्णम् = निरन्तर
अर्वाक् = पहले
अलम् = बस, पर्याप्त
असकृत् = कई बार
असम्प्रति, असाम्प्रतम् } अनुचित
आरात् = दूर, समीप
इतः = यहाँ से
इतस्ततः = इधर-उधर
इति = इस प्रकार
इत्थम् = इस तरह
इदानीम् = इस समय
इह = यहाँ
ईषत् = कुछ, थोड़ा
उच्चैः = ऊँचे
उभयतः = दोनों ओर
ऋतम् = सच
ऋते = बिना
एकदा = एक बार
एकधा = एक प्रकार
एकपदे = एक साथ
एतर्हि = अब
तत् = इसलिए
ततः = फिर
तत्र = वहाँ
तदा = तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथम् = कैसे

कथञ्चन, कथञ्चित् } किस प्रकार

कदा=कब

कदाचित् = शायद, कभी

कदापि = कभी

कदापि न = कभी नहीं

किञ्च=और

किन्तु = लेकिन

किम् = क्या ? क्यों ?

किमुत = और कितना

किंवा = या

किल = सचमुच

कुत: = कहाँ से

कुत्र = कहाँ

कुत्रचित् = कहीं

कृतम् = बस, हो गया

केवलम् = सिर्फ

क्व = कहाँ

क्वचित् = कहीं

खलु = निश्चय करके

चिरम् = देर तक

जातु = कभी भी

झटिति = जल्दी

परेद्यु := दूसरे दिन कल

पर्याप्तम् = काफी

पश्चात् = पीछे

पुन: = फिर

पुरत:, पुर:,पुरस्तात् = आगे

पुरा=पहले

पूर्वेद्यु : = पहले दिन

तदानीम् = तब

तथा = उस तरह

तथाहि = जैसे

तस्मात् = इसलिए

तर्हि = तब, तो

तावत्=तब तक

तिर:, तिर्यक् = तिरछे

तूष्णीम्=चुपचाप

दिष्ट्या = सौभाग्य से

दूरम्=दूर

दोषा = रात्रि

द्राक् = शीघ्र

ध्रुवम् = निश्चय

न = नहीं

नवरम्=परन्तु

नाना = हर तरह से

नाम = नामवाला, नामक

निकषा = निकट

नीचै: = नीचे

नूनम् = निश्चित

नो = नहीं

परम् = किन्तु, फिर

परश्व: = परसों

परित: = चारों ओर

यदा = जब

यावत् = जब तक

युगपत् = साथ

विना = बिना

वृथा = बेकार

वै = निश्चय

शनै: = धीरे-धीरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथक् = अलग-अलग
प्रकामम् = यथेष्ट, बहुत
प्रतिदिन = हर रोज
प्रत्युत = उलटा
प्रसह्य = जबर्दस्ती
प्राक् = पहले
बलात् = जबर्दस्ती
बहिः = वाहर
भूयः = वार-वार, अधिक
भृशम् = अधिकाधिक
मनाक् = थोड़ा
मिथः = परस्परम्
मुधा = व्यर्थ, वेकार
मुहुः = वार-वार
मृषा = झूठ
यत् = जो, क्योंकि
यतः = क्योंकि
यत्र = जहाँ
यथा = जैसे
यथा-तथा = जैसे-तैसे
यथा-यथा = जैसे-जैसे
सर्वत्र = सब कहीं
साम्प्रतम् = अव, उचित
सायम् = शाम को
सुष्ठु = अच्छी तरह
स्वस्ति = आशीर्वाद
श्व = कल-आनेवाला
शाश्वत् = सदा
सर्वथा = सब प्रकार से
सर्वदा = सदा
सह = साथ
सहसा = एकवारगी
सहितम् = साथ
साकम् = साथ
सकृत् = एक वार
सनातनम् = वरावर
सद्यः = तुरन्त
सदा = सव दिन
सपदि = तुरन्त, शीघ्र
समन्तात् = चारों ओर
समम् = वरावर-वरावर
समया = निकट
समीपे, समीपम् = निकट
समीचीनम् = यथार्थ
सम्प्रति = इस समय, अभी
सम्यक् = भली प्रकार
सर्वतः = सभी ओर
साक्षात् = सामने
सार्धम् = साथ
हि = निश्चय से, इसलिए
ह्यः = कल

समुच्चयबोधक

समुच्चयादिवोधक अव्यय के सात भेद हैं—

(१) संयोजक—च, अथ, अथो, उत, किंच, तु आदि।
(२) वियोजक—वा, किंवा, तु, किन्तु आदि।
(३) संकेतार्थ—यदि, चेत्, नोचेत्, यद्यपि, तथापि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) कारणवाचक–हि, तत्, तेन इत्यादि ।

(५) प्रश्नवाचक—अहो, अहोस्वित्, उत्, किं, किन्तु, किमुत, ननु, नु इत्यादि ।

(६) कालवाचक—यावत्, तावत्, यदा, तदा, कदा, इत्यादि ।

(७) विधि अथवा निषेधार्थक—अङ्ग, अथ, किम्, आम्, अद्धा ।

अथ कार्यारम्भ और इति कार्यान्त का सूचक है। च शब्द और अर्थ का सूचक है। जहाँ हिन्दी में और दो जोड़े हुए शब्दों के बीच में आता है, वहाँ संस्कृत में च शब्द दोनों के उपरान्त आता है। यथा—रामो लक्ष्मणश्च सीतया सह आगच्छताम् ।

मनोविकारसूचक अव्यय

(१) हन्त—हर्ष और खेदसूचक-हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । हन्त व्याधिना पीडितोऽस्मि ।

(२) आः, हुम्, हम—क्रोधसूचक—आः कथमिदं सञ्जातम्; हुम् किं विदधाति; हम् ते कविवरा विपरीतबोधा ।

(३) हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक—हा ! निर्धनता त्वया जर्ज्जरी कृतोऽस्मि । हहा ! रोगेण पीडित्तोऽस्मि । हन्त ! त्वया कृतमिदम् ।

(४) वत—दयासूचक, खेदसूचक—वत ! शत्रुभिराक्रान्तोऽसि ।

(५) अहो, अहह—विस्मयसूचक—अहो ! वत सिंहस्य; अहह ! बुद्धिप्रकर्षः पाश्चात्यानाम् ।

(६) किम्, धिक्—धिक्कारसूचक—धिक् त्वामपराधिनम्; किं कृतं त्वया ।

(७) अङ्ग, अयि, अये, भोः—आदरसहित बुलाने के काम में आते हैं। यथा—अङ्ग, सुशर्मन् ! हे शिष्य ! भो गुरो !

अपिः अरे, रेरे- अवज्ञा से बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। यथा—अयि दुर्विनीते ! भर्तारमुल्लंघयसि, अरे-अरे मूढ ! गुरुभ्यां नाद्रियसे । रे रे वञ्चक !

अतिरिक्त अव्यय

तद्धितों और कृत् प्रत्ययों के संयोग से भी कुछ अव्यय बनते हैं। यथा—तद्धित प्रत्ययों में–तसिल् प्रत्ययान्त, त्रस् प्रत्ययान्त, दा प्रत्ययान्त, दानीम् प्रत्ययान्त; अधुना, कर्हि, यर्हि, तर्हि; दिक् और कालवाचक-दुरः, पश्चात्, उत्तरेण; धा प्रत्ययान्त एकधा; च्वि प्रत्ययान्त—भस्मीभूय, शुक्लीभूय, साति प्रत्ययान्त—अग्निसात्, धूलिसात्; कृत्वसुच् प्रत्ययान्त—द्विकृत्वः, त्रिकृत्वः आदि अव्यय हैं। कृदन्तों में स्मारं-स्मारं, गन्तुम्, पिवध्यै, कृत्वा आदि अव्यय के समान प्रयुक्त होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमोऽध्यायः

कारक-विचार

करोति क्रियां जनयतीति कारकम्—क्रिया के उत्पादक को कारक कहते हैं अथवा क्रियान्वयी कारकम्—क्रिया के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसे कारक कहते हैं। संस्कृत में कारक छः हैं।

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणं इत्याहुः कारकाणि षट्॥

अर्थात् कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने सम्बन्ध को कारक नहीं माना है; यतः सम्बन्ध कारक का क्रिया के साथ सम्बन्ध नहीं है। यथा-"श्यामः रामस्य धनमचोरयत्" इस वाक्य में अचोरयत् क्रिया के साथ न तो रामस्य का किसी प्रकार का सम्बन्ध है और न रामस्य में अचोरयत् क्रिया का जनकत्व—उत्पादकत्व ही है। अतः षष्ठी को विभक्ति तो माना है, पर कारक नहीं।

विभक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है—"सङ्ख्याकारकबोधयित्री विभक्तिः" जिसके द्वारा संख्या और कारक का बोध हो, वह विभक्ति है। रामस्य से संख्या का बोध होता है, अतः वह षष्ठी विभक्ति तो है, पर कारक नहीं।

विभक्ति और कारक में एक अन्तर यह भी है कि कारक कुछ है और विभक्ति कुछ हो जाती है। यथा कर्त्ता में सर्वदा प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति ही नहीं होती; बल्कि कर्त्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति भी होती है। जैसे "रावणो रामेण हतः" इस वाक्य में हनन क्रिया का वास्तविक कर्त्ता राम है, पर राम प्रथमा विभक्ति में नहीं है, तृतीया विभक्ति में रखा गया है। इसी प्रकार हनन क्रिया का वास्तविक कर्म रावण है, उसे द्वितीया विभक्ति में न रखकर प्रथमा विभक्ति में रखा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमा

१. **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** २।३।४६—केवल प्रातिपदिकार्थ—शब्द का अर्थ, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र अथवा वचन मात्र बतलाने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। प्रातिपदिक शब्द का अर्थ—'नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः' जिस—शब्द की जिस अर्थ के साथ नियम से उपस्थिति हो, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। यथा—प्रातिपदिकार्थ में—उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्।

(क) संस्कृत के वैयाकरणों के अनुसार प्रातिपदिक—शब्द में जब तक प्रत्यय नहीं लगता, तब तक उसका अर्थ नहीं जाना जा सकता है। प्रातिपदिक (crude form) में सुप् आदि विभक्तियों को जोड़ने से ही अर्थ प्रकट होता है। उदाहरण के लिए यों समझना चाहिए कि विभक्ति-रहित राम शब्द का उच्चारण करें तो यह निरर्थक होगा। जब विभक्ति-सहित राम का उच्चारण करते हैं तभी इस शब्द का अर्थ प्रकट होता है। इसीलिए संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण में ही विभक्ति प्रत्ययों को नहीं जोड़ते, बल्कि अव्ययों में भी प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय लगाते हैं। यथा—उच्चैः, नीचैः, आदि अव्ययों में प्रथमा विभक्ति न लगावें तो इनका अर्थ ही प्रकट न होगा। अतः इस सूत्र का मथितार्थ यह है कि किसी भी शब्द का अर्थमात्र प्रकट करने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। यथा रामः, कृष्णः, जलम्, ज्ञानम्, बाला इत्यादि। लिङ्गमात्र में—तटः, तटी, तटम्।

परिमाणमात्र में परिमाण—वजन मात्र का ज्ञान करने के लिए—'द्रोणोव्रीहिः, यहाँ प्रथमा विभक्ति से द्रोण का परिमाण विदित होता है।

वचनमात्र में—एकः, द्वौ बहवः।

२. **सम्बोधने च** २।३।४७—सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—हे रामः, हे रामौ, हे रामाः।

द्वितीया

३. **कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म** ४।१।४९—किसी वाक्य में प्रयोग किये गये पदार्थों में से जिसको कर्त्ता सब से अधिक चाहता है, उसे कर्म कहते हैं। अर्थात् कर्त्ता के लिए जो अत्यन्त ईप्सित—अभीष्ट है, उसीकी कर्म संज्ञा होती है। जैसे माषेष्वश्वं बध्नाति—उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है, इस वाक्य में बाँधनेवाला अपनी बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व को ही वशंगत करना चाहता है। अतः बन्धन व्यापार द्वारा अश्व ही कर्त्ता को अभीष्ट है, उड़द नहीं। उड़द की चाह अश्व को हो सकती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उसके प्रलोभन से उसका बांधना सुगमतर हो सकता है, परन्तु कर्त्ता को उसकी चाह नहीं है। अतः माषेषु में कर्म संज्ञा नहीं हुई।

क्रियाविशेष द्वारा जो कर्त्ता को अत्यन्त अभीष्ट है, उसीकी कर्म संज्ञा होती है। जैसे—'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' दूध से भात खाता है, वाक्य में दूध भी भात की तरह कर्त्ता को प्रिय है. पर कर्त्ता अपने भोजन-व्यापार द्वारा जिसे सबसे अधिक पाना चाहता है, वह भात है, दूध नहीं। यतः दूध पेय है, यह तो केवल भोजन क्रिया के सम्पादन में सहायक है, अतः यहाँ पर पयस् की कर्म संज्ञा नहीं है, ओदन की है।

४. **कर्मणि द्वितीया** २।६।२--अनुक्त कर्म को बतलाने के लिए कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—हरिं भजति, ग्रामं गच्छति, वेदं पठति।

अभिहित—उक्त (क्रियाफल से सहित) कर्म में प्रातिपदिकार्थमात्र होने से प्रथमा विभक्ति ही होती है। यथा—हरिः सेव्यते, लक्ष्म्या सेवितः, शतेन क्रीतः, विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयंछेत्तुमसाम्प्रतम्। इन प्रयोगों में क्रिया फल सहित है, अतः यहाँ प्रथमा और तृतीया विभक्तियाँ हुई हैं।

५. **तथायुक्तं चानीप्सितम्** १।४।५०—इच्छा न रहने पर भी कर्त्ता अपने व्यापार द्वारा जिसको आनुषङ्गिकरूप से अनायास प्राप्त कर लेता है, उसे अनीप्सित कर्म कहते हैं। अनीप्सित के दो भेद हैं, उपेक्ष्य और द्वेष्य। यथा—ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति, ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते। प्रथम वाक्य में ग्राम जाना ही कर्त्ता को अभिलषित है, तृण का छूना नहीं। यहाँ तृण उपेक्ष्य कर्म है। द्वितीय वाक्य में कर्त्ता को भात खाना ही अभीष्ट है, जहर खाना नहीं। पर यही विष अनीप्सित होते हुए भी तो भोजन-व्यापार रूप क्रिया से सटा हुआ है। अतः यह द्वेष्य कर्म है।

६. **अकथितञ्च** १।४।५१--अपादान आदि के द्वारा अविवक्षित कारक अकथित कर्म कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृत में कुछ धातुएँ ऐसी हैं, जो साधारण कर्म के अतिरिक्त एक कर्म और रखती हैं, जिसे अकथित कर्म कहते हैं। यथा "जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषम्" (मेघदूत)—में आप को प्रधान पुरुष के रूप में जानता हूँ, "धेनुं दोग्धि पयः"; प्रथम वाक्य में 'प्रकृतिपुरुषम्' और द्वितीय वाक्य में 'धेनुम्' गौण कर्म हैं। द्विकर्मक धातुएँ निम्न सोलह हैं—

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुह् (दुहना), याच् (मांगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना) रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (बोलना), शासु (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् खींचना), और वह् (ढाना) ये सोलह धातुएँ तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखनेवाली धातुएँ द्विकर्मक होती हैं। यथा—

(१) गां दोग्धि पयः—गाय से दूध दुहता है। यहाँ गाय सामान्यतः अपादान है, पर उक्त नियम के अनुसार गौण कर्म है।

(२) बलिं याचते वसुधाम्—बलि से पृथ्वी मांगता है।

(३) तण्डुलान् ओदनं पचति—चावलों से भात पकाता है। चावल करणार्थक है, पर वक्ता की इच्छा उसे करण कहने की नहीं है, अतः यह गौणकर्म है।

(४) गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों पर एक सौ रुपये दण्ड लगते हैं।

(५) व्रजमवरुणद्धि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है।

(६) माणवकं पन्थानं पृच्छति—माणवक—बच्चे से रास्ता पूछता है।

(७) वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है।

(८) माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है।

(९) शतं जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है।

(१०) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीर सागर से अमृत मथता है।

(११) देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है।

(१२–१६) ग्राम मजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गाँव से ले जाता है।

६—अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्म संज्ञक इति वाच्यम् (वा०)—अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य पथ भी कर्म संज्ञक होते हैं। यथा—

(१) कुरून् स्वपिति—कुरु देश में सोता है (कुरून् यहाँ देशव्यञ्जक है)

(२) मासमास्ते—महीने भर रहता है (मासम् कालव्यञ्जक है)

(३) गोदोहमास्ते—गाय दुहने की वेला तक रहता है। 'गोदोहम्' भाव-व्यञ्जक है।

(४) क्रोशमास्ते—कोस भर में रहता है (क्रोशम् मार्गव्यञ्जक है)

७. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता स णौ १।४।५२—गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, ज्ञानार्थक तथा प्रत्यवसानार्थक—भोजनार्थक धातुओं में और जिनका कर्म कोई शब्द या साहित्यिक विषय हो, उन धातुओं में एवं अकर्मक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातुओं में साधारणदशा--अणिजन्त अवस्था का कर्त्ता णिजन्तावस्था--प्रेरणा में कर्म हो जाता है परन्तु कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता। यथा—

साधारण रूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत्
स्वे वेदार्थम् अविदुः	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्
देवा अमृतम् आश्नन्	देवान् अमृतम् आशयत्
विधिः वेदम् अध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त	पृथ्वीं सलिले आसयत्

"गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम्' में यदि कोई दूसरा व्यक्ति देवदत्त से ऐसा करने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य इस प्रकार होगा—

'गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः" विष्णुमित्र देवदत्त को प्रेरित करता है कि वह यज्ञदत्त को जाने के लिए कहे। यहाँ देवदत्त द्वितीया में नहीं रखा गया क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है, साधारण क्रिया का नहीं।

८. **हृक्रोरन्यतरस्याम्** १।४।५३--हृ एवं कृ धातुओं के साधारण--अणिजन्त अवस्था का कर्त्ता णिजन्त प्रेरणा में विकल्प से कर्म होता है। यथा—

हरति कटं भृत्यः का प्रेरणा में हारयति कटं भृत्यं भृत्येन वा तथा करोति कटं भृत्यः का कारयति कटं भृत्यं भृत्येन वा हो जायगा।

९. **अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्** (वा०)--अभि पूर्वक वद् तथा दृश् के आत्मनेपद के रूपों का कर्त्ता प्रेरणार्थक में द्वितीया अथवा तृतीया में रखा जाता है। यथा—

अभिवदति देवं भक्तः	अभिवादयते देवं भक्तं भक्तेन वा।
पश्यति देवं भक्तः	दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा।

इनके आत्मनेपदी न होने पर दर्शयति देवं भक्तम् तथा अभिवादयति देवं भक्तेन ये प्रयोग होंगे।

१०. **जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्** (वा०)--जल्प, भाष् इत्यादि धातुओं के प्रकृत दशा के कर्त्ता णिजन्त—प्रेरणा में कर्म हो जाते हैं। यथा—

पुत्रो धर्मं जल्पति भाषते वा का पुत्रं धर्मं जल्पयति भाषयति वा होगा।

अपवादः—

११. **नीवह्योर्न** (वा०) —नी और वह् धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों के प्रयोग में साधारण दशा का कर्त्ता, कर्म न होकर करण ही रहता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भृत्यो भारं नयति वहति वा के स्थान पर भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा ही होगा।

१२. नियन्तृकर्त्तृकस्य वहेरनिषेधः (वा०)—नी और वह् धातुओं का कर्त्ता नियन्ता हो तो प्रकृत दशा का कर्त्ता कर्म ही होगा। यथा—

वाहा रथ वहन्ति का वाहयति रथं वाहान् सूतः होगा।

१३. आदिखाद्योर्न (वा०)—अद् और खाद् धातुओं के कर्त्ता उनके प्रेरणार्थक रूपों में कर्म न होकर करण ही होंगे। यथा—

वटुरन्नमत्ति खादति वा के स्थान पर प्रेरणार्थक प्रयोग—वटुनान्नमादयति खादयति वा होगा।

१४. भक्षेरहिंसार्थस्य न (वा०)—अहिंसार्थक भक्ष् धातु का साधारण दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म न होकर करण होता है। यथा—

भक्षयति अन्नं वटुः के स्थान पर भक्षयति अन्नं वटुना होगा। किन्तु हिंसार्थक होने पर 'भक्षयन्ति सस्यं बलीवर्दाः' के स्थान पर प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति सस्यं बलीवर्दान्' ही होगा।

१५. दृशेश्च (वा०)—दृश् धातु के प्रयोग में साधारण अवस्था का कर्त्ता णिजन्त अवस्थ में कर्म हो जाता है। यथा—दर्शयति हरिभक्तान् साधुम्। गतिबुद्धि सूत्र में ज्ञान सामान्य की वाचक बुध् धातु का ग्रहण होने से ज्ञानविशेष की वाचक स्मृ, घ्रा इत्यादि धातुओं के कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म नहीं होते। यथा—स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

१६. अधिशीङ्स्थासां कर्म १।४।४६—शी, स्था और आस् धातुओं के पूर्व यदि अधि उपसर्ग लगा हो तो इन क्रियाओं के आधार की कर्म संज्ञा होती है। यथा—अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः। अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ।

१७. अभिनिविशश्च १।४।४७—अभि और नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहले आते हैं, तो विश् के आधार को कर्म कारक होता है। यथा—

अभिनिविशते सन्मार्गम्। धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते विभाषा सूत्र की अनुवृत्ति आने से कहीं-कहीं द्वितीया नहीं भी होती है। यथा—पापेऽभिनिवेशः।

१८. उपान्वध्याङ्वसः १।४।४१—यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि और आ में से कोई भी उपसर्ग लगा हो तो क्रिया के आधार को कर्मकारक होता है। यथा—हरिः वैकुण्ठं उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९. अभुक्त्यर्थस्य न (वा०)—जब वस् धातु का अर्थ उपवास करना होता है, तब उपवस् का आधार कर्म नहीं होता, अधिकरण ही रहता है। यथा—वने उपवसति-वन में उपवास करता है।

२०. उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः तथा अध्यधि शब्दों की जिससे सन्निकटता पायी जाय, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

उभयतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं।

सर्वतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं।

धिक् कृष्णाभक्तम्—कृष्ण की भक्ति नहीं करने वाले को धिक्कार है।

धिक् पिशुनम्—चुगलखोर को धिक्कार है।

उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि लोक के ठीक ऊपर हैं।

अध्यधि लोकम्— संसार के ठीक नीचे।

अधोऽधो लोकम्—लोक के ठीक नीचे।

२१. अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वा०)—अभितः—चारों ओर, परितः— सब ओर, समया—समीप, निकषा—समीप, हा और प्रति-ओर शब्दों की जिनमें सन्निकटता पायी जाय, उनमें द्वितीया होती है। यथा—

अभितः कृष्णम्, परितः कृष्णम्, ग्रामं समया, निकषा लङ्काम्, हा कृष्णभक्तम्। परिजनः राजानम् अभितः तस्थौ—नौकर राजा के चारों ओर खड़े थे।

२२. अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४—अन्तरा—बीच में और अन्तरेण-विषय में, विना शब्दों की जिसमें सन्निकटता पायी जाय, उसमें द्वितीया होती है। यथा—अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्।

२३. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २।३।५—जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार रहे तो समय और मार्गवाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

मासं कल्याणी, मासम् अधीते, मासं गुडधानाः, क्रोशं कुटिला नदी, क्रोशमधीते, क्रोशं गिरिः।

अत्यन्त संयोग न होने पर द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा—
मासस्य द्विरधीते; क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४. **कर्मप्रवचनीयाः** १।४।८३–कर्म प्रवचनीय संज्ञा उन पदों की होती है, जो न तो किसी विशेष क्रिया के द्योतक होते हैं, न षष्ठी सदृश सम्वन्धों को वाचक ही और न अन्य किसी क्रियापद ही लक्षित करते हैं, को भी ये विभक्ति के विधायक माने गये हैं। कर्मप्रवचनीयों के द्वारा विशेष अर्थ लक्षित होता है। कर्मप्रवचनीयों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

२५. **अनुर्लक्षणे** १।४।८४–जव अनु किसी विशेष हेतु को लक्षित करता है, तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जाती है। यथा–जपमनुप्रावर्षत् जप–समाप्त होते ही वृष्टि हो गयी।

२६. **तृतीयार्थे** १।४।८५–अनु जव तृतीया अर्थ को प्रकट करता हो तो कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा–नदीमनुवसिता सेना (नद्या सह सम्वद्धा इत्यर्थः)

२७. **हीने** १।४।८६–अनु जव हीन अर्थ को द्योतित करता है, तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा–अनुहरिं सुरा–देवता हरि के वाद हैं–

२८. **उपोऽधिके च** १।४।८७ अधिक तथा हीन अर्थ का वाचक होने पर उप भी कर्म प्रवचनीय संज्ञक होता है। यथा–उप हरिं सुराः–देवता हरि से हीन हैं। अधिकार्थ में सप्तमी होती है–यथा–उपपरार्धे हरेर्गुणाः-परार्ध्य से अधिक ही हरि के गुण हैं।

२९. **लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः** १।४।९०—जव अंगुलि निर्देश करना हो, इत्थंभूत-ये इस प्रकार के हैं, यह वतलाना हो; भाग–यह उनके हिस्से में पड़ा या पड़ता है, यह प्रकट करना हो अथवा पुनरुक्ति दिखलानी हो तो प्रति, परि और अनु कर्मप्रवचनीय कहे जाते हैं और द्वितीया विभक्ति होती है। यथा–

(१) वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् - वृक्ष पर विजली चमकती है (लक्षण)

(२) भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा विष्णु के ये भक्त हैं (इत्थंभूत)

(३) लक्ष्मीर्हरिं प्रति पर्यनु वा–लक्ष्मी विष्णु के हिस्से में पड़ी (भाग)

(४) वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति—प्रत्येक वृक्ष को सींचता है (वीप्सा)

३०. **अभिरभागे** १।४।९१–भाग को छोड़ अन्य सभी उपर्युक्त अर्थों में अभि कर्मप्रवचनीय होता है। यथा–हरिमभिवर्तते, भक्तो हरिमभि, देवं देवमभिषिञ्चति।

३१. **अधिपरी अनर्थकौ** १।४।९३—अनर्थक अपरिवर्तित अर्थवाली धातु के साथ लगे हुए अधि और परि कर्मप्रवचनीय होते हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुतोऽध्यागच्छति, कुतः पर्यागच्छति। इन प्रयोगों में गम् धातु का अर्थ अधि और परि उपसर्ग लगने पर भी वही रहता है, उपसर्ग वश अर्थ बदलता नहीं। अतः उक्त उपसर्गों का लगना निरर्थक है।

३२. **सुः पूजायाम्** १।४।६४---पूजा अर्थ हो तो सु अव्यय की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा---सुसिक्तम्--अच्छी तरह सींचा हुआ; सुस्तुतम्--अच्छी तरह स्तुति किया हुआ।

३३. **अतिरतिक्रमणे च** १।४।९५---अतिक्रमण अर्थात् उल्लङ्घन अर्थ और पूजा अर्थ में अति की कर्मप्रवनीय संज्ञा होती है। यथा--अतिदेवान् कृष्णः--कृष्ण सब देवताओं की अपेक्षा पूज्य हैं।

३४. **अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु** १।४।९६---पदार्थ संभावना, अन्ववसर्ग---यथेच्छित आज्ञा करना, गर्हा, और समुच्चय अर्थों में अपि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा---

पदार्थ--सर्पिषोऽपि स्यात्---घृत भी है।

संभावना---अपि स्तुयाद्विष्णुम्---बड़े शक्तिशाली विष्णु की स्तुति करें।

अन्ववसर्ग---अपि स्तुहि---स्तुतिकर---यहाँ अपि शब्द आज्ञा द्योतक है।

गर्हा--धिग्देवदत्तं अपि स्तुयाद्वृषलम्---यदि शूद्र की स्तुति करे तो देवदत्त को धिक्कार है।

समुच्चय---अपि सिञ्च, अपि स्तुहि---सींच भी और स्तुति भी कर।

तृतीया

३५. **साधकतमं करणम्** १।४।४२---अपने कार्य की सिद्धि में कर्त्ता जिसकी सबसे अधिक सहायता लेता है, उसे करण कहते हैं। यथा---'रामेण बाणेन हतो वाली' वाक्य में कर्त्ता राम, वाली को मारने में सबसे अधिक सहायता बाण की लेता है, यों तो हाथ और धनुष भी सहायक हैं, पर ये अत्यन्त सहायक नहीं हैं, अतः इन्हें करणकारक नहीं माना जायगा। तात्पर्य यह है कि जो क्रिया फल की निष्पत्ति में अत्यन्त उपकारक होती है, उसकी ही करण संज्ञा होती है। "गङ्गायां घोषः" में गङ्गा घोष---झोपड़ी बनाने में अत्यन्त साधक नहीं है, साधन अवश्य है, क्योंकि गङ्गा के किनारे पर ही झोपड़ी है, अतः इस वाक्य में गंगा को तृतीया नहीं हुई।

३६. **कर्तृकरणयोस्तृतीया** २।३।१८---अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। यथा---रामेण रावणः हतः; रामः जलेन घटं प्रक्षालयति।

३७. **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** (वा०)---प्रकृति---स्वभावादि अर्थों में तृतीया होती है। यथा---प्रकृत्या चारुः---स्वभाव से सुन्दर। प्रायेण याज्ञिकः; गोत्रेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गार्ग्यः, समेनैति, विषमेणैति, द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति, सुखेन दुःखेन वा याति, शिशुः क्लेशेन स्थातुं शक्नोति, आत्मानुरूपां विधिनोपमेये (कुमार० १।१८)

३८. **दिवः कर्म च** १।४।४३—दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्म संज्ञा होती है, यथा:—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति—पाशों से या पाशों को खेलता है।

३९. **संज्ञोऽन्यतरस्याम् कर्मणि** २।३।२२—समपूर्वक ज्ञा धातु के कर्म की विकल्प से करण संज्ञा होती है। यथा—पित्रा पितरं वा संजानीते—पिता के साथ मेल से रहता है।

४०. **अपवर्गे तृतीया** २।३।६—फल प्राप्ति या कार्य सिद्धि को अपवर्ग कहते हैं और अपवर्ग का बोध कराने के लिए कालसातत्यवाची एवं मार्ग सातत्यवाची शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाको अधीतः। द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते (पञ्चतन्त्र १), क्रोशेन पुस्तकं पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली।

४१. **सहयुक्तेऽप्रधाने** २।३।१९—सह के योग में अप्रधान को—जो प्रधान का साथ देता है, तृतीया विभक्ति होती है। यथा—
पुत्रेण सहागतः पिता।

४२. **एवं साकं सार्धं समंयोगेऽपि। विनापि तद्योगं तृतीया** (सिद्धान्तकौमुदी)—इसी प्रकार साकं, सार्धं और समम् के योग में भी अप्रधान में तृतीया होती है। यथा—लक्ष्मणः रामेण साकं गच्छति, हनुमान् वानरैः सार्धं जानकीं मार्गयामास, देवदत्तः यज्ञदत्तेन समं स्नाति।

सह अथवा सहायकार्थ शब्दों के विना भी सह अर्थ प्रकट होता हो तो तृतीया विभक्ति होती है। इसमें 'वृद्धो यूना' यह पाणिनि का सूत्र ही प्रमाण है।

४३. **पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्** २।३।३२—पृथक्, विना, नाना, शब्दों के साथ तृतीया; द्वितीया या पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—पृथग् रामेण रामात् रामं वा; जलेन; जलाद्; जलं विना कमलं स्थातुं न शक्नोति।

४४. **येनाङ्गविकारः** २।३।२०—जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार मालूम हो, उस अङ्ग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

अक्ष्णा काणः—एक आँख का काना।

पादेन खञ्जः—पैर का लँगड़ा।

कर्णेन बधिरः—कान का बहरा।

४५. **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्** २।३।७२—तुला और उपमा इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्यार्थक शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभक्ति होती है। यथा—तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। तुला और उपमा के साथ तृतीया नहीं होती, केवल षष्ठी होती है। यथा—तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

विशेष :—कालिदास और माघ ने तुला और उपमा शब्दों के साथ भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया है। इसका कारण यही लगता है कि "निरंकुशाः कवयः"—कवियों पर वैयाकरणों का बन्धन नहीं रहता है। यथा—

१. **तुलां यदारोहति दंतवाससा** (कुमार० ५।३४)—पार्वती के ओष्ठ महावर रहित लता की समता को प्राप्त होते हैं।

२. **नभसा तुलां समारुरोह** (रघु० ८।१५)—आकाश की समता को प्राप्त हो गया।

३. **स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना** (शिशु० १।८)—भस्म से सफेद शम्भु के समान स्पष्ट उपमा वाला।

यद्यपि उपर्युक्त प्रयोगों की सिद्धि खींच-तान के साथ मल्लिनाथ ने की है, पर वह सन्तोषजनक नहीं।

४६. **हेतौ** २।३।२३—जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, या होता है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

१. दण्डेन घटः—दण्डे के कारण घड़ा।

२. गुरौ भक्त्या प्रीतास्मि (रघु० २।६३)—गुरु के प्रति तेरी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ।

३. पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखलायी पड़े।

४. अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

५. तेनापराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण दण्डनीय हो। हेतु में पञ्चमी भी होती है। यथा—विनयात् पात्रताम् याति।

४७. गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका (सिद्धान्त कौमुदी)—वाक्य में क्रिया प्रयुक्त न होने पर भी यदि अर्थमात्र से समझ ली जाय तो वह क्रिया कारक विधान में प्रयोजिका बन जाती है। यथा—'अलं श्रमेण' का अर्थ है श्रमेण साध्यं नास्ति।

४८. **इत्थं भूतलक्षणे** २।३।२१—जो जिस प्रकार से जाना जाय उसके लक्षण में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

१. जटाभिस्तापसः—जटाओं से तपस्वी जान पड़ता है।

२. स्वरेण रामभद्रमनुहरति (उत्त० रा०)—स्वर में राम के सदृश है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष—

इत्थंभूत लक्षण में—विशेष चिह्न के द्वारा—ज्ञात होने पर कहीं-कहीं सप्तमी भी होती है। यथा—धनदेन समस्त्यागे–त्याग में कुवेर-समान है।

४६. कार्य, अर्थ, प्रयोजन, गुण तथा इसी प्रकार उपयोग या प्रयोजन प्रकट करनेवाले शब्दों के योग में उपयोज्य या आवश्यक वस्तु की तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

(१) देवपादानां सेवकैर्नप्रयोजनम् (पञ्च० १)—श्रीमान् को नौकरों की क्या आवश्यकता है।

(२) तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (पञ्च० १)—धनी लोगों का कोई-कोई कार्य तिनके से भी हो जाता है।

(३) कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः (हितोपदेश)—उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ है, जो न विद्वान् है और न धर्मात्मा।

५०. अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया (वा०)—निन्दित व्यवहार हो तो दाण् धातु के प्रयोग में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—दास्या संयच्छते कामुकः।

शिष्ट व्यवहार में चतुर्थी ही होती है, यथा—

भार्यायै संयच्छति।

चतुर्थी

५१. **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** १।४।३२—दान कार्य के द्वारा कर्त्ता जिसे सन्तुष्ट करता है उसे सम्प्रदान कहते हैं।

५२. क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वा०)—किसी भी क्रिया के द्वारा जो अभिप्रेत हो, वह सम्प्रदान है। यथा—'पत्ये शेते' पति अनुकूल बनाने की क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, अतएव पति सम्प्रदान है।

५३. यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वा०)—यज् धातु के कर्म की करण संज्ञा और सम्प्रदान की कर्मसंज्ञा होती है। यथा—

पशुना रुद्रं यजते अर्थात् पशुं रुद्राय ददाति—भगवान् रुद्र को पशु देता या चढ़ाता है।

५४. **चतुर्थी सम्प्रदाने** २।३।१३—सम्प्रदान की चतुर्थी होती है। यथा—विप्राय गां ददाति।

५५. **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः** १।४।३३—रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थवाली अन्य धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है और सम्प्रदान को चतुर्थी होती है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हरये रोचते भक्तिः, बालकाय मोदकाः रोचन्ते ।

५६. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः १।४।३४—श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था और शप् धातुओं के योग में जिसको जनाया जाय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा—गोपी स्मरात्कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा—गोपी कामदेव के वश से श्रीकृष्ण के अर्थ अपनी श्लाघा करती है, सपत्नी से कृष्ण को दूर करती है, स्थित होकर कृष्ण को अपना अभिप्राय बताती है तथा कृष्ण के लिए अपना उपालम्भ करती है । यहाँ श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था और शप् धातु का ज्ञीप्स्यमान कृष्ण है, अतः कृष्ण को सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हुई है ।

५७. धारेरुत्तमर्णः १।४।३५—धृङ्—उधार लेना—कर्ज लेना, धातु के योग में महाजन—कर्ज देनेवाले की सम्प्रदान संज्ञा होती है और सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है । तात्पर्य यह है कि ऋण देने वाला उत्तमर्ण और ऋण लेने वाला अधमर्ण कहलाता है । उत्तमर्ण की सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा—भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः—हरि भक्त के लिए मोक्ष को धारण करते हैं । यहाँ उत्तमर्ण भक्त है, अतः भक्त को चतुर्थी हुई है ।

श्यामः अश्वपतये शतं धारयति—श्याम ने अश्वपति से एक सौ कर्ज लिया ।

५८. स्पृहेरीप्सितः १।४।३६—स्पृह् धातु के योग में जिसे चाहा जाय, वह सम्प्रदान संज्ञक होता है । सम्प्रदान को चतुर्थी विभक्ति में रखते हैं । यथा—पुष्पेभ्यः स्पृहयति—फूलों की चाहना करता है ।

विशेष—

स्पृह् धातु से बने हुए शब्दों के योग में ईप्सित कभी-कभी सम्प्रदान के रूप में देखा जाता है, यथा—योगेभ्यः स्पृहयालवः (वैराग्यशतक, ३४)—भोगों का इच्छुक; कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् (वेणी सं० अं० ६)—फिर दूसरे गृहस्थ पुत्रों की इच्छा कैसे करेंगे ?

साधारणतया स्पृह्धातु से प्रत्यय निष्पन्न शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है । यथा—स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु०)

५९. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रतिकोपः १।४।३७—क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्या तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोधादि किये जाते हैं, उनकी संप्रदान संज्ञा होती है । यथा—

हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा—हनुमान पर रावण क्रोध करता है, द्रोह—अपकार करता है, ईर्ष्या करता है, दोष निकालता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६०. **क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म** १।४।३८—जब क्रुध् और द्रुह् धातु सोपसर्ग होती हैं तब जिसके प्रति क्रोध या द्रोह किया जाता है, वह कर्म संज्ञक होता है, सम्प्रदान संज्ञक नहीं। यथा—

क्रूरमभिक्रुध्यति संद्रुह्यति—क्रूर के ऊपर क्रोध करता है, द्रोह करता है। मच्छरीरमभिद्रोग्धुं (मुद्रा० १)—मेरे शरीर पर आघात पहुँचाने के लिए; न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (विक्रमो० ३)—क्या गुरुजी उस पर गुस्सा नहीं हुए ?

६१. **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता** १।४।४०—प्रति और आङ् उपसर्ग से परे श्रु धातु के योग में प्रेरणा रूप व्यापार में पूर्व का कारक सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—कृष्णो विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा—कृष्ण ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करते हैं; प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् (रघु० १५।४)—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्न हटाने की प्रतिज्ञा कर दी।

६२. **राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः** १।४।३९—राध् और ईक्ष् धातुओं के योग में विविध प्रकार के प्रश्न करनेवाला सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः।

६३. **अनुप्रतिगृणश्च** १।४।४१—अनु और प्रति उपसर्ग से परे गृ धातु के प्रयोग में पूर्व का कारक सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति होता—प्रथम कहता है, पश्चात् अध्वर्यु उपदेश करता है। यहाँ पूर्व कारक होता में चतुर्थी हुई है।

६४. **परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्** १।४।४४—निश्चित काल के लिए वेतन इत्यादि पर किसी को रखा जाना परिक्रयण कहलाता है, उस परिक्रयण में जो करण होता है, उसकी विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—शतेन शताय वा परिक्रीतः।

६५. **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या** (वा०)—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाय, उस प्रयोजन में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है।

काव्यं यशसे—काव्य यश के लिए किया जाता है।

यूपाय दारु—खम्भा बनाने के लिए लकड़ी

६६. **क्लृपि संपद्यमाने च** (वा०)—जब कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है। यथा—

भक्तिः ज्ञानाय कल्पते, जायते वा—भक्ति ज्ञान के लिए होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७. उत्पातेन ज्ञापिते च (वा०)—उत्पात के द्वारा ज्ञापित वस्तु में चतुर्थी होती है। यथा-वाताय कपिला विद्युत्--रक्ताभ विद्युत् आँधी की सूचना देती है।

मांसौदनाय व्याहरति मृगः—हिरण की आवाज मांस-भोजन प्राप्ति की सूचना देती है।

६८. हितयोगे च (वा०)—हित और सुख के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

ब्राह्मणाय हितं सुखम् वा--ब्राह्मण के लिए हितकर या सुखकर।

हितमामयाविने--रोगी के लिए हितकर।

६९. **क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः** २।३।१४—तुमुन् प्रत्ययान्त धातु के परोक्ष प्रयोग में कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा--

फलेभ्योयाति-- फलान्याहर्तुं याति--फलों को लेने के लिए जाता है।

नमःकुर्मो नृसिंहाय—नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः—नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य--स्वयम्भुवं प्रीणयितुं नमस्कृत्य—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गां मुमोच वनं गन्तुं-वन जाने के लिए गाय छोड़ दी।

७०. **तुमर्थाच्च भाववचनात्** २।३।१५--किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, उसको प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा--

यागाय याति--यष्टुं याति—यज्ञ करने के लिए जाता है।

दानाय धनमर्जयति—दातुं धनमर्जयति दान देने के लिए धन कमाता है।

७१. **नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च** २।३।१६ -नमः, स्वस्ति स्वाहा, स्वधा, अलं तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है।

हरये नमः—हरि को नमस्कार हो।

प्रजाभ्यःस्वस्ति--प्रजा का कल्याण हो।

अग्नये स्वाहा---अग्नि को यह आहुति है।

पितृभ्यः स्वधा—-पितरों को यह अर्पित है।

इन्द्राय वषट्---इन्द्र को वलि अर्पित है।

(क) अलम् शब्द के चार अर्थ हैं- भूषण, पर्याप्त, सामर्थ्य, समाप्ति और निषेध। अलं के योग में चतुर्थी तभी होती है, जब अलम् का अर्थ-पर्याप्त-सामर्थ्य होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दैत्येभ्यो हरिः अलम्—हरि दैत्यों के लिए समर्थ हैं।

अलं मल्लो मल्लाय—मल्ल दूसरे मल्ल के लिए काफी है।

(ख) सामर्थ्य अर्थ देने वाले प्रभु आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य—यहाँ सामर्थ्य अर्थ देने वाले प्रभु शब्द के योग में भुवनत्रय को षष्ठी विभक्ति हो गई है।

पाणिनि के "तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः" सूत्र से ज्ञात होता है कि प्रभु शब्द के योग में चतुर्थी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं।

७२ उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी (वा०)—उपपद विभक्ति-पद के सम्बन्ध में होनेवाली विभक्ति से कारक विभक्ति—क्रिया के सम्बन्ध में होनेवाली विभक्ति बलवती होती है।

अव्ययों के योग में जो विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं, उन्हें उपपद विभक्ति कहते हैं। अतः नमस्करोति क्रिया के योग में नमः अव्यय की अपेक्षा चतुर्थी विभक्ति नहीं होगी, बल्कि नमस्करोति क्रियापद की अपेक्षा द्वितीया विभक्ती होगी। कहीं-कहीं चतुर्थी भी होती है। यथा—

मुनित्रयं नमस्कृत्य (सिद्धान्तकौ०)—मुनित्रय को नमस्कार करके।

धातारं प्रणिपत्य कुमार० २।३)—ब्रह्मा को प्रणाम कर।

तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (काद०)—भक्तिपूर्वक उसको नमस्कार किया।

आर्यं प्रणिपत्य (मुद्रा० १) आर्य को नमस्कार कर।

७३. कथ्, ख्या, शंस् एवं चक्ष् धातुओं के अनुक्त कारक तथा निपूर्वक प्रेरणार्थक विद् धातु की साधारण दशा के कर्ता का कर्मरूप में प्रयोग न होकर सम्प्रदान रूप में प्रयोग होता है। यथा—

आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् (शकु० अंक १)—देवि! तुमसे सत्य कहता हूँ।

यस्मै ब्रह्मपरायणं जगौ (उत्तर० ४)

एहि, इमां वनस्पति-सेवां काश्यपाय निवेदयावहे (शकु० अंक ४)—आओ वृक्षों की यह सेवा कण्व ऋषि को निवेदित करें।

७४. भेजना अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में जिस व्यक्ति के पास कोई भेजा जाता है, वह चतुर्थी में तथा जिस स्थान पर भेजा जाता है, वह द्वितीया विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघु० ५।३९)—महाराज भोजने रघु के पास दूत भेजा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माधवाय पद्मवतीं प्रहितवता देवरातेन (मालती मा० अंक १)—देवरात ने पद्मवती के पास माधव को भेजा।

७५. **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु** २।३।१७—प्राणी को छोड़ अनादर अर्थ में दिवादि मन् धातु के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। विकल्पाभाव में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

न त्वां तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुमको तिनके के बराबर नहीं समझता।

७६ जहाँ अनादर न दिखलाकर समता या तुलना का भाव प्रकट किया जाय, वहाँ केवल द्वितिया विभक्ति होती है। यथा—त्वां तृणं मन्ये—तुम्हें तृणवत् समझता हूँ।

७७. **अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्** (वा०) —जहाँ प्राणि का निषेध किया है, उस स्थान में नौ, काक, अन्न, शुक, शृगाल, इनका निषेध नहीं समझना चाहिये। यथा—न त्वां नावमन्नं वा मन्ये।

अनादर अर्थ में प्राणी होने पर भी चतुर्थी हो जाती है। न त्वां शुने श्वानं वा मन्ये—मैं तुमको कुत्ता भी नहीं मानता।

७८. **गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि** २।३।१२— गत्यर्थक धातुओं का कर्म-मार्ग न हो और क्रिया के निष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़े तो उस कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हो जाती हैं।

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति।

जब गत्यार्थक धातु का कर्म होता है, तो केवल द्वितीया होती है। यथा— पन्थानं गच्छति। जहाँ शारीरिक व्यापार नहीं करना पड़ता, वहाँ भी केवल द्वितीया होती है। यथा—मनसा हरिं भजति। यहाँ हरि के पास जाने में केवल मन से काम लिया जा रहा है, शरीर से नहीं। अतः 'हरि' में केवल द्वितीया होगी, चतुर्थी नहीं। इसी प्रकार निम्न प्रयोगों में केवल द्वितीया ही हुई है—

नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके।
तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
विद्या ददाति विनयं, विनयात् याति पात्रताम्।
अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते।
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।

७९. **चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः** २।३।७३— आशीर्वाद अर्थ में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है, पक्ष में षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयुष्यं चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शं अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात्।

पञ्चमी

८०. ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४—जिससे किसी वस्तु का विश्लेषण होता है, उसे अपादान कहते हैं।

८१. अपादाने पञ्चमी २।३।२८—अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है।

यथा—ग्रामादायाति—ग्राम से आता है; धावतो अश्वात्पतति—दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है। प्रासादात् अपतत्—छत से गिरा।

८२. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा०,—जुगुप्सा, विराम और प्रमाद तथा इनके समानार्थक शब्दों के साथ पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—विरमति, धर्मात्प्रमाद्यति, न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः। कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः। (मेघदूत १ श्लो०)

अपवाद—

जिसके विषय में भूल या असावधानी होती है, उसमें सप्तमी का भी प्रयोग होता है।

यथा—न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनुस्मृति २।२१३)।

८३. भीत्रार्थानां भयहेतुः १।४।२५—जिस कारण डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण रक्षा करनी हो. उस कारण को पञ्चमी होती है।

यथा—चौराद् बिभेति, सर्पाद् भयम्, रक्ष मां नरकपातात्, भीमाद् दुःशासनं त्रातुम्, चौरात् त्रायते। भयहेतु न हो तो सप्तमी हो जाती है। यथा—अरण्ये बिभेति त्रायते वा।

८४. पराजेरसोढः १।४।२६—परा पूर्वक जि धातु के योग में जो असह्य होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है और पञ्चमी विभक्ति हो जाती है। यथा—

अध्ययनात् पराजयते—अध्ययन से भागता है (अध्ययन उसके लिए कष्टप्रद है)। परन्तु हराने के अर्थ में द्वितीया ही होती है; शत्रून् पराजयते अर्थात् शत्रुओं को पराजित करता है।

८५. वारणार्थानामीप्सितः १।४।२७—जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है, वह अपादान होता है। यथा—

यवेभ्यो गां वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

मित्रं पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८६. **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति** १।४।२८—जब कोई अपने को किसी से छिपाता है, तो जिससे छिपाता है, वह अपादान होता है। यथा—

मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

८७. **आख्यातोपयोगे** १।४।२९—नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में पढ़नेवाले की अपादान संज्ञा होती है। यथा—

उपाध्यायाद् अधीते, मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता। तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि (उत्तर०)

नियम न होने पर षष्ठी होती है; यथा नटस्य गाथां शृणोति।

८८. **जनिकर्तुः प्रकृतिः** १४३०—जन धातु के कर्त्ता का आदिकारण अपादान होता होता है। यथा—

ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते, कामात्क्रोधोऽभिजायते।

जिससे कोई उत्पन्न होता है, उसमें प्रायः सप्तमी भी होती है; यथा—

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० ३।१७४) शुकनासस्यापि रेणुकायां तनयो जातः (कादम्बरी)

८९. **भुवः प्रभवश्च** १।४।३१—उत्पन्न होनेवाला का जो प्रभव—उत्पत्ति स्थान होता है, वह अपादान कहलाता है। यथा—हिमवतो गङ्गा प्रभवति।

९०. **ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च** (वा०)—ल्यप् का लोप होने पर कर्म और अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

प्रासादात्प्रेक्षते—प्रासादमारुह्य प्रेक्षते आसनात्प्रेक्षते—आसने उपविश्य प्रेक्षते, महल पर चढ़कर देखता है और आसन पर बैठ कर देखता है।

श्वशुराज्जिह्रेति—श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेति—श्वशुर को देखकर लजाती है।

९१. **प्रश्नाख्यानयोश्च** (वा०)—प्रश्न और आख्यानवाची शब्दों से पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—कुतो भवान्पाटलिपुत्रात्।

९२. **यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी** (वा०)—जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी दिखायी जाती है, वह स्थान या समय पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है।

९३. **तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ** (वा०)—और जो स्थान की दूरी दिखायी जाती है, उसका वाचक शब्द प्रथमा या सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—"वनाद्ग्रामो योजनं योजने वा" इस वाक्य में वन से दूरी दिखयी गयी है, अतः वन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को पंचमी विभक्ति में रखा गया है और जितनी दूरी दिखायी है, उसे प्रथमा या सप्तमी में रखा गया है। अतः योजनं या योजने हुआ है।

६४. कालाद् सप्तमी च वक्तव्या (वा०)–समय की दूरी का वाचक सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्त्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है। अस्मात् दिवसात् दीपावली दशसु दिवसेषु।

६५. **पञ्चमी विभक्ते:** २।३।४२–ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक भेद दिखाया जाता है, उसमें पञ्चमी होती है। यथा—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् गीता)

सत्यादप्यनृतं श्रेयः (वेणी ३); मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः (रघु० १४।५६) चैत्ररथादनूने वृन्दावने (रघु० ६।५०)–अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते (हितो०), मौनात् सत्यं विशिष्यते।

६६. **अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते** २।३।२९–– अन्य, इतर, आरात्, ऋते और दिग्वाचक प्रत्यक्, उदीच् प्रभृति शब्दों तथा दक्षिणा, उत्तरा प्रभृति शब्दों एवं दक्षिणाहि उत्तराहि प्रभृति शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्।

(२) आराद्वनात्

(३) ऋते कृष्णात्

(४) पूर्वो ग्रामात्

(५) चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः

(६) दक्षिणा ग्रामात्

(७) दक्षिणाहि ग्रामात्

६७. प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, परम् और ऊर्ध्वम् के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) शैशवात् प्रभृति पोषिताम् (उत्तर० १)––बचपन से ही पाली-पोसी हुई।

(२) मालत्याः प्रथमावलोकनदिवसादारभ्य (मालती० ६)—मालती के प्रथम दर्शन के दिन से।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) निवसन्नावसथे पुराद् बहिः (रघु० ८।१४)--नगर के बाहर किसी निवास स्थान में रहते हुए।

(४) पाणिपीडनविधेरनन्तरम् (कुमार० ८।१)—उसके पाणिग्रहण के बाद।

(५) अस्मात्परम् (शकु० ६)–इस पुरुष के बाद।

(६) ऊर्ध्वं म्रिये मुहूर्त्ताद्धि (भट्टि० १।८।३६)--एक क्षणभर के बाद मर जाऊँगा।

९८. **अपपरी बर्जने** १।४।८८—अप और परि ये दो अव्यय वर्जन अर्थ में कर्म प्रवचनीय होते हैं।

९९. **आङ् मर्यादावचने** १।४।८९--आङ् अव्यय मर्यादा अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक होता है।

१००. **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** २।३।१०—कर्मप्रवचनीय संज्ञक अप, परि और आङ् के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा--

(१) अप परि वा हरेः संसारः—भगवान् को छोड़कर अन्यत्र संसार है।

(२) आ मुक्ते संसारः—मुक्ति पर्यन्त संसार है।

(३) आपरितोषात् विदुषाम् (शकु० १)—विद्वानों को सन्तोष हो जाने तक।

(४) आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (शकु०)--आरम्भ से सुनना चाहता हूँ।

(५) आकैलासात् (मेघदूत ११)—कैलाश तक।

१०१. **प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः** १।४।९२--प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में प्रति अव्यय कर्मप्रवचनीयसंज्ञक होता है।

१०२. **प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात्** २।३।११--प्रतिनिधि एवं प्रतिदान अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति अव्यय के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति--प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

(२) तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्--तिलों के बदले में उड़द देता है।

१०३. **अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी** २।३।२४ कर्त्ता को छोड़कर हेतुभूत ऋण से पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—शताद्बद्धः।

१०४. **विभाषागुणेऽस्त्रियाम्** २।३।२५—हेतु या कारण प्रकट करने वाले गुणवाचक स्त्रीलिङ्ग भिन्न शब्द विकल्प से तृतीया या पञ्चमी विभक्ति में रखे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा—जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः—वह अपनी मूर्खता के कारण पकड़ा गया।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च (रघु० २।६३)

विशेष—

(१) गुणवाचक न होने पर अस्त्रीलिङ्ग होते हुए भी तृतीया होती है। यथा—धनेन कुलम्।

(२) गुणवाचक होने पर भी स्त्रीलिङ्ग होने से तृतीया ही होती है। यथा—बुद्ध्या मुक्तः—वह अपनी बुद्धि के कारण छोड़ दिया गया।

(३) कभी-कभी स्त्रीलिङ्ग संज्ञा भी इसी अर्थ में पञ्चमी में प्रयुक्त होती है। यथा—नास्ति घटोऽनुपलब्धेः।

(४) वाद-विवाद करने या तर्क पूर्ण उत्तर देने के लिए पञ्चमी विभक्ति प्रायः सम्पूर्ण कार्य-कारण सम्बन्ध का बोध कराती है।

यथा—पर्वतो वह्निमान् धूमात्।

१०५. **करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्ववचनस्य** २।३।३३—अद्रव्यवाची स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कतिपय के करण में तृतीया और पञ्चमी होती है। यथा—

(१) स्तोकेन स्तोकात् वा मुक्तः।

(२) अल्पेन अल्पाद्वा, कृच्छ्रेण कृच्छ्राद्वा, कतिपयेन कतिपयाद्वा मुक्तः।

१०६. **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** २।३।३५—अद्रव्यवाची दूर अर्थवाले और समीप अर्थवाले शब्दों से द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

(१) दूरं दूरात् दूरेण दूरे वा ग्रामस्य,

(२) अन्तिकं अन्तिकात् अन्तिकेन अन्तिके वा ग्रामस्य।

अद्रव्यवाची कहने कारण दूरः पन्थाः में द्वितीया, पञ्चमी नहीं हुईं, क्योंकि पन्थाः द्रव्य वाची है।

षष्ठी

१०७. **षष्ठी शेषे** २।३।५०—प्रातिपदिक और कारक के अतिरिक्त जो स्वस्वामित्व भावादि सम्बन्ध है, वह शेष कहलाता है और शेष में षष्ठी विभक्ति होती है। मुख्यतः सम्बन्ध चार प्रकार का है—स्वस्वामि-भाव सम्बन्ध, जन्यजनक भाव सम्बन्ध, अवयवावयवि-सम्बन्ध और स्थान्यादेश।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा—साधोर्धनं पितुः पुत्रः पशोः पादो ब्रुवोवचिः ।
उदाहृतश्चतुर्धा यः कविभिः परिशीलितः ॥

अर्थात्—'साधोर्धनम्' में स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है, अतः साधु धन का स्वामी है; 'पितुः पुत्रः' में जन्य-जनक भाव सम्बन्ध है; 'पशोः पादः' में अवयव-अवयवी भाव सम्बन्ध है अतः 'पशु पैर' में पशु अवयवी है और पैर अवयव यथा 'ब्रुवोवचिः' में स्थान्यादेश सम्बन्ध है; अतः ब्रू के स्थान पर वचि आदेश होता है। इन सम्बन्धों के अतिरिक्त कार्यकारणादि और भी सम्बन्ध हैं; सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

राज्ञः पुरुषः—(स्वस्वामि-भाव सम्बन्ध)

१०८१. कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव (सिद्धान्त कौमुदी)—कर्मादि में भी सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—

सतां गतम्, सर्पिषो जानीते, मातुः स्मरति, एधोदकस्योपस्कुरुते, भजे शम्भोश्चरणयोः, फलानां तृप्तः ।

१०९. **षष्ठी हेतुप्रयोगे** २।३।२६—हेतु शब्द के प्रयोग में जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है, वह और हेतु शब्द दोनों ही षष्ठी में रखे जाते हैं। यथा—

अन्नस्य हेतोः वसति—अन्न प्राप्ति के प्रयोजन से रहता है।
अध्ययनस्य हेतोः वसति—अध्ययन के लिए रहता है।
अल्पस्य हेतोः बहु हातुमिच्छन् ।

११०. **सर्वनाम्नस्तृतीया च** २।३।२७—जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है, तो सर्वनाम और हेतु शब्द दोनों में तृतीया, पञ्चमी या षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

कस्य हेतोः वसति, कस्मात् हेतोः अत्र वसति, केन हेतुना अत्र वसति ।

१११. निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् (वा०)—निमित्त शब्द का अर्थ रखनेवाले—कारण, हेतु, प्रयोजन, शब्दों का प्रयोग होने पर सभी विभक्तियाँ होती हैं। यथा-किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते ।

इस वार्त्तिक में दिया गया प्रायः शब्द इस बात का द्योतक है कि जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता, तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होती, शेष विभक्तियाँ ही होती हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानेन निमित्तेन, ज्ञानाय निमित्ताय, ज्ञानात् निमित्तात्, ज्ञानस्य निमित्तस्य, ज्ञाने निमित्ते।

११२. **षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन** २।३।३०—अतसुच् (तस्) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

(१) ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्।

(२) यः पुरस्ताद्यतीनाम् (मालविका १)

(३) तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोः (मेघदूत)

(४) अपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया (रघुवंश २।२)

११३. **दूरान्तिकार्थैःषष्ठ्यन्यतरस्याम्** २।३।३४—दूर, अन्तिक तथा इसके समान अर्थ रखनेवाले शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पञ्चमी होती है। यथा—

दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा, प्रत्यासन्नो माधवी मण्डपस्य

११४. **एनपा द्वितीया** २।३।३१—एनप्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

(१) दक्षिणेन ग्रामस्य ग्राम वा

(२) दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु (महाभारत ६।८।२)

(३) दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (शकु० १)

(४) धनपतिगृहानुत्तरेण (मेघदूत ७८)

११५. **ज्ञोऽविदर्थस्य करणे** २।३।५१—ज्ञानार्थक ज्ञा धातु के प्रयोग में शेष विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है।

सर्पिषो ज्ञानम्—घी की जानकारी।

११६. **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** २।३।५२—अधिपूर्वक इ धातु—स्मरण करना, दय्, ईश्—समर्थ होना तथा इन धातुओं का अर्थ रखनेवाले अन्य धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है। यथा—मातुः स्मरणम्, सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा।

ननु प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य (मालविका० १)—क्यों श्रीमान् अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः (मालती ४)

यदि प्रभविष्यामि आत्मनः (शकु० १)

स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः।

रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः (भट्टि० ८।११९)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष—

सामान्यतः स्मृ धातु के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—स्मरसि गोदावरीम् (उत्तर राम०) इस प्रकार प्रपूर्वक भू धातु तथा उससे बने शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति भी होती है। यथा प्रभवति मल्लो मल्लाय।

११७. **कृञः प्रतियत्ने** २।३।५३—शेष विवक्षा—सम्बन्ध विवक्षा होने पर कृञ् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

एधोदकस्योपस्करणम्—इन्धन, जल इत्यादि का इकट्ठा करना।

११८. **रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः** २।३।५४—भावकर्तृक ज्वर धातु को छोड़ रुजार्थक धातुओं के कर्म में शेष विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

चौरस्य रोगस्य रुजा।

११९. **अज्वरिसन्तापयोरितिवाच्यम्** (वा०)—ज्वर धातु के साथ-साथ सम् पूर्वक तप् धातु का भी निषेध समझना चाहिए। यथा—**चौरज्वरः, चौरसन्तापो वा।** यहाँ भावकर्तृक ज्वर धातु तथा सन्ताप धातु के कर्म में शेष विवक्षा में षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, परन्तु उक्त वार्तिक ने निषेध कर दिया।

१२०. **आशिषि नाथः** २।३।५५—आशीर्वाद अर्थवाले नाथ धातु के साथ शेष विवक्षा होने पर कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—**सर्पिषो नाथनम्**—घृत सम्बन्धी आशीर्वाद अर्थ न हो तो षष्ठी नहीं होती। तथा—**माणवकनाथनम्**—माणवक सम्बन्धी याञ्चा।

१२१. **जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्** २।३।५६—हिंसार्थक जस् (णिजन्त), नि तथा प्रपूर्वक हन्, क्रथ (णिजन्त), नट् (णिजन्त) तथा पिष् धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

चौरस्योज्जासनम्, चौरस्य निप्रहणनम्, निहननम्, प्रहणनम् वा। निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम् (माघ १।३७)—जगत् के द्रोहियों को अपने बल से मारने के लिए,

चौरस्योन्नाटनम्, चौरस्य क्राथनम्, वृषलस्य पेषणम्।

क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामपि (माघ १।४०)

१२२. **व्यवहृपणोः समर्थयोः** २।३।५७—समान अर्थवाले वि और अव पूर्वक हृ तथा पण् धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। ये धातु जुआ तथा क्रय-विक्रय व्यवहार में समानार्थक माने जाते हैं। यथा—

शतस्य व्यवहरणं पणनं वा—सौ का व्यवहार या जुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष—

इस अर्थ में प्रायः द्वितीया का प्रयोग भी देखा जाता है। यथा—

पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम् (महाभारत)—पञ्चालराज की कन्या द्रौपदी को दाँव पर रख दो।

१२३. **दिवस्तदर्थस्य** २।३।५८—द्यूत एवं क्रय-विक्रय व्यवहार में दिव् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

शतस्य दीव्यति—सौ का जुआ खेलता है।

दिव् धातु का उपर्युक्त अर्थ न होने पर कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

ब्राह्मणं दीव्यति—ब्राह्मण की स्तुति करता है।

१२४. **विभाषोपसर्गे** २।३।५९—उपसर्ग पूर्वक दिव् धातु के योग में उपर्युक्त अर्थ हो तो विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

१२५. **प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने** २।३।६१—देवता के अर्थ में दान देने में वर्तमान प्रेष्य और ब्रुव् धातुओं के हविर्विशेष के वाचक कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—अग्नये छागस्य हविषो वपायाः प्रेष्य अनुब्रूहि वा।

१२६. **कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे** २।३।६४—कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ के समान अर्थवाले प्रत्ययों के प्रयोग में कालवाची अधिकरण में शेष विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्।

१२७. **कर्तृकर्मणोः कृति** २।३।६५—कृत् प्रत्यय के योग में कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

कृष्णस्य कृतिः—कृष्ण का कार्य (कृ+क्तिन्); जगतः कर्त्ता कृष्णः। रामस्य गतिः, वेदस्य अध्येता, क्रतूनामाहर्त्ता।

१२८. गुणकर्मणि वेष्यते (वा०)—कृदन्त के गौणकर्म में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा।

कृदन्त कहने का अर्थ यह है कि तद्धित में षष्ठी विभक्ति नहीं होगी। यथा—कृतपूर्वीकटम्।

१२९. **उभयप्राप्तौ कर्मणि** २।३।६६—जहाँ कर्त्ता, कर्म दोनों आये हों वहाँ कृदन्त के योग में ही षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३०. स्त्रीप्रत्ययोरकारकयोर्नायं नियमः (वा०)—अक् और आकार कृत् प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिंग में हों तो उक्त नियम नहीं लगता अर्थात् कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः।

१३१. शेषे विभाषा (वा०)—अन्य स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा। इस वाक्य में कर्त्ता हरि को विकल्प से षष्ठी विभक्ति हुई है।

१३२. स्त्रीप्रत्यय इत्येके, केचिदविशेषणविभाषामिच्छन्ति (सिद्धान्तकौमुदी) कुछ आचार्यों के मतानुसार यह विकल्प स्त्रीलिंग कृत् प्रत्ययों के कर्त्ता के विषय में ही नहीं, अपितु अन्य लिंगों में कृत् प्रत्ययों के कर्त्ता के विषय में भी है। यथा—

शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा।

१३३. क्तस्य च वर्तमाने २।३।६७—वर्तमान अर्थ में विहित क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

१३४. अधिकरणवाचिनश्च २।३।६८—अधिकरणवाची क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। इदमेषामासितं गतं शयितं भुक्तं वा। 'आसितम्' अधिकरण में क्त प्रत्यय होकर बना है, अतः इसके योग में 'एषाम्' को षष्ठी विभक्ति हुई है।

१३५. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् २।३।६९—लादेश प्रत्यय-शतृ, शानचादि में अन्त होने वाले शब्द; उ, अक्प्रत्ययान्तशब्द, अव्यय, निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द, खल् प्रत्यय के अर्थ में होने वाले प्रत्ययान्त शब्द एवम् तृन्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति का निषेध है। यथा—

कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः—शतृ और शानच् के उदाहरण।

हरिं दिदृक्षुः—हरि को देखने का इच्छुक (उ प्रत्यय का उदाहरण)

दैत्यान् घातको हरिः—हरि दैत्यों के हन्ता हैं (अक् प्रत्यय का उदाहरण)

संसारं सृष्ट्वा—संसार रच कर (क्त्वा प्रत्ययान्त)

अव्यय में—जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्तुम्।

निष्ठा में—विष्णुना हता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् विष्णुः।

खलर्थ में—ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा।

तृन् प्रत्ययान्त में—सोमं पवमानः, आत्मानं मण्डयमानः, वेदमधीयन्, कर्त्ता कटान्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३६. **कमेरनिषेधः** (वा०)—कमुकान्तौ धातु से उकञ् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होता।

लक्ष्म्याः कामुकः।

१३७. **द्विषः शतुर्वा** (वा०)—द्विष् में शतृ प्रत्यय जोड़ने पर विकल्प से षष्ठी हो जाती है। यथा—**मुरस्य मुरं वा द्विषत्।**

यहाँ कारक षष्ठी का ही निषेध किया गया है, शेषे षष्ठी होती है। यथा—**ब्राह्मणस्य कुर्वन्, नरकस्य जिष्णुः।**

१३८. **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः** २।३।७०—भविष्यत् अर्थ में विहित अक् प्रत्यय और आधमर्ण्य अर्थ में विहित इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती। यथा—**सतः पालकोऽवतरति, व्रजं गामी, शतं दायी।**

१३९. **कृत्यानां कर्त्तरि वा** २।३।७१—जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय लगे रहते हैं, उनका प्रयोग होने पर तृतीया या षष्ठी होती है।

मया मम वा सेव्यो हरिः—हरि ही मेरे लिए सेव्य हैं।

न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभिः (किरात०) भृत्यों को अपने स्वामियों को न ठगना चाहिये।

विशेष नियम

(क) अनुकरण करने या सादृश्य होने का अर्थ में अनुपूर्वक कृ धातु के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्याः स्मितस्य (कुमार० १-४४)—तब शायद उसकी मुस्कान की समता कर सके।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्बरी)—अपनी श्यामता द्वारा भगवान् विष्णु की समता करती हुई।

(ख) कृते, मध्ये और समक्ष आदि शब्दों के योग में भी षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा—**एतेषां मध्ये केचिदेव विद्यार्थिनः**—इनमें कुछ ही विद्यार्थी हैं। **अमीषां प्राणानां कृते** (भर्तृहरि वैरा०) इन प्राणों के लिए।

(ग) अंशांशिभाव या अवयव—अवयवी भाव होने पर अंशी या अवयवी में षष्ठी होती है। यथा—**जलस्य बिन्दुः, रात्रेः पूर्वम्, दिनस्य उत्तरम्।**

(घ) प्रिय वल्लभ तथा इसी अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले अन्य शब्दों के योग में षष्ठी होती है। यथा—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तर०—६), **कायः कस्य न वल्लभः।**

(ङ) विशेष, अन्तर इत्यादि शब्दों के प्रयोग में जिनमें विशेष या अन्तर दिखाया जाता है, वे षष्ठी में रखे जाते हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च विशेषः (शकु०)—आप और इन्द्र में इतना ही अन्तर है।

(च) जब किसी कार्य या घटना को समाप्त हुए कुछ काल बीत जाता है, तो बीती हुई घटना के वाचक शब्द षष्ठी में रखे जाते हैं। यथा—

अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा० ६ अंक)—पिता को मरे हुए आज दश महीने हो गये।

(छ) निम्न प्रयोगों में षष्ठी का व्यवहार असंगत है। इनका कार्य अन्य विभक्तियों के द्वारा भी चल सकता है।

(१) **तं च व्यसृजद् भरतस्य** (उत्तर० ४)—उसको भरत के पास भेजा। यहाँ भरताय भी हो सकता है।

(२) **जयसेनायास्तावत्संवेद्य गच्छ** (मालविका० ४)—यहाँ पर 'जयसेनायै' होना चाहिए।

(३) **स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः** (हितोपदे०)—यहाँ 'स्त्रीषु' होना चाहिए। उपर्युक्त तीनों प्रयोग 'शेषे षष्ठ्या' से अशुद्ध हैं।

सप्तमी

१४०. **आधारोऽधिकरणम्** १।४।४५—कर्त्ता और कर्म के द्वारा किसी भी क्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है। आधार के तीन भेद हैं—**औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक।**

जिसके साथ आधेय का भौतिक संश्लेष हो, उसे औपश्लेषिक आधार कहते हैं; जैसे "**कटे आस्ते काकः**" यहाँ 'चटाई' से बैठनेवाले का भौतिक संश्लेष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

जिसके साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेष हो, उसे वैषयिक आधार कहते हैं। यथा—'**मोक्षे इच्छा अस्ति**' इच्छा का मोक्ष में अधिष्ठित होना बौद्धिक संश्लेष है।

जिसके साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, उसे अभिव्यापक आधार कहते हैं। यथा— '**तिलेषु तैलम्**' में तैल तिल के किसी एक भाग में नहीं रहता है, बल्कि समस्त तिल में व्याप्त रहता है।

१४१. **सप्तम्यधिकरणे** १।३।३६—अधिकरण तथा दूर एवं अन्तिक अर्थ वाले शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—**कटे आस्ते काकः, ग्रामस्य दूरे अन्तिके वा।** क्रिया के आधार की तरह उसका समय भी सप्तमी में रखा जाता है। यथा—

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ०)—आषाढ़ के पहले ही दिन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् (रघु०)—बाल्यकाल में विद्याभ्यास करनेवाले रघुवंशियों का।

१४२. क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वा०)—क्तप्रत्ययान्त शब्दों में इन् प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—अधीती व्याकरणे।

१४३. साध्वसाधुप्रयोगे च (वा०)—साधु और असाधु के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—साधुः कृष्णो मातरि—कृष्ण अपनी माँ के लिए बहुत अच्छे थे।

असाधुर्मातुले—पर मामा के लिए बहुत बुरे।

१४४. निमित्तात्कर्मयोगे (वा०)—जिस निमित्त-फल प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह निमित्त या फल यदि उस क्रिया के कर्म से युक्त अथवा समवेत हों तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

१४५. यस्य च भावेन भावलक्षणम् २।३।३७—जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है, तो जो कार्य हो चुकता है, उसे सप्तमी में रखते हैं। यथा—

गोषु दुह्यमानासु गतः, रामे वनं गते दशरथः प्राणान् तत्याज, सुरेशे गायति सर्वे जग्मुः, सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति।

१४६. अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च (वा०)—योग्य कारकों को कर्तृत्व होने पर तथा अयोग्य कारकों को अकर्तृत्व होने पर जिसकी क्रिया से अन्य क्रिया मालूम हो उससे तथा योग्य कारकों को कर्तृत्व एवं अयोग्य कारकों को अकर्तृत्व होने पर सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

सत्सु तरत्सु असन्त आसते—सन्तों के तरने पर असन्त बैठते हैं।
असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति—असन्तों के बैठने पर सन्त तरते हैं।
सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति—सन्तों के बैठने तर असन्त तरते हैं।
असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति—असन्तों के तरने पर सन्त बैठे रहते हैं।

१४७. षष्ठीचानादरे २।३।३९—जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है, उसमें षष्ठी या सप्तमी होती है। यथा—

रुदतः पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा वनं प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह संन्यासी हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निवारयतोऽपि पितुः निवारयत्यपि पितरि वा अध्ययनं परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

१४८. **स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षि प्रतिभूप्रसूतैश्च** २।३।३९—स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू और प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी ये दोनों ही विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

गवां गोषु वा स्वामी, गवां गोषु वा प्रसूतः।

१४९. **आयुक्तकुशलाभ्याञ्चासेवायाम्** २।१।४०—यदि सर्व प्रकार सेवा गम्यमान हो तो आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी भी होती है। यथा—आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा।

१५०. **यतश्च निर्द्धारणम्** २।३।४१—यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं से किसी विशेषण द्वारा वैशिष्ट्य निर्देश किया जाय तो समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

कविषु कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः—कवियों में कालिदास सबसे बड़े कवि हैं।

गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा—गायों में काली गाय बहुत दूध देने वाली है।

छात्रेषु छात्राणां वा मैत्रः पटुः—विद्यार्थियों में मैत्र तेज है।

१५१. **पञ्चमी विभक्ते** २।३।४२—जहाँ निर्धार्यमाण का भेदमात्र हो, वहाँ पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः—माथुर पाटलिपुत्रों से आढ्यतर हैं।

१५२. **साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः** २।३।४३—पूजन अर्थ में साधु और निपुण शब्द के योग में सप्तमी विभक्ति होती है, किन्तु प्रति का योग होने पर सप्तमी नहीं होती। यथा—

मातरि साधुर्निपुणो वा—माता के विषय में साधु या निपुण है।

१५३. अप्रत्यादिभिरितिवक्तव्यम् (वा०)—प्रति के निषेध के साथ अन्य उपसर्गों का भी निषेध समझना चाहिये। यथा—

साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा।

१५४. **प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च** २।३।४४—प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा।

१५५. **नक्षत्रे च लुपि** २।३।४५—काल अर्थ में जिसके प्रत्यय का लोप हो जाता है, उसे लुबन्त नक्षत्र कहते हैं। लुबन्त नक्षत्र से तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्येण पुष्ये वा कार्यमारभेत—पुष्य नक्षत्र जिस दिन हो, उस दिन कार्य आरम्भ करो।

मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्, अथवा मूले आवाहयेद्देवीं श्रवणे विसर्जयेत्।

१५६. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये २।३।७—दो कारक शक्तियों के बीच के काल और स्थान के वाचक शब्द सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति में रखे जाते हैं। यथा—

अद्यभुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता—आज खाकर यह फिर दो दिन में या दो दिन के बाद खायगा।

इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्—यहाँ स्थित होकर यह एक कोश पर स्थित लक्ष्य को वेध देगा।

विशेष :—

अधिक शब्द के योग में पञ्चमी और सप्तमी होती है। यथा—

तस्मिन्नाधिकम्, यस्मादधिकम्।

१५७. अधिरीश्वरे १।४।९७—स्वस्वामि-सम्बन्ध में अधि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

१५८. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी २।३।९—अधिक अर्थवाले तथा ईश्वर अर्थवाले वर्तमान कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

उपपरार्धे हरेर्गुणाः—हरि के गुण परार्ध से भी अधिक हैं।

अधिभुवि रामः—रामचन्द्र पृथ्वी के ईश्वर हैं।

अधिरामे भूः— ,, ,,

१५९. विभाषा कृञि १।४।९८—कृञ् धातु के योग में ईश्वर अर्थ होने पर अधि की विकल्प से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—

यदत्र मामधिकरिष्यति।

१६० स्नेह, आदर, अनुराग तथा इनका अर्थ देनेवाले अन्य शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकु०)

देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्रा०)

न तापसकन्यकायां ममाभिलाषः (शकु०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६१. कारण अर्थ के वाचक शब्दों के प्रयोग में कार्य के वाचक शब्द में सप्तमी होती है। यथा—दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् (नीति० ८४)

१६२. युज् धातु तथा उससे बने हुए अन्य शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—असाधुदर्शी तत्र भवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्ते (शकु०)

त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते।

१६३. क्षिप्, मुच्, अस्, पत् (णिजन्त) और अप् पूर्वक राध् इन धातुओं तथा इनसे बने हुए शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

मृगेषु शरान् मुमुक्षुः योग्य सचिवेन्यस्तःसमस्तो भारः। (रत्नावली)

न खलु खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन् (शकु०)

कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शकु० अंक ६)

१६४. व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, कुशल, निपुण, शौण्ड, और प्रवीण आदि शब्दों के योग में भी सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

गृहकर्मणि व्यापृता, व्यग्रा, तत्परा वा,

अक्षेषु निपुणः, शौण्डः, पटुः, प्रवीणो वा।

१६५. ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग में वह सप्तमी में रखा है, जो पकड़ा जाता है या जिस पर प्रहार किया जाता है। यथा—

आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (शकु० १), केशेषु गृहीत्वा।

विश्वास अर्थबोधक शब्दों के साथ प्रायः जिसका विश्वास किया जाता है, वह सप्तमी में रखा जाता है। यथा—

पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी,

सति के योग में सप्तमी होती है। यथा—जाते सति। सति सप्तमी को (Nominative absolute) कहा जाता है। इसका दूसरा नाम भावे सप्तमी (Locative absolute) भी है।

अनुशीलनी

१. कारक की परिभाषा लिखकर षष्ठीविभक्ति कारक है या नहीं ? स्पष्ट कीजिए।

२. उपपद विभक्ति और कारक विभक्ति में क्या अन्तर है ? अलम्, निकषा, नमस्कृत्य, समं, कृतम्, शी, स्था, अनु, अधि एवं धिक् के योग में कौन-कौन विभक्तियाँ होती हैं ?

३. व्यापृत, आसक्त, सति, स्नेह, क्षिप्, मुच्, कुशल, शौण्ड, कला और प्रवीण के योग में कौन-कौन विभक्तियाँ होती हैं ?

४. निम्न प्रयोगों में विभक्ति का निर्देश कीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मासमधीतं व्याकरणम्, स त्वां तृणाय मन्यते, नैतत् दुष्करं तेन, सतां पूजितो रामः, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्, स्वरेण पुत्रं जानाति, उपमा वृक्षस्य न विद्यते, शताद् बद्धः, जपमनुप्रावर्षत्, श्वशुराज्जिह्रेति, गेयो माणवकः साम्ना, पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी ।

५. निम्न पदों को शुद्ध कीजिये या शुद्ध होने के प्रमाण उपस्थित कीजिए—

तुलां यदारोहति दन्तवाससा, घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः, हरि दिनमुपोषितः भजे शंभोश्चरणयोः, अजिग्रहत्तं जनको धनुस्तत्, जलेऽभिशेते भगवान् वर्षे मासचतुष्टयम्, नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्, दरिद्रो राज्ञो धनं याचते, मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय चकार, रामः त्वां शतं धारयति, भार्यामीर्ष्यति, द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठमोऽध्यायः

समास-विचार

"समसनं समासः" संक्षेपीकरण को समास कहते हैं अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार साथ रखना, जिससे उनके आकार में कमी आ जाय और अर्थ प्रकट हो जाय। तात्पर्य यह है कि परस्पर सम्बद्ध अर्थ वाले शब्दों को एक रूप में मिलाना समास है। यथा—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः।

समास के पदों में विभक्ति प्रत्यय लगाकर अर्थ स्पष्ट करने के लिए जो शब्द-समूह बनाया जाता है, उसे विग्रह कहते हैं। विग्रह का अर्थ है समस्त शब्द को तोड़कर उसका पूर्वकाल का रूप देना। यथा—राजपुरुषः का विग्रह राज्ञः पुरुषः हुआ, यहाँ राज्ञः राजन् शब्द का षष्ठी का एकवचन और पुरुषः पुरुष शब्द का प्रथमा का एक-वचन पूर्वरूप है।

समास के मुख्य पाँच भेद हैं—

(१) केवल समास

(२) अव्ययीभाव

(३) तत्पुरुष

(४) द्वन्द्व

(५) बहुव्रीहि

केवल समास

विशेष संज्ञा विनिर्मुक्तः केवल समासः—जिसकी कोई विशेष संज्ञा न हो उसे केवल समास कहते हैं। यह समास कहीं सुबन्त का सुबन्त के साथ, कहीं सुबन्त का तिङन्त के साथ और कहीं सुबन्त का इवादि शब्दों के साथ होता है।

१. सह सुपा २।१।४—सुबन्त का सुबन्त के साथ, और सुबन्त का तिङन्त के साथ समास होता है। यथा—

पूर्वंभूत = भूतपूर्वः (पूर्व + अम्, भूत + सु) में दोनों ही पद सुबन्त हैं। पर्य-भूषत् और अनुव्यचलत्—में तिङन्त के साथ समास हुआ है, किन्तु यह समास वेद में ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वा०)—इव के साथ भी यह समास होता है, पर इसमें मध्यवर्ती विभक्ति का लोप नहीं होता। यथा—वागर्थाविव, मातेव, जीवमूर्तस्येव।

अव्ययी भाव

पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभाव :—जिसमें प्राय: पूर्व पदार्थ की प्रधानता हो, उसे अव्ययीभाव कहते हैं। इस समास में प्राय: प्रथम पद-शब्द अव्यय रहता है और दूसरा संज्ञा; पर दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं। अव्ययीभाव-शब्द के रूप नहीं चलते, अन्तिम शब्द का नपुंसकलिङ्ग एकवचन में जैसा रूप होता है, वही रूप अकारान्त अव्ययी भाव का हो जाता है।

३. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु २।१।६

विभक्ति आदि अर्थों में अव्यय का प्रयोग होने पर अव्ययी भाव-समास होता है।

(१) विभक्ति अर्थ में—अधिहरि = हरौ इति = अधिहरि, आत्मनि अधि इति = अध्यात्मम्।

(२) समीप अर्थ में—गङ्गाया: समीपम = उपगङ्गम्।

(३) समृद्धि अर्थ में—मद्राणां समृद्धि:=सुमद्रम।

(४) व्यृद्धि—नाश, दरिद्रता अर्थ में—यवनानाम् व्यृद्धि: = दुर्यवनम्।

(५) अभाव में—मक्षिकाणाम् अभाव: = निर्मक्षिकम्।

(६) अत्यय—नाश में—हिमस्यात्यय:—अतिहिमम्।

(७) असम्प्रति—अनौचित्य में—निद्रा सम्प्रति न युज्यते = अतिनिद्रम्।

(८) शब्दप्रादुर्भाव—शब्द का प्रकाश = हरि शब्दस्य प्रकाश:—इति हरि।

(९) पश्चात् अर्थ में—विष्णो: पश्चात्—अनुविष्णु।

(१०) यथा का भाव—योग्यता - रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम्।

,, वीप्सा — अर्थमर्थंप्रति = प्रत्यर्थम्।

,, अनतिक्रम—शक्तिमनतिक्रम्य = यथाशक्ति।

,, सादृश्य अर्थ में—हरे: सादृश्यम् = सहरि।

(११) आनुपूर्व्य—क्रम—ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण = अनुज्येष्ठम्।

(१२) यौगपद्य—एकसाथ होना—चक्रेण युगपत्=सचक्रम्।

(१३) सादृश्य—हरे: सादृश्यम्=सहरि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१४) सम्पत्ति—क्षत्राणां सम्पत्तिः—सक्षत्रम् ।
(१५) साकल्य—तृणमपि अपरित्यज्य = सतृणम् ।
(१६) अन्त—तक—अग्निगुल्म पर्यन्तम् = साग्नि ।

४. **अव्ययीभावे चाकाले** ६।३।८१—काल के अतिरिक्त अर्थ में अव्ययीभाव-समास में सह के स्थान पर स आदेश होता है, पर कालवाचक शब्दों के साथ समास करने पर सह ही रहता है । यथा—सह पूर्वाह्णम् = सहपूर्वाह्णम् ।

५. **यावदवधारणे** २।१।८—अवधारण अर्थ में यावत् के साथ अव्ययीभाव-समास होता है । यथा—यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः ।

६. **आङ् मर्यादाभिविध्योः** २।१।१३—मर्यादा और अभिविधि के अर्थ में आङ् के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है । यथा—आमुक्तेः संसारः = आमुक्ति संसारः, आबालेभ्यो हरिभक्तिः = आबालम् हरिभक्तिः ।

७. **लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये** २।१।१४—आभिमुख्यद्योतक अभि और प्रति का लक्षण-चिह्नवाची पद के साथ अव्ययीभाव-समास होता है । यथा—अग्निमभि शलभाः पतन्ति = अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति ।

८. **अनुर्यत्समया** २।१।१५—जिस पदार्थ से किसी का सामीप्य दिखलाया जाय, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ अनु का अव्ययीभाव-समास होता है । यथा—अनुवनमशनिर्गतः । वनस्य समीपं गतः इत्यर्थः ।

९. **पारे मध्ये षष्ठ्या वा** २।१।१८—पार और मध्य षष्ठ्यन्त पद के साथ अव्ययी भाव-समास होता है तथा विकल्प से षष्ठी तत्पुरुष भी होता है । यथा—

गंगायाः पारमिति = पारेगङ्गम् या गङ्गापारम् । इसी प्रकार मध्येगङ्गम् या गङ्गामध्यम् भी बनते हैं ।

१०. **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** १।२।४७—समास होने वाले पदों में दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण यदि दीर्घ हो, तो ह्रस्व कर दिया जाता है अर्थात् ए के स्थान पर इ और ओ, औ के स्थान पर उ हो जाता है । यथा—गङ्गायाः समीपे = उपगङ्गम्, गोः समीपे = उपगु, नावः समीपे = उपनु ।

११. **अनश्च** ५।४।१०८—अन् में अन्त होनेवाली संज्ञाओं में समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है और अन् का लोप हो जाता है तथा टच् का 'अ' जुड़ जाता है । यथा—राज्ञः समीपे = उपराजम्, चर्मणः समीपे = उपचर्मम्, उपचर्म ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२. **झयः** ५।४।१११—यदि अव्ययीभाव समास के अन्त में झय् प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे, तो विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है। यथा— **समिधः समीपे** = उपसमिधम्, टजाभाव में उपसमित्, सरितः समीपे = उपसरितम्—टजाभाव में उपसरित्।

१३. **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** ५।४।१०७—अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर शरत् इत्यादि शब्दों से टच् प्रत्यय होता है और टच् होने पर शब्द अकारान्त हो जाते हैं। यथा—शरदः समीपे = उपशरदम्, अधिमनसम्, उपदिशम्।

१४. **नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः** ५।४।११०—नदी, पौर्णमासी तथा आग्रहायणी शब्दों के अव्ययीभाव-समास के अन्त में आने पर विकल्प से टच् प्रत्यय होता है। यथा—नद्याः समीपे = उपनदम्, उपनदी, पौर्णमास्याः समीपे = उपपौर्णमास्यम्, उपपौर्णमासी।

गिरि शब्द भी अव्ययीभाव-समास के अन्त में हो, तो विकल्प से टच् होता है। यथा—गिरेः समीपे = उपगिरम, उपगिरि।

तत्पुरुष-समास

उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष :—जिसमें उत्तरपद की प्रधानता रहती है, उसे तत्पुरुष-समास कहते हैं। यथा—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः में उत्तरपद पुरुष की प्रधानता है। तात्पर्य यह है कि तत्पुरुष-समास में प्रथम पद विशेषण और द्वितीय पद विशेष्य रहता है, अतः विशेष्य की प्रधानता रहने के कारण इसमें उत्तरपद की प्रधानता मानी जाती है। इस समास के मूल तीन भेद हैं—तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु।

तत्पुरुष के आठ भेद हैं—प्रथमा तत्पुरुष, द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पंचमी तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष, सप्तमी तत्पुरुष और अन्य तत्पुरुष।

१५. तत्पुरुषः २।१।२२—बहुव्रीहि के पूर्व तत्पुरुष का अधिकार है।

१६. द्विगुश्च २।१।२३—द्विगु भी तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

द्वितीया तत्पुरुष

१७. द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२४—द्वितीयान्तपद विकल्प से श्रितादि प्रकृतिक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं। अर्थात्—श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति के आने पर द्वितीया तत्पुरुष-समास होता है। यथा—कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः, दुःखमतीतः = दुःखातीतः; अग्निं पतितः = अग्निपतितः, प्रलयं गतः = प्रलयगतः; मेघम् अत्यस्तः = मेघात्यस्तः; जीवनं प्राप्तः = जीवनप्राप्तः; कष्टम् आपन्नः = कष्टापन्नः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया तत्पुरुष

१८. तृतीया तत्कृतार्थेन गुण वचनेन २।१।३०—तृतीयान्त पद विकल्प से तृतीयान्तार्थकृत गुणवचन के साथ और अर्थ शब्द के साथ समास को प्राप्त होते हैं। अर्थात् जब तत्पुरुष-समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो, तब उसे तृतीया-तत्पुरुष कहते हैं। यथा—मासेन पूर्वः = मासपूर्वः; शङ्कुलया खण्डः = शङ्कुलाखण्डः; धान्येन अर्थः = धान्यार्थः। सूत्र में तत्कृत पद का प्रयोग होने से 'अक्ष्णा काणः' पद में समास नहीं हुआ; क्योंकि यहाँ 'काणत्व' तत्कृत नहीं है।

१९. पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः २।१।३१—तृतीयान्त पद विकल्प से पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण प्रकृतिक समर्थ सुवन्तों के साथ समास को प्राप्त होते हैं। यथा—मासेन पूर्वः = मासपूर्वः; मात्रा सदृशः = मातृसदृशः; पित्रा समः = पितृसमः; आचारेण निपुणः = आचारनिपुणः; माषेण ऊनम् = माषोनम्; माषेण विकलम = माषविकलम; वाचा कलहः = वाक्कलहः; गुडेन मिश्रः = गुडमिश्रः; आचारेण श्लक्ष्णः = आचारश्लक्ष्णः।

२०. अवरस्योपसंख्यानम्—तृतीयान्त पद विकल्प से अवर प्रकृतिक समर्थ सुवन्त के साथ समस्यन्त होता है। यथा—मासेन अवरः = मासावरः।

२१. अन्नेन व्यञ्जनम् २।१।३४—संस्कार द्रव्यवाचक तृतीयान्त पद विकल्प से समर्थ सुवन्त के साथ समस्यन्त होता है। यथा—दध्ना उपसिक्तमोदनं दध्योदनम्।

२२. भक्ष्येण मिश्रीकरणम् २।१।३५—मिश्रीकरण वाचक तृतीयान्त पद विकल्प से भक्ष्य वाचक समर्थ सुवन्त के साथ समस्यन्त होता है। यथा—गुडेन मिश्रा धानाः = गुडधानाः।

२३. कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२—कर्त्ता और करण में रहनेवाला तृतीयान्त कृदन्त के साथ विकल्प से समस्यन्त होता है। यथा—हरिणा त्रातः = हरित्रातः; नखैर्भिन्नः—नखभिन्नः।

चतुर्थी तत्पुरुष

२४. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २।१।३६—तदर्थ अर्थात् विकृतिवाची चतुर्थ्यन्त सुवन्त अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित सुवन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है। यह चतुर्थी तत्पुरुष-समास कहलाता है। यथा—यूपाय दारुः = यूपदारुः; कुण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डलहिरण्यम्; कुम्भाय मृत्तिका = कुम्भमृत्तिका; भूतेभ्यो बलिः = भूतबलिः; ब्राह्मणाय हितं = ब्राह्मणहितम्; गवे हितम् = गोहितम्।

तदर्थ शब्द से प्रकृति-विकृतिभाव ग्रहण किया गया है, अतः रन्धनाय स्थाली में समास नहीं हुआ है। अश्वघोषादि शब्दों में षष्ठी तत्पुरुष-समास होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५. अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्—अर्थ शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त का नित्य समास हो और विशेष्यलिङ्गता भी होती है। यथा--द्विजार्थः सूपः, द्विजार्था यवागूः, द्विजार्थं पयः, गोसुखम्, गोहितम, गोरक्षितम्।

पञ्चमी समास

२६. पञ्चमी भयेन २।१।३७—भय प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से पञ्चम्यन्त का समास होता है। यथा—चोराद्भयं = चोरभयम्।

२७. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९—स्तोक, अन्तिक और दूरार्थक, कृच्छ्र आदि पञ्चम्यन्त सुबन्तों का क्त प्रत्ययान्तों के साथ समास होता है। यथा—स्तोकान्मुक्तः; अन्तिकादागतः; अभ्याशादागतः; दूरादागतः; कृच्छ्रादागतः।

२८. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२--स्तोकादि से पर पञ्चमी का अलुक् होता है। पूर्वोक्त उदाहरणों में उक्त सूत्र के नियम से ही विभक्तियाँ अलुक् हैं।

षष्ठी समास

२९. षष्ठी २।२।८—समर्थ सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास होता है।

३०. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे २।२।१—यदि एकत्व संख्याविशिष्ट अवयवी हो, तो अवयववाची के साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर और एकदेशी समर्थ सुबन्तों का विकल्प से समास होता है। यथा—पूर्वकायः; अपरकायः। इस सूत्र में 'एकाधिकरण' कहने का अर्थ यह है कि 'पूर्वश्छात्राणाम्' में समास नहीं होता; क्योंकि एकाधिकरण का अभाव है।

३१. अर्धम् नपुंसकम् २।२।२—समासवाची नित्य नपुंसक अर्ध शब्द समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्यन्त होता है। यथा अर्धम पिप्पल्याः = अर्धपिप्पली।

सप्तमी समास

३२. सप्तमी शौण्डैः २।१।४०—शौण्डादि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ सप्तम्यन्त विकल्प से समस्यन्त होते हैं। यथा—अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः।

३३. दिक्संख्ये संज्ञायाम् २।१।५०—दिग्वाची और संख्यावाची का संज्ञा में ही समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। यथा—पूर्वेषुकामशमी; सप्तर्षयः। यह समास संज्ञावाची शब्दों में ही नियम से होता है, अतः उत्तरा-वृक्षाः और पञ्च ब्राह्मणाः में समास नहीं हुआ।

३४. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१—तद्धितार्थ के विषय में उत्तरपद के परे और समाहारवाच्य में दिग्वाचक और संख्यावाचक का विकल्प से समास होता है। यथा—'पूर्वस्यां शालायां भवः' इस लौकिक विग्रह में और 'पूर्वा + ङि, शाला = ङि' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५. सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः :—सर्वनामवाची शब्दों को समास में पुंवद्भाव होता है।

३६. दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ४।२।१०७—असंज्ञा में दिक्पूर्वपदक (समास) से भवादि अर्थों में 'ञ' प्रत्यय होता है।

३७ तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७—अचों के मध्य में आदि अच् की ञित्, णित् और तद्धित प्रत्यय के परे वृद्धि होती है। यथा—पूर्वोक्त उदाहरण में पकारोत्तरवर्त्ती ऊकार की वृद्धि होने पर 'पौर्वशाल:' रूप सिद्ध होता है।

३८. द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्—समास चरमावयव उत्तरपद के परे अवान्तर द्वन्द्व और तत्पुरुष को नित्य ही समास होता है।

३९. गोरतद्धितलुकि ५।४।९२—गोन्त तत्पुरुष से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है, पर तद्धित प्रत्यय के लोप होने पर यह प्रत्यय नहीं होता। यथा—पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ, पञ्चन्+आम्+गो+अम्—इस अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थ' से समास, 'गोरतद्धितलुकि' से 'टच्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, अवादेश "संख्यापूर्वो द्विगुः" सूत्र से द्विगु संज्ञा की और 'द्विगुरेकवचनम्' एकवद्भाव किया और समुदाय 'सु' प्रत्यय नपुंसक लिंग होने से 'अम्' संयोग होने पर 'पञ्चगवम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

द्विगु-समास

४०. संख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से विहित संख्यापूर्वक का द्विगु संज्ञक समास होता है।

४१ द्विगुरेकवचनम् २।४।१—द्विगु अर्थक समाहार एकवत् होता है।

४२. स नपुंसकम् २।४।१७—समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक लिङ्ग होते हैं। यथा—पञ्चानां गवां समाहारः - पञ्चगवम्।

कर्मधारय

४३. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७—विशेषण और विशेष्य समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ बहुल प्रकार से समास को प्राप्त होते हैं। यथा—नीलमुत्पलं =नीलोत्पलम। इस सूत्र में बहुल ग्रहण होने से नित्य समास भी होता है। यथा—कृष्णसर्पः। क्वचिन्न—रामो जामदग्न्यः।

४४. उपमानानि सामान्य वचनैः २।१।५५—उपमानवाची सुबन्त समानाधिकरण सामान्यधर्मवाचक समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है। यथा—घन इव श्यामो = घनश्यामः।

४५. शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्—शाकपार्थिवादि की सिद्धि के लिए उत्तरपद का लोप होता है। यथा—शाकप्रियः पार्थिवः =शाकपार्थिवः; देवपूजको ब्राह्मणो = देवब्राह्मणः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नञ्-समास

४६. नञ् २।२।६—'नञ्' का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

४७ नलोपो नञः ६।३।७३—'नञ्' के नकार का लोप हो, उत्तर पद के परे। यथा—न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः।

४८. तस्मान्नुडचि ६।३।७४–लुप्तनकार के 'नञ्' से पर अजादि उत्तर पद को नुट् का आगम होता है। यथा—न अश्वः = अनश्वः

प्रादितत्पुरुष

४९. कुगति प्रादयः २।२।१८—कु, गति और प्रादि का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। यथा—कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः।

५०. ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१—ऊरी आदि शब्द तथा च्व्यन्त और डाजन्त की क्रिया के योग में गति संज्ञा होती है। यथा–'ऊरी कृत्वा' इस विग्रह में 'ऊर्यादिच्वि-डाचश्च' सूत्र से गति संज्ञा की। 'कुगति प्रादयः' सूत्र से 'कृत्वा' के साथ गति-समास किया। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' सूत्र से क्त्वा के स्थान में ल्यप् प्रत्यय किया। लप् की इत्संज्ञा कर देने पर 'ऊरीकृ + य' इस स्थिति में 'ह्रस्वस्य पिति कृतितुक्' इस सूत्र से तुगागम और अनुबंध का लोप, पश्चात् विभक्ति प्रत्यय 'सु' किया' अनन्तर 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से विभक्ति लोप करने पर 'ऊरीकृत्य' रूप सिद्ध हुआ। इस तरह शुक्लीकृत्वा = शुक्लीकृत्य; पटपटाकृत्वा = पटापटाकृत्य; सुष्ठु पुरुषः = सुपुरुषः।

५१. प्रादयो गत्याद्यर्थे प्रथमया--गत्याद्यर्थ में प्रादि का प्रथमान्त के साथ नित्य समास होता है। यथा--प्रगत आचार्यः प्राचार्यः।

५२. अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया—क्रान्ताद्यर्थ में अत्यादि का द्वितीयान्त के साथ नित्य समास होता है।

५३ एक विभक्ति चाऽपूर्व निपाते १।२।४४ विग्रह में जो नियत विभक्त्यन्त उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, पर पूर्वनिपात नहीं होता।

५४. गो स्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८—उपसर्जन संज्ञक गोशब्द और स्त्री-प्रत्ययान्त, तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है। यथा--अतिक्रान्तो मालामिति = अतिमालः।

५५. अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया—क्रुष्टाद्यर्थ में तृतीयान्त के साथ अवादि का नित्य समास होता है। यथा—अवक्रुष्टः कोकिलया = अवकोकिलः।

५६. पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या—ग्लानाद्यर्थ में चतुर्थ्यन्त के साथ नित्य-समास होता है। यथा—परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययनः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५७ निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:—निरादिक का क्रान्ताद्यर्थ में पञ्चम्यन्त के साथ नित्य समास होता है। यथा—निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः = निष्कौशाम्बिः।

५८. तत्रोपपदं सप्तमीस्थलम् ३।१।९२—सप्तम्यन्त 'कर्मणि' इत्यादि पदों में वाच्यत्वेन स्थित जो कुम्भादि, तद्वाचक जो पद उनकी उपपद संज्ञा होती है। उपपद संज्ञा होने पर ही वक्ष्यमाण अणादि प्रत्यय होते हैं।

उपपद-समास

५९. उपपदमतिङ् २।२।१९—उपपद सुवन्त का तिङन्त भिन्न समर्थ के साथ नित्य समास होता है। यथा—कुम्भं करोतीति = कुम्भकारः। सूत्र में 'अतिङ्' पद ग्रहण करने से 'मा भवान् भूत्' में समास नहीं हुआ।

गति-समास

६०. गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः—गति, कारक और उपपद संज्ञक का सुबुत्पत्ति से पूर्व ही कृदन्त के साथ समास होता है। यथा—'विशेषेण आसमन्ताज्जिघ्रतीति व्याघ्री' इस लौकिकविग्रह में और 'वि + आङ् + घ्रा' आतश्चोपसर्गे, सूत्र से 'क' प्रत्यय किया। 'आतो लोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप किया। 'गतिश्च' सूत्र से गति संज्ञा की 'गतिकारकोपपदानाम्, इत्यादि परिभाषा के बल से 'कुगति प्रादयः" सूत्र से समास किया। स्त्रीत्वविवक्षा में' जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र से ङीप् प्रत्यय 'भसंज्ञक होने से अकार का लोप और विभक्ति कार्य करने पर 'व्याघ्री' रूप सिद्ध हुआ। अश्वेन क्रीता = अश्वक्रीती; कच्छपी इत्यादि।

६१. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ५।४।८६—संख्यादि और अव्ययादि अङ्गुल्यन्त तत्पुरुष से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है। यथा—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्वयङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यो—निरङ्गुलम्।

६२. अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७—अहरादि और संख्या अव्ययादि पूर्वपदक रात्रि शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है। इस सूत्र में 'अहः' शब्द का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिए किया गया है।

६३. रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९—रात्र, अह्न और अहः शब्दान्त जो द्वन्द्व तत्पुरुष वह पुंलिङ्ग में ही होता है। यथा—अहश्च रात्रिश्च = अहोरात्रः, सर्वश्च रात्रिश्च = सर्वरात्रः, संख्यातरात्रः इत्यादि।

६४. संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्—संख्या पूर्वक रात्र शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा—द्विरात्रम, त्रिरात्रम् इत्यादि।

तत्पुरुष-समासान्त प्रत्यय

६५. राजाहःसखिभ्यष्टच् ५।४।९१—राजन् शब्दान्त और अहन् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। यथा—परमश्चासौ राजा = परमराजः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' सूत्र से समास किया, विभक्ति का लोप किया और 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से टच् प्रत्यय किया; 'यचिभम्' से भसंज्ञा की और 'नस्तद्धिते' से टिसंज्ञक का लोप किया तथा विभक्तिकार्य होने पर "परमराजः" यह रूप सिद्ध हुआ।

६६. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६—समानाधिकरण उत्तर पद में या जातीयर् प्रत्यय पर में हो तो महत् शब्द को आकारान्त आदेश होता है। यथा—महांश्चासौ राजा = महाराजः।

६७. प्रकार वचने जातीयर्—प्रकार अर्थ में जातीयर प्रत्यय पर हो, तो महत् शब्द को आकारान्त आदेश होता है। यथा—महाप्रकारो महाजातीयः।

६८. द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७—द्वि और अष्टन् शब्द को आत्व होता है, संख्या के परे; परन्तु बहुव्रीहि में और अशीति के परे आत्व नहीं होता। यथा—द्वौ च दश च = द्वादश; अष्टाविंशतिः।

६९. त्रेस्त्रयः ६।३।४८—'त्रि' शब्द को 'त्रयस्' आदेश होता है, संख्या के परे; किन्तु बहुव्रीहि समास में और अशीति के परे आत्व नहीं होता। यथा—त्रयस्त्रिंशत्।

तत्पुरुष में लिङ्ग-व्यवस्था

७०. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।२६—द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर पद के समान ही लिङ्ग होता है। यथा—कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरी-कुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली।

७१. द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः—द्विगु समास; प्राप्त, आपन्न तथा अलं पूर्वक समास और गति समास को परपद के समान लिङ्ग नहीं होता। यथा—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः = पञ्चकपालः पुरोडाशः।

७२. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।२।४—प्राप्त और आपन्न शब्दों का द्वितीयान्त के साथ समास होता है। यथा—प्राप्तो जीविकां=प्राप्तजीविकः; आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै—अलङ्कुमारिः।

७३. अर्धर्चाः पुंसि च २।४।३१—अर्धर्चादि गण पठित शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गवाची होते हैं। यथा—अर्धर्चः; अर्धर्चम्। इसी प्रकार ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूप, देह, अंकुश, पत्र और सूत्र आदि शब्द सामान्यतः नपुंसकलिङ्गी होते हैं। यथा—मृदु पचति, प्रातः कमनीयम्।

बहुव्रीहि-समास

७४. जब समास में आये हुए दो या अधिक पद किसी अन्य शब्द के विशेषण हों, तो उसे बहुव्रीहि-समास कहते हैं। यथा—पीतं अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस समास के मुख्य दो भेद हैं--(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि और (२) व्यधिकरण बहुव्रीहि।

७५. (१) समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके दोनों या सभी शब्दों का समान अधिकरण हो अर्थात् वह प्रथमान्त हो। यथा—पीताम्बरः।

७६. व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके सभी पद प्रथमान्त न हों, केवल एक ही पद प्रथमान्त हो और दूसरा पद षष्ठी या सप्तमी में हो। यथा—चन्द्रः शेखरे यस्य सः = चन्द्रशेखरः; चक्रं पाणौ यस्य सः—चक्रपाणिः; चन्द्रस्य कान्ति इव कान्तिः यस्य सः = चन्द्रकान्तिः।

७७. शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३--द्वन्द्व-समास के पूर्व बहुव्रीहि का अधिकार है।

७८. अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४—अन्य पदार्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्त विकल्प से समास को प्राप्त होते हैं और वे समास बहुव्रीहि संज्ञक हैं।

७९. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५-सप्तम्यन्त तथा विशेषण का बहुव्रीहि में पूर्वनिपात होता है।

८० हलदन्तात्सप्तम्याः सञ्ज्ञायाम् ६।३।९—सञ्ज्ञा में हलन्त और अदन्त से पर बहुव्रीहि में सप्तमी का अलुक् होता है। यथा---कण्ठेकालः; प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशु रुद्रः; उद्धृतौदना स्थाली; पीताम्बरो हरिः; वीरपुरुषको ग्रामः।

८१. प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः—प्रादि से पर जो धातुज, तत् प्रकृतिभूत जो प्रथमान्त, तदन्त जो प्रपतितादि पद, उनका पदान्तर के साथ समास होता है और पतितादि उत्तर पद का विकल्प से लोप होता है। यथा—प्रपतितपर्णः = प्रपर्णः। यहाँ—प्रकृष्टं पतितं प्रपतितम् विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे' सूत्र से समास हुआ। पुनः प्रपतितं पर्णं यस्मादिति विग्रहे—"प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो चोत्तरपदलोपः" वार्त्तिक से समास धातुज उत्तरपद का लोप, विभक्ति कार्य करने पर 'प्रपर्ण.' यह रूप सिद्ध हुआ।

८२. नञो ऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः—नञ् से परे अस्त्यर्थक सुवन्तों का बहुव्रीहि समास होता है और उत्तरपदस्थ अस्त्यर्थक शब्दों का विकल्प से लोप भी होता है। यथा—अविद्यमानः = अपुत्रः।

८३. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६।३।३४—भाषित पुंस्क से पर ऊङ् प्रत्यय का अभाव है, जिसमें ऐसा जो स्त्रीवाचक शब्द, उसका पुंवाचक के समान रूप होता है, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद के परे; किन्तु पूरण प्रत्ययान्त और प्रियादि के परे यह पुंवद्भाव नहीं होता। यथा—चित्रा गावो यस्येति लौकिक विग्रह; चित्रा+जस्+गो+जस् इति अलौकिक विग्रह में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अनेकमन्यपदार्थे" सूत्र से वहुव्रीहि समास, विभक्ति का लोप "स्त्रियाः पुंवत्" इत्यादि से चित्रा शब्द को पुंवद्भाव किया, अतः टाप् की निवृत्ति होने पर "एक विभक्ति चापूर्वनिपाते" सूत्र से उपसर्जन संज्ञा "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" सूत्र से गो-शब्द के ओकार को ह्रस्व और समुदाय से विभक्ति कार्य करने पर "चित्रगुः" रूप सिद्ध हुआ। रूपवद्भार्यः।

८४ अप्पूरणी प्रमाण्योः ५।४।११६—पूरणार्थ प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग, तदन्त वहुव्रीहि से और प्रमाण्यन्त वहुव्रीहि से समासान्त 'अप्' प्रत्यय होता है। यथा—कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः = कल्याणीपञ्चमा रात्रयः, स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः।

८५. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् ५।४।११३—स्वाङ्गवाची सक्थ्यन्त और अक्ष्यन्त वहुव्रीहि से समासान्त 'षच्' प्रत्यय होता है। यथा—दीर्घसक्थः जलजाक्षी। इस सूत्र में 'स्वाङ्ग' का पाठ होने से 'दीर्घसक्थि शकटम्' और 'स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः' में षच् प्रत्यय नहीं हुआ।

८६. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५—द्वि, त्रि शब्द से पर 'मूर्धन्' शब्द से 'ष' प्रत्यय होता है, वहुव्रीहि समास में। यथा—द्विमूर्धः, त्रिमूर्धः।

८७. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५।४।११७—अन्तर् और वहिस् शब्द से पर लोमन् शब्द से 'अप्' प्रत्यय होता है। यथा—अन्तर्लोमः वहिर्लोमः।

८८ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८—हस्त्यादि भिन्न उपमानवाची से पर पाद शब्दान्त का वहुव्रीहि समास में लोप होता है। यथा—व्याघ्रस्येव पादावस्य —व्याघ्रपात्; अहस्त्यादि कहने ने हस्तिपादः, कुसूलपादः।

८६. संख्यासुपूर्वस्य ५।४।१४—संख्या और सु पूर्वक पाद शब्द से पर समासान्त प्रत्यय का लोप होता है। यथा—उकाकुत्; विकाकुत्।

६०. पूर्णाद्विभाषा ५।४।१४९—पूर्ण शब्द से पर 'काकुद' शब्द के समासान्त प्रत्यय का विकल्प से वहुव्रीहि-समास में लोप होता है। यथा—पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः।

६१ उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८—'उत्' और 'वि' उपसर्ग में पर काकुद शब्द के समासान्त प्रत्यय का बहुव्रीहि समास में लोप होता है। यथा—उत्काकुत्, विकाकुत्।

६२. सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः ५।४।१५०—मित्र और अमित्र अर्थ में 'सुहृत्' और दुर्हृत्' का क्रम से निपातन होता है अर्थात् 'सु' और 'दुर्' से पर हृदय को हृद्भाव का निपातन होता है। यथा—सुहृत्—मित्रम्; दुर्हृद्—अमित्रः।

६३. उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५।४।१५१—उरः प्रभृत्यन्त वहुव्रीहि से समासान्त 'क' प्रत्यय होता है।

६४. सोऽपदादौ ८।३।३८—पाश, कल्प, क या काम्य प्रत्यय के परे विसर्जनीय को स आदेश होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९५. कस्कादिषु च ८।३।४८—कस्कादि गण पठित शब्दों में इण् से उत्तर 'विसर्ग' के स्थान में षत्व और अन्य सत्व होता है। यथा—व्यूढोरस्कः।

९६. इणः षः ८।३।३९—पाश, कल्प, क तथा काम्य प्रत्यय के परे इण् से पर विसर्ग को षत्व होता है। यथा—प्रियसर्पिष्कः।

९७. निष्ठा— २।२।३६—बहुव्रीहि-समास में निष्ठान्त शब्द का पूर्व निपात होता है।

९८. शेषाद्विभाषा ५।४।१—अनुक्त समासान्त शेषाधिकारस्थ बहुव्रीहि से समासान्त 'कप्' प्रत्यय विकल्प से होता है। यथा—महायशस्कः; महायशाः।

द्वन्द्व-समास

९९. चार्थे द्वन्द्वः २।२।२८—चार्थ में वर्तमान अनेक समर्थ सुबन्त का समास विकल्प से होता है और यह द्वन्द्व-समास कहलाता है। इस समास के तीन भेद हैं—

(१) इतरेतर द्वन्द्व।

(२) समाहार द्वन्द्व।

(३) एक शेष द्वन्द्व।

(१) जिस समास में आई हुई दोनों संज्ञाएं अपना प्रधान व्यक्तित्व रखती हों उस समास को इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं। यथा—रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ, रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ, रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मणभरताः, होता च पोता चेति = होतापोतारौ, माता च पिता च = मातापितरौ, होता च पोता च उद्गाता च = होतृपोतोद्गातारः।

१००. (२) जिस समास में च शब्द से जुड़ी हुई संज्ञाएँ अपना पृथक् अर्थ रखने पर भी समूह अर्थ का बोध कराती हों, उसे समाहार द्वन्द्व कहते हैं। यथा—

आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम्, पाणी च पादौ च = पाणिपादम्, गोधूमश्च चणकश्च = गोधूमचणकम्, गङ्गा च शोणश्च = गङ्गाशोणम्, सर्पश्च नकुलश्च = सर्पनकुलम्, मूषकश्च मार्जारश्च = मूषकमार्जारम्।

१०१. (३) जिस समास में दो या अधिक शब्दों में से एक ही शेष रहे उसे एक-शेष द्वन्द्व कहते हैं। यथा—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च = ब्राह्मणौ, शूद्री च शूद्रश्च = शूद्रौ, घटश्च कलशश्च = घटौ वा कलशौ।

१०२. राजदन्तादिषु परम् २।२।३१—राज, दन्तादि शब्दों में पूर्व प्रयोगार्ह का पर प्रयोग होता है। यथा—दन्तानां राजानो = राजदन्ताः।

१०३. धर्मादिष्वनियमः—धर्मादि में पूर्व निपात का कोई नियम नहीं है। यथा—अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ इति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०४. द्वन्द्वे घि २।२।३२—द्वन्द्व-समास में घि संज्ञक का पूर्व निपात होता है। यथा—हरिश्च हरश्च = हरिहरौ।

१०५. अजाद्यन्तम् २।२।३३—द्वन्द्व समास में अजादि अदन्त का पूर्वनिपात होता है। यथा—ईशकृष्णौ।

१०६. अल्पाच्तरम् २।२।३४—द्वन्द्व समास में अल्प 'अच्' का पूर्व में निपात होता है। यथा—शिवकेशवौ।

१०७. पितामात्रा १।२।७० मातृ शब्द के साथ कहा गया पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है। यथा—माता च पिता च = पितरौ, मातापितरौ वा।

१०८. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२—प्राण्यंग, तूर्याङ्ग और सेनांग-वाची द्वन्द्व एकवत् होता है। यथा—पाणिपादम्; मार्दङ्गिकवैणविकम्; रथिकाऽश्वा-रोहम्।

१०९. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ५।४।१०६—चवर्गान्त, दकरान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्व से समासान्त 'टच्' प्रत्यय समाहार में होता है। यथा—वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्; त्वक्स्रजम्, शमीदृषदम्; वाक्त्विषम्; छत्रोपानहम्।

समासान्त-प्रकरण

११०. ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ५।४।७४—ऋक्, पुर्, अप्, धुर्, और पथिन् शब्द जब समास के अंतिम शब्द होते हैं, तो समास के अन्त में 'अ' प्रत्यय जुड़ जाता है। पर अक्षक धूरी वाचक धूः शब्द से अन्त होनेवाले समस्यन्त पदों में 'अ' प्रत्यय नहीं होता। यथा—

ऋचः अर्धम्—अर्धर्चः; विष्णोः पूः = विष्णुपुरम; विमला = आपः यस्य तत् = विमलापम; राज्यस्य धूः—राज्यधुरा।

१११. अनृचबह्वृचावध्येतर्येव-अनृच् और बह्वृच समास में अध्येता अर्थ गम्यमान होने पर ही समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। यहाँ उदाहरण के लिए पूर्वोक्त विमलापं सरः और विष्णुपुरम् को ग्रहण किया जा सकता है।

११२. अक्ष में—अक्षधूः, दृढधूरक्षः, सखिपथः और रम्यपथोदेशः।

११३ अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६—चक्षु पर्याय से भिन्न अक्षिशब्दान्त समास से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है। यथा—गवामक्षीव = गवाक्षः—षष्ठी समास से सुप् का लोप होने पर "अक्ष्णोऽदर्शनात्' से अच् प्रत्यय किया 'यचि भम्' से 'भसंज्ञा और' 'यस्येति च' सूत्र से इकार का लोप। पश्चात् ओकार के स्थान पर अव् सवर्णदीर्घ और विभक्ति कार्य करने पर 'गवाक्षः' रूप सिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११४. उपसर्गादध्वनः ५।४।८५—उपसर्ग से पर अध्वन् शब्दान्त से अच् प्रत्यय होता है। यथा—प्रगतोऽध्वानं प्राध्वोरथः।

११५. न पूजनात् ५।४।६९—पूजनार्थक शब्द से पर जो राजादि शब्द, तदन्त से समासान्त प्रत्यय नहीं होता। यथा—सु-शोभनो राजेति विग्रह में "कुगतिप्रादयः" सूत्र से समास किया, विभक्ति का लोप और 'न पूजनात्' से टच् का निषेध किया, तो 'सुराजा' शब्द बना। इसी प्रकार 'अतिराजा' प्रभृति शब्दों की सिद्धि होती है।

११६. समस्त पद का जाति या संज्ञा- नाम अर्थ होने पर अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् उत्तरपद वाले समासों में टच् प्रत्यय लगता है। यथा—

उपानसम्; अमृताश्मः, कालायसम्; जलसरसम्।

११७. नञ्, दुः और सु के साथ प्रजा और मेधा का बहुव्रीहि समास होने पर 'असिच्' प्रत्यय लगता है। यथा—अप्रजाः; दुष्प्रजाः; सुप्रजाः; अमेधाः, सुमेधाः।

११८ धर्म के पूर्व यदि एक ही पद हो तो बहुव्रीहि समास में 'अनिच्' प्रत्यय लगता है। यथा—

कल्याणधर्मा; उत्पत्स्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्धित-विचार

तद्धित प्रत्यय—धातुओं को छोड़ शेष प्रकार के शब्दों में जिन प्रत्ययों को जोड़ने से कुछ और भी अर्थ निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं, यथा—अण्, ष्यण्, त्व, मत् आदि तद्धित प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययों के लगाने से जो शब्द बनते हैं, उन्हें तद्धितान्त कहते हैं। यथा—कषायेण रक्तम् = काषायम् वस्त्रम्। यहाँ कषाय शब्द से अण् प्रत्यय जोड़ा गया है।

तद्धित प्रत्यय नौ भागों में विभक्त हैं—(१) अपत्यार्थक (२) देवतार्थक (३) सामूहिक (४) अध्ययनार्थक (५) शैषिक (६) विकारावयवार्थक (७) अनेकार्थक (८) मतुवर्थक और (९) स्वार्थिक।

तद्धित प्रत्यय लगाते समय निम्न सामान्य नियमों को अवगत कर लेना आवश्यक है।

१. **तद्धितेष्वचामादेः** ७।२।११७—जिन तद्धित प्रत्ययों में ञ् और ण् की इत्संज्ञा की जाय, उन प्रत्ययों को जोड़ते समय आदि स्वर की वृद्धि हो जाती है। यथा—

दिति + ष्य = दि + ति + य = दैत्य।

क के इत् होने पर भी आदि स्वर की वृद्धि होती है। यथा—वर्षा + ठक् (इक) = वार्षिकः।

२. स्वर अथवा य से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व शब्दों के अन्तिम स्वर में विकार उत्पन्न होता है अर्थात् अ आ इ ई का तो लोप हो जाता है, उ ऊ के स्थान पर गुण (ओ) हो जाता है और औ के स्थान पर सन्धि हो जाती है।

नकारान्त शब्दों के आगे व्यंजन से आरम्भ होनेवाले प्रत्यय जोड़ने पर प्रायः अन् भाग का लोप हो जाता है। यथा—राजन् + वुञ् (अक) = राज् + अक = राजकम्।

३. **ठस्येकः** ७।३।५०—प्रत्यय में आये हुए ठ के स्थान पर इक् होता है।

४. **युवोरनाकौ** ७।१।१—प्रत्यय के यु, वु, के स्थान पर अन और अक् हो जाते हैं। यथा—ल्युट = यु (अन), वुञ् = अक।

५. **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७।१।—प्रत्यय के आदि में आये हुए फ, ढ, ख, छ, घ, के स्थान पर क्रम से आयन्, एय्, ईन्, ईय, इय हो जाते हैं। फ=आयन्, ढ = एय्, ख = ईन्, छ = ईय्, घ=इय्।

६. प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् वर्ण इत्संज्ञक होता है और यह केवल वृद्धि या गुण आदि की सूचना देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वोक्त तद्धित प्रत्ययों के विवेचन करने के पहले शास्त्रीय आधार पर तद्धित प्रत्ययों का उल्लेख करना आवश्यक है। यों तो 'सूत्रविचार सरणि' में कुछ ऐसे सामान्य सूत्र हैं जिनका समावेश अपत्याधिकार, रक्ताधिकार और चातुर्थिकाधिकार के सूत्रों में हो गया है, पर अध्ययनार्थियों की सुविधा की दृष्टि से देवतार्थक, मतुवर्थक, समूहार्थक प्रभृति तद्धित प्रत्ययों के प्रतिपादन के सन्दर्भ में आवश्यक सूत्रों का उल्लेख किया गया है। अतः यह सम्भव है कि एकाध सूत्र पुनर्लिखित रूप में उपलब्ध होगा, किन्तु इस प्रकार का प्रयास अध्ययनार्थियों की सुविधा की दृष्टि से ही किया गया है। अब यहाँ अपत्याधिकार, रक्ताधिकार और चातुर्थिकाधिकार के प्रमुख सूत्रों के विवेचन प्रस्तुत किये जाते हैं।

अपत्य के तीन भेद हैं—(१) अपत्य (२) गोत्रापत्य (३) युवापत्य। जो अपने से विना व्यवधान के उत्पन्न हों, उन पुत्रादि के अपत्य संज्ञा है; जो अपत्य में उत्पन्न हों, उन पौत्रादिकी गोत्रापत्य संज्ञा और जो पिता आदि जीवित हों तो पौत्र के पुत्रादि की युवापत्य संज्ञा है। इन तीनों अर्थों में अपत्यार्थक प्रत्यय होते हैं।

अपत्याधिकार

१. **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** ४।१।८७—'धान्यानां भवने क्षेत्रे' इससे पूर्व अर्थों में स्त्री शब्द से 'नञ्' प्रत्यय एवं 'पुंस' शब्द से स्नञ् प्रत्यय विकल्प से होते हैं। स्त्री+नञ् = स्त्रैणः (स्त्रिया अपत्यम्), पुंस्+स्नञ् = पौंस्नः (पुंसोऽपत्यम्)

२. **तस्याऽपत्यम्** ४।१।९२—षष्ठ्यन्त कृतसन्धि समर्थ सुबन्त से अपत्य अर्थ में पूर्व विवक्षित (अण, ष्य, नञ् स्नञ् आदि) प्रत्यय तथा वक्ष्यमाण (इञ् आदि) प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

३. **ओर्गुणः** ६।४।१४६—उवर्णान्त भसंज्ञक को तद्धित के परे गुण होता है उपगु+अण् = औपगवः (उपगोरपत्यम्), दितेरपत्यम् = दैत्यः।

४. **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** ४।१।१६२—अपत्यत्येन विवक्षित पौत्र, प्रपौत्रादि गोत्रसंज्ञक होते हैं।

५. **एको गोत्रे** ४।१।९३—गोत्र में एक ही अपत्य-प्रत्यय होता है, अर्थात् गोत्र में पुत्र का पुत्र, उसका पुत्र इत्यादि परम्परा से अनेक अपत्य-प्रत्यय नहीं होते हैं। उपगु+अण् = औपगवः (उपगोर्गोत्रापत्यमिति)।

६. **यञञोश्च** २।४।६४—गोत्र प्रत्ययकृत बहुत रहने पर एक से अधिक रहने पर यञन्त और अञन्त के यञ् और अञ् का लोप हो जाता है। किन्तु स्त्रीलिङ्ग में लुक् नहीं होता है। गर्ग+यञ् = गर्गाः (गर्गस्य गोत्रापत्यानि), वत्स+यञ् = वत्साः (वत्सस्य गोत्रापत्यानि)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. **जीवति तु वंश्ये युवा** ४।१।१६३—वंश्य अर्थात् पिता आदि के जीवित रहने पर पौत्र आदि का अपत्य जो प्रपौत्र आदि होगा, उसकी गोत्रसंज्ञा न होकर युव-संज्ञा होती है।

८. **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** ४।१।९४—युवा अपत्य विवक्षित होने पर गोत्र प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है, किन्तु स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा नहीं होती है।

९. **यञिञोश्च** ४।१।१०१—गोत्रार्थ में यञ् और इञ् प्रत्यय होते हैं और यञन्त और इञन्त प्रत्ययों के तदन्त से फक् प्रत्यय होता है।

१०. **अत इञ्** ४।१।९५—अपत्यार्थ में अकारान्त शब्दों से इञ् प्रत्यय होता है। दशरथ + इञ् = दाशरथिः (दशरथस्यापत्यम्), दक्षस्य अपत्यम् = दाक्षिः (दक्ष + इञ्)।

११. **गर्गादिभ्यो यञ्** ४।१।१०५—गर्गादि से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है। यथा—गर्गस्य गोत्रापत्यम् = गार्ग्यः (गर्ग + यञ्), पुलस्तेः गोत्रापत्यं = पौलस्त्यः, अगस्तेः गोत्रापत्यम् = आगस्त्यः।

१२. **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७।१।२—प्रत्यय के आदिभूत फ, ढ, ख, छ, और घ को क्रमशः आयन्, एय्, ईन्. ईय् और इय् आदेश होते हैं। गर्गस्य पुत्रापत्यम् = गार्ग्यायणः (गार्ग्य + फक्)

१३. **बाह्वादिभ्यश्च** ४।१।९६ – बाह्वादि गण पठित शब्दों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है। यथा बाहविः।

१४ **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** ४।१।१०४—बिदादिगणपठित ऋषियों से गोत्र अर्थ में और ऋषिभिन्नों से अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। बिदस्य गोत्रम् = बैदः (बिद + अञ्), पुत्रस्य अपत्यम् = पौत्रः (पुत्र + अण्)

१५ **शिवादिभ्योऽण्** ४।१।११५—शिवादि गण पठित शब्दों से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। शिवस्य अपत्यम् = शैवः (शिव + अण्), गङ्गस्य अपत्यम् = गाङ्गः (गङ्ग + अण्)।

१६. **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** ४।१।११४ – ऋषि, अन्धक, वृष्णि और कुरु आदि गण पठित शब्दों से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। वसिष्ठस्य अपत्यम्—वासिष्ठः = वसिष्ठ + अण् (ऋषि), श्वफल्कस्य अपत्यम्—श्वाफल्कः (अन्धक), वसुदेवस्य अपत्यम्—वासुदेवः (वृष्णि), नकुलस्य अपत्यम्–नाकुलः (कुरु)।

१७. **मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः** ४।१।११५–संख्या, सम् और भद्र पूर्वक मातृ शब्द का उत् आदेश और अण् प्रत्यय होता है। षण्णां मातॄणामपत्यम् = षाण्मातुरः (षण्मातृ + अण्), सांमातुरः, भाद्रमातुरः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८ **स्त्रीभ्योढक्** ४।१।१२०—स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य अर्थ में ढक् होता है और ढक् के स्थान पर एय् हो जाता है। दत्तायाः अपत्यं पुमान्—दात्तेयः (दत्ता + ढक्); विनताया अपत्यं = वैनतेयः (विनता + ढक्), भगिनी + ढक् = भागिनेयाः, अत्रेरपत्यं पुमान् = आत्रेयः (अत्रि + ढक्)।

१९. **अश्वपत्यादिभ्यश्च** ४।१।८४—अश्वपति, शतपति, धनपति, गृहपति पशुपति, सभापति, कुलपति, धान्यपति, क्षेत्रपति, प्राणपति आदि शब्दों से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा—

अश्वपतेरपत्यम् = आश्वपतम् (अश्वपति + अण्), गाणपतम्, कौलपतम्, पाशुपतम्। शिवादिगण पठित शब्दों से भी अण् प्रत्यय होता है। यथा--शिवस्य अपत्यम् = शैवः (शिव + अण्); काकुत्स्थः, देह्यः, वैश्रवणः, गाङ्गः, यास्कः, भौमः, ऐलः, सापत्नः।

२०. **कन्यायाः कनीन च** ४।१।११६—कन्या शब्द को कनीन आदेश और अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। कन्यायाः अपत्यम् = कन्या (कनीन) + अण् = कानीनः (व्यासः कर्णश्च)।

२१. **राजश्वशुराद्यत्** ४।१।१३७ राजन् और श्वशुर शब्द से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा—राज्ञः अपत्यम् = राजन्यः (राजन् + यत्), श्वशुरस्य—अपत्यम्—श्वशुर्यः (श्वशुर + यत्)।

२२ **दुष्कुलाड्ढक्** ४।१।१४२—दुष्कुल शब्द से अपत्यार्थ में ढक् और ख प्रत्यय होते हैं। यथा—दुष्कुलस्यापत्यम् = दौष्कुलेयः, दौष्कुलीनः (दुष्कुल + ढक्, दुष्कुल + ख)।

२३. **ये चाऽभावकर्मणोः** ६।४।१३८—यकारादि तद्धित के परे रहने पर अन् प्रकृतिवद् होता है। पर भाव और कर्मार्थक प्रत्यय के परे रहने पर नहीं होता। यथा—राज्ञः अपत्यं, राजन्यः। यहाँ अपत्यार्थक 'राजश्वशुराद्यत्' सूत्रसे यत् प्रत्यय किया, और प्रकृतिभाव और 'टि' का लोप होने से 'राजन्यः' शब्द बनता है।

२४. **अन्** ६।४।१३७—अन् प्रत्यय से परे अन् प्रकृतिवद् होता है। यथा—राजनः श्वशुर्यः—यहाँ यत् प्रत्यय नहीं हुआ है।

२५. **क्षत्राद्घः** ४।१।१३८ क्षत्र शब्द से अपत्यर्थ में घ (इय्) प्रत्यय होता हैं। यथा—क्षत्रस्य अपत्यम् = क्षत्रियः (क्षत्र + घ)।

२६. **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** ४।१।१४६—रेवत्यादि से अपत्य अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७. **ठस्येकः** ७।३।५०—अङ्ग से परे ठ का इक् आदेश होता है। यथा—रेवत्याः अपत्यम् = रेवती + ठक् = रैवतिकः।

२८. **जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्** ४।१।१६८—देश वाचक जनपद शब्द के समान क्षत्रिय वाचक शब्द से अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। पञ्चलस्य अपत्यम्, पाञ्चालः (पञ्चाल + अञ्)।

२९. **क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्**—क्षत्रिय समान वाचक जनपद शब्द में अपत्यवत् प्रत्यय होता है।

३०. **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** ४।१।१६१—मनु शब्द से अपत्यार्थ में अञ्, यत् प्रत्यय होते हैं तथा षुक् का आगम होता है। यथा—मनोरपत्यम् = मनुष्यः (मनु + यत्), मानुषः (अञ्)।

३१. **कुरुनादिभ्यो ण्यः** ४।१।१७२—कुरु और नकार आदि में हो जिनके उन शब्दों से अपत्यार्थ में ण्य (य) प्रत्यय होता है। यथा—कुरोरपत्यम्, कुरूणां राजा वा = कौरव्यः (कुरु + ण्य), निषधस्य अपत्यं निषधस्य राजा वा = नैषध्यः (निषध + ण्य)।

३२. **पूरोरण् वक्तव्यः**—पूरु शब्द से अपत्य अर्थ में. अण् प्रत्यय होता है पूरोरपत्यम्—पूरु + अण् = पौरवः।

३३. **पाण्डोर्ड्यण्**—पाण्डु से अपत्य अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होता है। पाण्डोरपत्यम्—पाण्डु + ड्यण् = पाण्ड्यः।

३४. **ते तद्राजाः** ४।१।१७४—'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' इत्यादि सूत्रों से विहित अञादि प्रत्यय की तद्राज संज्ञा होती है।

३५. **तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्** २।४।६२—तद्राज प्रत्ययार्थकृत बहुत्व रहने पर बहुत्व अर्थ में तद्राज संज्ञक प्रत्यय का स्त्रीलिङ्ग से भिन्न में लुक् होता है। इक्ष्वाकवः।

३६. **कम्बोजाल्लुक्** ४।१।१७५—कम्बोज से परे तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है। कम्बोजः, कम्बोजौ।

३७. **कम्बोजादिभ्यः इति वक्तव्यम्**—कम्बोज आदि शब्दों से तद्राज संज्ञक जो प्रत्यय होता है, उसका लोप हो जाता है। इस वार्तिक द्वारा पूर्व सूत्र की पुष्टि होती है। यथा—चोलः, शकः, केरलः, यवनः इत्यादि। चोलस्य अपत्यं चोल-देशस्य वा राजा इस विग्रह में 'कुरुनादिभ्योण्यः' सूत्र से ण्य प्रत्यय किया पर 'कम्बोजाल्लुक्' इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय का लोप कर दिया और विभक्ति कार्य करने पर चोलः यह रूप सिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार शकस्य अपत्यम्, शकदेशस्य वा राजा शकः, केरलस्य अपत्यम् केरल-देशस्य राजा वा केरलः, यवनस्य अपत्यम यवनदेशस्य राजा वा यवनः।

३८. **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** ४।१।७८ – गोत्र में विहित अनार्ष, अण् और इञ्, तदन्त जो गुरूपोत्तम (प्रातिपदिक) को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश होता है। यथा—कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्येति कौमुदगन्धः। कुमुद्गन्धे—गोत्रापत्यम् स्त्रीः कौमुदगन्ध्या। इस विग्रह में अण् प्रत्यय किया, आदि वृद्धि की, 'यस्येतिच' सूत्र से इकार का लोप किया। अण् के स्थान पर 'ष्यङ्' प्रत्यय किया और चाप्' प्रत्यय करने पर 'कौमुदगन्ध्या' रूप बना।

रक्ताद्यर्थक-प्रकरणम्

१. **तेन रक्तं रागात्** ४।२।१—रागवाचक तृतीयान्त से अण् प्रत्यय होता है—'रक्त' अर्थ में।

२. **नक्षत्रेण युक्तः कालः** ४।२।३—नक्षत्र विशेष युक्त चन्द्रवाचक तृतीयान्त पुष्पादि शब्दों से युक्त अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। पर यहाँ यह स्मरणीय है कि युक्त अर्थ यदि कालवाचक न हो तो अण् प्रत्यय नहीं होता।

३. **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्** —नक्षत्र सम्बन्धी अर्थ होने पर तिष्य और पुष्य के यकार का लोप होता है—अण् प्रत्यय के परे होने पर। यथा—पुष्येण युक्तम् पौषम्। यहाँ पुष्य शब्द से 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' सूत्र से अण् प्रत्यय किया, पश्चात् 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से वृद्धि की और 'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राऽणि यलोप इति वाच्यम्' इस वार्तिक द्वारा यकार का लोप और विभक्ति कार्य करने पर 'पौषम्' रूप सिद्ध हुआ।

४. **लुबविशेषे** ४।२।४—'नक्षत्रेण युक्तः काल, सूत्र से विहित 'य' प्रत्यय का लोप होता है; यदि षष्टि दण्डात्मक काल का कोई अवान्तर विशेष गम्यमान न हो तो। यथा—अद्यः पुष्यः—यहाँ पुष्य शब्द से 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय किया गया, पर इस प्रत्यय का "लुबविशेषे" सूत्र से लोप हो गया। अतः वृद्धि आदि कार्य न होने से 'पुष्यः' यहरूप सिद्ध हुआ।

५. **दृष्टं साम** ४।२।७—दृष्ट अर्थ रहने पर तृतीयान्त से अणादि प्रत्यय होता है—जो दृष्ट है वह यदि साम रहे। यथा—वसिष्ठेन दृष्टं = वासिष्ठम् साम।

६. **वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ** ४।३।६—दृष्ट साम अर्थ रहने पर वामदेव शब्द से ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं। यथा—वामदेवेन दृष्ट साम = वामदेव्यम्।

७. **परिवृत्तो रथः** ४।२।१०—तृतीयान्त से परिवृत अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है, परिवृत यदि रथ हो तो। यथा—वस्त्रेण परिवृतो = वास्त्रो रथः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** ४।२।१४—उद्धृत अर्थ में पात्रवाची सप्तम्यन्त से यथा-विहित अणादि प्रत्यय होते हैं। यथा-शरावे उद्धृतः=शाराव ओदनः। शराव + अण्--"तद्धितेष्वचामादेः सूत्र से वृद्धि और विभक्ति कार्य करने पर 'शारावः रूप सिद्ध हुआ।

९. **संस्कृतं भक्षाः** ४।२।१६—संस्कृत अर्थ में सप्तम्यन्त से 'अण्' प्रत्यय होता है, यदि संस्कृत 'भक्ष' रह तो। यथा--भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः=भ्राष्ट्राः यवाः। भ्राष्ट्र +अण।

१०. **सास्य देवता** ४।२।२४—षष्ठ्यर्थ में देवतावाचक प्रथमान्त से अणादि प्रत्यय होते हैं। यथा—इन्द्रो देवताऽस्येति=ऐन्द्रं हविः। पशुपतिः देवताऽस्येति = पाशुपतम्। वृहस्पतिः देवताऽस्येति=वार्हस्पत्यम्। पशुपति+अण्; इन्द्र+अण्; वृहस्पति+अण्।

११. **शुक्राद्घन्** ४।२।२६—'अस्य' अर्थ में देवता वाचक शुक्र शब्द से 'घन्' प्रत्यय होता है। यथा---शुक्रो देवताऽस्येति=शुक्रियम्। शुक्र+घन्--इस स्थिति में "आयने-यीनियिय फढखछघां प्रत्ययादीनाम्" सूत्र से 'घ' के स्थान पर इय्' आदेश किया और 'भ' संज्ञा करने के उपरान्त अन्त्य अच् अकार का लोपकर संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'शुक्रियम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

१२. **सोमाट्ट्यण्** ४।२।३०-अस्य अर्थ में देवता वाचक सोम शब्द से 'ट्यण्' प्रत्यय होता है। यथा—सोमो देवताऽस्येति = सौम्यम्। सोम+ट्यण् "तद्धितेष्व-चामादेः" सूत्र से वृद्धि की और विभक्ति कार्य करने पर, 'सौम्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

१३. **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** ४।२।३१—अस्य अर्थ में देवता वाचक प्रथमान्त वायु ऋतु, पितु और उषस् शब्दों से यत् प्रत्यय होता है। यथा—वायु देवतास्येति = वायव्यम्। ऋतुः देवताऽस्येति = ऋतव्यम्। पितरो देवताऽस्येति पित्र्यम्।

१४. **रीङ् ऋतः** ७।४।२७—ऋदन्त अङ्ग को रीङ् आदेश होता है, कृद्भिन्न मकार और असार्वधातुक यकार के परे तथा 'च्वि' प्रत्यय के परे। यथा-पितरो देवताऽस्येति विग्रह में "वाय्वृतुपित्रुषसो यत्" सूत्र से यत् प्रत्यय किया, अनुवन्ध का लोप किया "रीङ ऋतः' सूत्र से ऋकार को रीङ् आदेश किया। 'यचि भम्' से भ संज्ञा की और 'यस्येतिच' सूत्र से अन्त्य अच् का लोप किया। पश्चात् विभक्ति कार्य और संयोग करने पर 'पित्र्यम्' यह रूप सिद्ध हुआ। 'उषस्यम्' प्रयोग में 'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्' से यत् प्रत्यय करने और विभक्ति आदि कार्य करने पर 'उषस्यम्' रूप सिद्ध होता है।

१५. **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** ४।२।३६--पितृव्य, मातुल, मातामह और पितामह शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा--पितुर्भ्राता=पितृव्यः। मातुर्भ्राता = मातुलः। मातुः पिता=मातामहः। पितुः पिता = पितामहः। ये सभी प्रयोग निपातन से सिद्ध होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६. **तस्य समूहः** ४।२।३७—समूह अर्थ में अगादि प्रत्यय होते हैं। यथा—काकानां समूहः काकम्। काक+अण् तद्धितेस्वचामादेः से वृद्धि कार्य। पश्चात् विभक्ति-कार्य और संयोग करने पर 'काकम्' यह रूप सिद्ध होता है।

१७. **भिक्षादिभ्योऽण्** ४।२।३८—भिक्षादि शब्दों से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा—भिक्षाणां समूहः = भैक्षम्। भिक्षा+अण्। 'तद्धितेस्वचामादेः' से वृद्धि 'भस्याऽढे तद्धिते' सूत्र से पुंवद्भाव किया। पश्चात् विभक्ति कार्य और संयोग करने पर 'भैक्षम्' यह रूप बना। इसी प्रकार गर्भिणीनां समूहः = गार्भिणम्।

१८. **इनण्यनपत्ये** ६।४।१६४—अनपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे इन् प्रकृतिवत् रहता है। यथा—युवतीनां समूहः = यौवनम्, यौवतम्। युवति शब्द से, भिक्षादिभ्योऽण् इस सूत्र से अण् प्रत्यय किया। तद्धितेष्वचामादेः सूत्र से वृद्धि की। 'भस्याऽढे तद्धिते' सूत्रसे पुंवद्भाव किया। पश्चात् 'इनण्यनपत्ये' सूत्र से अन् को प्रकृतिभाव किया जिससे टि संज्ञक अन्त्य अञ् का लोप न हुआ। विभक्ति कार्य और संयोग करने पर यौवनम् यह रूप बना। 'यु' धातु से शतृ प्रत्यय। 'उगितश्च' इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय करने पर 'युवती' इस शब्द से 'अनुदात्तादेरञ्' सूत्र से अञ् प्रत्यय। 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि स्वर की वृद्धि 'भस्याऽढे तद्धिते' सूत्र से पुंवद्भाव। ङीप् की निवृत्ति, विभक्ति कार्य और संयोग करने पर 'यौवतम्' रूप सिद्ध हुआ।

१९. **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** ४।२।४३—ग्राम, जन, और बन्धु शब्द से समूह अर्थ में 'तल्' प्रत्यय होता है।

२०. **तलन्तं स्त्रियाम्**—तलन्त शब्द स्त्रीलिङ्ग वाची होते हैं। यथा ग्रामाणां समूहः = ग्रामता। जनानां समूहः = जनता। बन्धूनां समूहः = बन्धुता। 'जन' शब्द से 'ग्रामजन बन्धुभ्यस्तल् सूत्र द्वारा 'तल्' प्रत्यय किया। 'तलन्तं स्त्रियाम्' इस वार्त्तिक द्वारा स्त्रिलिङ्ग विवक्षा की और 'टाप्' प्रत्यय किया। विभक्ति कार्य और संयोग करने पर 'जनता' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'ग्रामता' और 'बन्धुता' रूप भी सिद्ध होते हैं।

२१. **गजसहाभ्यां चेति वक्तव्यम्**—गज और सहाय शब्द से भी समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है। गजानां समूहः = गजता। सहायानां समूहः = सहायता।

अह्नः खः क्रतौ—क्रतु अर्थ में अहन् शब्द से 'ख' प्रत्यय होता है। अहीनः अह्नः समूहः = अहीनः यहाँ 'अह्नः खः क्रतौ' सूत्रसे 'ख' प्रत्यय किया। अहन्+ख। 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्रसे 'ख' के स्थान पर ईन् आदेश हुआ—अहन्+ईन्+अ इस अवस्था में 'टि' संज्ञा की। 'नस्तद्धिते:' सूत्र से 'टि' का लोप किया। संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'अहीनः' रूप सिद्ध हुआ।

२२. **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** ४।२।४७—समूह अर्थ में अचेतन—अप्राणिवाचक शब्द, हस्ति शब्द और धेनु शब्द से 'ठक्' प्रत्यय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३. **इसुसुक्तान्ताक्तः** ७।३।५१—इसन्त, उसन्त, उगन्त और तान्त से पर ठ को क आदेश होता है। सक्तूनां समूहः = साक्तुकम्। हस्तिनां समूहः = हास्तिकम्। धेनूनां समूहः = धैनुकम्। सक्तूनां समूहः इस विग्रह में 'सक्तु' शब्द से 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' सूत्र से ठक् प्रत्यय किया तथा ठक् के स्थान पर 'इसुसुक्तान्ताक्तः' सूत्र से 'ठ' के स्थान पर 'क' आदेश किया। 'किति च' से आदि वृद्धि की। टि संज्ञक का 'नस्तद्धिते' से लोप करने पर संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'साक्तुकम्' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार हस्तिनां समूहः इस विग्रह में हस्ति शब्द से 'अचित्त हस्ति धेनोष्ठक्' सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय और 'इसुसुक्तान्ताक्तः' सूत्र से 'ठ' के स्थान पर 'क' आदेश। किति च सूत्र से आदि वृद्धि। 'टि' लोप, विभक्ति कार्य करने पर 'हास्तिकम्' यह रूप सिद्ध हुआ। तथा हस्तिनीनां समूहः इस विग्रह में पूर्ववत् 'अचित्तहस्तिधेनोस्ठक्' इस सूत्र से ठक्। 'इसुसुक्तान्ताक्तः', सूत्र से ठ के स्थान पर क 'किति च' से आदि वृद्धि। 'भस्याऽढे तद्धिते' सूत्र से पुंवद्भाव करने पर हास्तिकम् रूप बना। इसी प्रकार धेनूनाम समूहः = धैनुकम् रूप भी बनता है।

२४. **तदधीते तद्वेद** ४।२।५९—द्वितीयान्त स अधीते और वेद अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं।

२५. **नय्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** ७।३।३—पदान्त यकार और वकार से पर अच् की वृद्धि नहीं होती किन्तु यकार से पूर्व ऐ और वकार पूर्व औ का आगम होता है। यथा—व्याकरणमधीते वेद इस विग्रह में 'तदधीते तद्वेद' सूत्र से व्याकरण शब्द से अण् प्रत्यय किया। 'यचि भम्' से भ संज्ञा करने पर औ। 'यस्येतिच' से अकार लोप करने पर व्याकरण + अ यह स्थिति हुई। 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्याम्' इत्यादि सूत्र से यकार से पूर्व ऐकार का आगम हुआ। तब विभक्ति-कार्य और संयोग करने पर वैयाकरणः यह रूप सिद्ध हुआ।

२६. **क्रमादिभ्यो वुन्** ४।२।६१—क्रमादि से अधीत और वेद अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है। यथा—क्रमं वेत्ति अधीते इति क्रमकः। क्रम शब्द से 'क्रमादिभ्यो वुन् सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय किया और 'युवोरनाकौ' सूत्र से 'वु' के स्थान पर 'अक्' आदेश किया और संज्ञक का लोप करने पर क्रमक इस स्थिति में विभक्ति-कार्य करने से क्रमकः यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार पदं वेत्ति अधीते इति पदकः। शिक्षां वेत्ति अधीते इति शिक्षकः। मीमांसां वेत्ति अधीते इति मीमांसकः आदि रूप भी सिद्ध होते हैं। शिक्षक और मीमांसक में 'भस्याऽढे तद्धिते' सूत्र द्वारा पुंवद्भाव होने पर उक्त रूप बनते हैं।

चातुरर्थिक-प्रकरणम्

१. **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** ४।२।६७ अस्ति उपाधिक प्रथमान्त से 'उस' प्रत्ययान्त नामक देश विशेष के होने पर 'अस्मिन्' अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। यथा—उदुम्बरा सन्ति अस्मिन् देशे = औदुम्बरो देशः। यहाँ उदुम्बर शब्द से 'तदस्मिन्न-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र्त्तीति देशे तन्नाम्नि' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय किया। 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि वृद्धि की। 'यचिभम्' से भ संज्ञा, 'यस्येति च' से अकार का लोप। विभक्ति-कार्य और संयोग करने पर औदुम्बरः यह रूप सिद्ध हुआ।

२. **तेन निर्वृत्तम्** ४।२।६८—प्रत्ययान्त नामक देश होने पर तृतीयान्त से निर्वृत्त अर्थ में यथा विहित अणादि प्रत्यय होते हैं। यथा—कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी। कुशाम्ब शब्द से तेन निर्वृत्तम्' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय किया। पश्चात् 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि वृद्धि की। पश्चात् भ संज्ञा और अन्त्य स्वर का लोप करने पर स्त्रीलिङ्ग होने से 'ङीप' प्रत्यय किया। तब विभक्ति-कार्य करने पर कौशाम्बी' यह रूप बना।

३. **तस्य निवासः** ४।२।६९—देश-विशेष-वाची होने पर षष्ठ्यन्त से निवास अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा शिवानां निवासो देशः = शैवः। शिव + अण वृद्धि विभक्ति-कार्य करने पर शैवः रूप बना।

४. **अदूरभवश्च** ४।२।७०-देश विशेष संज्ञक होने पर षष्ठ्यन्त से अदूरभव अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। यथा—विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्। विदिशा + अण्। वृद्धि, पुंवद्भाव एवं विभक्ति-कार्य करने पर वैदिशम् रूप बना है।

५. **जनपदे लुप** ४।२।८१—जनपद वाच्य रहने पर चातुर्थिक प्रत्यय का लोप होता है।

६. **लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने** १।२।५१—प्रत्यय के लोप होने पर, प्रकृति के समान हो लिङ्ग और वचन की व्यवस्था होती है। पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः। पञ्चाल शब्द से जनपद अर्थ में 'तस्य निवासः' सूत्र से अण् प्रत्यय किया। 'जनपदे लुप्, सूत्र से प्रत्यय का लोप किया। 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' इस सूत्र से प्रकृति में बहुवचन की विवक्षा होने से बहुवचन का 'जस्' प्रत्यय किया। विभक्ति-कार्य करने पर 'पञ्चालाः' यह रूप बना। इसी प्रकार कुरूणां निवासो जनपदः कुरवः। अङ्गानाम् निवासो जनपदः अङ्गाः। वङ्गानाम निवासो जनपदः वङ्गाः। कलिङ्गानां निवासो जनपदः कलिङ्गाः।

७. **वरणादिभ्यश्च** ४।२।८२—वरणादि से पर चातुर्थिक प्रत्यय का लोप होता है। यथा—वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः—इस विग्रह में 'अदूरभवश्च' सूत्र द्वारा अण् प्रत्यय किया। 'वरणादिभ्यश्च' इस सूत्र से प्रत्यय का लोप किया। संयोग और विभक्ति-कार्य करने पर 'वरणाः' यह रूप बना।

८. **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** ४।२।८७ कुमुदनड और वेतस शब्दों से 'ड्मतुप्' प्रत्यय होता है।

९. **झयः** ८।२।१०—झयन्त से परे मतुप के मकार को वकार आदेश होजाता है। यथा—कुमुद्वान्, नड्वान। कुमुद + 'ड्मतुप्'। अनुबन्ध का लोप करने पर कुमुद् + मत्। 'झयः' सूत्र से म का व = कुमुद्वत्। पश्चात् विभक्ति-कार्य और हलन्त के पूर्ववर्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को दीर्घ कर देने पर कुमुद्वान् बना। इसी प्रकार नड्वान् बनता है। कुमुद और नड के अकार का लोप डित्वात् टि संज्ञक होने के कारण हुआ है।

१०. **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** ८।२९–यवादिवर्जित मवर्णान्त, अवर्णान्त एवं मवर्णोपध और अवर्णोपध से पर मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है। यथा वेतस्वान्। वेतस् शब्द से 'कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्' सूत्र से 'ड्मतुप्' प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करने पर वेतस् + मत्। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' इस सूत्र से मकार के स्थान पर वकारादेश किया। डित्वात् 'टि' का लोप किया, तब 'वेतस् + वत्'। संयोग और विभक्ति-कार्य करने पर 'वेतस्वान्' रूप सिद्ध हुआ।

११. **नडशादाड्ड्वलच्** ४।२।८८ नड और शाद शब्द से 'ड्वलच्' प्रत्यय होता है। यथा–नड्वलः। 'नडाः सन्तीत्यस्मिन्' इस विग्रह में नड शब्द से 'नडशादाड्ड्वलच्' सूत्र से 'ड्वलच्' प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करने परनड + वल इस स्थिति में डित्वात् 'टि' संज्ञक होने से 'अचोऽन्त्यादि टि' सूत्र से अन्त्य अण् लोप कर देने पर विभक्ति-कार्य और संयोग करने से 'नड्वलः' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार शादा सन्त्यस्मिन् 'शाद्वलः रूप सिद्ध होता है।

१२. **शिखाया वलच्** ४।२८९—शिखा शब्द से चातुर्थिक में वलच् प्रत्यय होता है। यथा–शिखा अस्त्यस्मिन् इति शिखावलः। इस विग्रह में शिखा शब्द से वलच् प्रत्यय किया। संयोग और विभक्ति-कार्य करने पर शिखावलः यह रूप सिद्ध हुआ।

देवतार्थक

१. **सास्य देवता** ४।२।२४--वह देवता इस अर्थ में प्रथमान्त अण् प्रत्यय होता है। यथा—इन्द्रो देवता अस्येति=ऐन्द्रः (इन्द्र+अञ्), पशुपतिः देवता अस्य पाशुपतम् (पशुपत+अण्), बृहस्पतिः देवता अस्य = बार्हस्पत्यम् (बृहस्पति+अण्) शिवः अस्य देवता = शैवः (शिव+अण्), विष्णुः अस्य देवता = वैष्णवः विष्णु+अण्), शक्तिः अस्य देवता = शाक्तः।

२. **शुक्राद्घन्** ४।२।२६—देवता अर्थ में शुक्र शब्द से घन् प्रत्यय होता है। यथा--शुक्रो देवताऽस्य—शुक्रियं हविः सुक्तं वा। शुक्र+घन् (इय)।

३. **शतरुद्राद्घश्च** (वा०)—शतरुद्र से देवता अर्थ में घन् और छ दोनों प्रत्यय होते हैं। यथा--शतं रुद्रा देवता अस्य—शतरुद्रियम्, शतरुद्रीयम्।

४. **सोमाट् ट्यण्** ४।२।३०--सोम शब्द से देवता अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है। यथा-- सोमो देवता यस्य = सौम्यम् (सोम + ट्यण्)।

५. **महेन्द्राद् घाणौ च** ४.२।१९--महेन्द्र शब्द से देवता अर्थ में अण्, और छ प्रत्यय होते हैं। यथा—महेन्द्रो देवता अस्य = माहेन्द्रम्, महेन्द्रियम्, माहेन्द्रीयम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१—वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्द से देवता अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा—वायुर्देवताऽस्य = वायव्यम्, ऋतव्यम्, पित्र्यम्, उषस्यम् (वायु + यत्)।

७. द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ४।२।३२—द्यावापृथिवी, शुनासीर आदि शब्दों से देवता अर्थ में छ और यत् प्रत्यय होते हैं। यथा—द्यावापृथिव्यो देवते अस्य = द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम् (द्यावापृथिवी + छ, द्यावापृथिवी + यत्), शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्, मरुत्वतीयम्, अग्निषोमीयम्।

८. अग्नेर्ढक ४।२।३३—देवता अर्थ में अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय होता है। यथा—अग्निर्देवताऽस्य = आग्नेयम् (अग्नि + ढक्)।

९. महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ४।२।३५—देवता अर्थ में महाराज और प्रोष्ठपद शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है। यथा—महाराजो देवताऽस्य = माहाराजिकम्, प्रौष्ठपादिकम् (महाराज + ठञ्)।

१०. पितृ और मातृ शब्दों से यदि उनके भ्राता अभिधेय हों, तो क्रम से व्यत् और लच् प्रत्यय होते हैं और यदि उसके पिता अभिधेय हों, तो महत् प्रत्यय होता है। यथा—पितुर्भ्राता = पितृव्यः, मातुर्भ्राता = मातुलः (पितृ + व्यत्), पितुः पिता = पितामहः, मातुः पिता = मातामहः।

सामूहिक समूहार्थक

१. तस्य समूहः ४।२।३७—किसी वस्तु का समूह अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—

बकानां समूहः = बाकम् (बक + अण्) काकानां समूहः = काकम् (काक + अण्), वृकानां समूहः = वार्कम् (वृक + अण्), मायूरम्, कापोतम्, गर्भिणीनां समूहः = गार्भिणम्, युवतीनां समूहः = यौवनं, यौवतं वा।

२. गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् ४।२।३९ गोत्र, उक्ष, उष्ट्र, उरभ्र, राज, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्द से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है। यथा—

उक्ष्णां समूहः = औक्षकम्, औष्ट्रम्, औरभ्रकम्, राजकम्, राजन्यकम्, राजपुत्रकम्, मानुष्यकम्, आजकम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. केदाराद्यञ्च ४।२।४०—केदार शब्द से समूह अर्थ में यञ्, वुञ्, ठञ् प्रत्यय होते हैं। यथा—केदाराणां समूहः=कैदार्यम्, कैदारकम्, कैदारिकम् (केदार+यञ्, केदार+वुञ्, केदार+ठञ्)।

४. गणिकाया यञिति वक्तव्यम् (वा०)—गणिका शब्द से यञ् प्रत्यय होता है। यथा—गणिकानां समूहः=गाणिक्यम्।

५. ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत् ४।२।४२—ब्राह्मण, माणव और वाडव शब्द से समूह अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा—ब्राह्मणानां समूहः=ब्राह्मण्यम्, माणव्यम्, वाडव्यम्।

६. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३—ग्राम, जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दों से समूह अर्थ में तल् (ता) प्रत्यय लगता है। यथा—

ग्रामाणां समूहः=ग्रामता, जनानां समूहः=जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

अध्ययनार्थक

१. तदधीते तद्वेद ४।२।५९—द्वितीयान्त शब्द से पढ़ने और जानने के अर्थ में अध्ययनार्थक प्रत्यय होते हैं। तदधीती और तत् वेद अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

यथा—व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः, नैरुक्तः, छान्दसः।

२. क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४।२।६०—यज्ञविशेष वाचक और उक्थादि-गण-पठित शब्दों से अध्ययनार्थक ठक् प्रत्यय होता है। यथा—

यज्ञवाचक—अग्निष्टोममधीते वेद वा=आग्निष्टोमिकः, वाजपेयिकः।

उक्थादि—उक्थान्यधीते वेद वा=औक्थिकः, नैयायिकः, लौकायतिकः, नैमित्तिकः, याज्ञिकः, धार्मिकः।

३. विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेतिवक्तव्यम् (वा०)—विद्या, लक्षण और कल्प ये शब्द जिनके अन्त में हों, उनसे तथा इतिहास और पुराण शब्दों से भी उक्तार्थ में ठक् प्रत्यय होता है। यथा—

नक्षत्रविद्यामधीते वेद वा=नाक्षत्रविधिकः, आश्वलक्षणिकः, मातृकल्पिकः, ऐतिहासिकः, पौराणिकः, गौलक्षणिकः, पाराशरकाल्पिकः, आङ्गविद्यः, क्षात्रविद्यः, धार्मविद्यः, त्रिविधा विद्या=त्रिविद्या तामधीते वेद वा=त्रैविद्यः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. वसन्तादिभ्यष्ठक् ४।२।६३—वसन्तादिगण पठित शब्दों से भी उक्तार्थ में ठक् प्रत्यय होता है। यथा—वसन्तविद्यामधीते वेद वा = वासन्तिकः, ग्रैष्मिकः, वार्षिकः, शारदिकः, हैमन्तिकः, शैशिरिकः, प्राथमिकः, गौणिकः, आथर्वणिकः।

५. क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१—क्रमादि गण पठित शब्दों से उक्तार्थ में वुन् प्रत्यय होता है। यथा—

क्रममधीते वेद वा—क्रमकः, पदकः, शिक्षकः, मीमांसकः, सायकः।

शैषिक

१. शेषे ४।२।९२—जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं होता, वे तद्धित प्रत्यय शैषिक में परिगणित किये गये हैं। शैषिक अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—

चक्षुषा गृह्यते रूपं = चाक्षुषम् (चक्षु + अण्), श्रवणेन श्रूयते शब्दः = श्रावणः (श्रवण + अण्), चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) = चातुरम्, चतुर्दश्यां दृश्यते (रथः) = चातुर्दशम्।

२. ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४—ग्राम शब्द के अनन्तर शैषिक य और खञ् (ईन) प्रत्यय होते हैं। यथा—ग्राम्यः, ग्रामीणः।

३. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१—द्यु, प्राक्, अपाच्, उदच्, प्रतीच्, शब्दों के अजन्तर यत् प्रत्यय होता है। यथा—

(दिव + यत) = दिव्यम्, प्राच्यम्,, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्।

४. अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४—अमेहक्वतसित्रेभ्य एव (वा०)—अमा, इह, क्व तथा नि के अनन्तर और तसि प्रत्ययान्त तथा त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) प्रत्यय होता है। यथा—

अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यहः, नित्यः, ततस्त्यः, यतस्त्यः, कुत्रत्यः, तत्रत्यः, अत्रत्यः।

५. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७३ त्यदादीनि च १।१।७४। वृद्धाच्छः ४।२।११४ जिन शब्दों के स्वरों में पहला स्वर वृद्धिवाला (आ, ऐ) हो, उन शब्दों को तथा त्यद्, आदि त्यद्, तद् यद्, एतद्, इदम्, अदस् एक, द्वि, भवत्, युष्मद्, किम् शब्दों की वृद्धि संज्ञा है। इनसे शैषिक छ (ईय) प्रत्यय होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शाला + छ = शालीयः, माला = छ = मालीयः, तद् + छ = तदीयः, यदीयः, युष्मदीयः, अस्मदीयः, भवदीयः आदि ।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी अर्थ में छ के अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से होते हैं । यथा—

युष्माक + अण् = यौष्माकः, युष्माक + खञ् = यौष्माकीनः, तावकः, तावकीनः, आस्माकः, आस्माकीनः ।

६. कालाट्ठञ् ४।३।११—कालवाची शब्दों के अनन्तर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है । यथा—

मास + ठञ = मासिकः, सांवत्सरिकः, सायंप्रातिकः, पौनः पुनिकः ।

७. सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ४।३।१६—सन्धिवेला, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् ऋतुवाची शब्द और नक्षत्रवाची शब्दों के अण् प्रत्यय होता है ।

यथा—सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम्, शारदम्, हैमन्तम्, पौषम् ।

८. सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३—

सायं, चिरं, प्राह्णे और प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययों के अनन्तर ट्यु-ट्युल् (अन) प्रत्यय होते हैं और शब्द तथा प्रत्यय के बीच में त का आगम हो, जाता है । तथा—

सायम् + ट्युल (अन) = सायन्तनम्, चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम् ।

९. राष्ट्रावारपाराद्घखौ ४।२।९३—राष्ट्र और अवारपार शब्द से क्रम से घ और ख प्रत्यय होते हैं । यथा—राष्ट्रियः (राष्ट्र + घ इय), अवारपारीणः ।

१०. भवत् सर्वनाम से ठक् और छष् प्रत्यय होते हैं । यथा—भवतः भवः = भावत्कः, भवदीयः ।

११, आदि, मध्य, अवस् और अधम शब्दों में म प्रत्यय होता है । आदौ भवः = आदिमः, मध्यमः, अधमः ।

१२. नगर शब्द से निन्दा और प्रवीणता में शैषिक वुञ् होता है । यथा—नगरे भवः नागरकश्चौरः, नागरकः शिल्पी ।

१३. पर्वत शब्द से मनुष्य अभिधेय हो, तो शैषिक छ प्रत्यय होता है । यथा—पर्वते भवः = पर्वतीयः पुरुषः, पर्वतीयो राजा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४. द्वीप शब्द से यदि वह समुद्र के समीप हो, तो शैषिक यत् होता है। यथा—द्वीपे भवं=द्वैप्यम्।

१५. अग्र, पश्चात् और अन्त शब्दों से इम् प्रत्यय होता है। यथा—अग्रे भवम्, अग्रिमम्, पश्चिमम्, अन्तिमम्।

विकारार्थक और सम्बन्धार्थक

१. तस्येदम् ४।३।१२०—यह इसका है, इस अर्थ को बतलाने के लिए अण् प्रत्यय होता है। यथा—उपगोरिदम्=औपगवम्, देवस्य अयम्=दैवः, ग्रैष्मम्, नैशम्।

२. हलसीराट्ठक् ४।३।१२४—सम्बन्ध अर्थ दिखलाने के लिए हल और सीर शब्द में ठक् (इक्) प्रत्यय होता है। यथा—हालिकम्, सैरिकम्।

३. तस्य विकारः ४।१३४—जिस वस्तु से बनी हुई विकारस्वरूप कोई दूसरी वस्तु दिखलायी जाय, तो उस विकारार्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा—

ओषधेरवयवो विकारो वा=औषधम्, मृत्तिकायाः विकारः= मार्त्तिकः, अश्मनो विकारः आश्मः, भस्मनो विकारः=भास्मनः, [illegible]ः, गौधूमः, मयूरस्य विकारः अवयवो वा=मायूरः, मर्कटस्य विकारोऽवयवो वा=मार्कटः, पिप्पलस्य विकारः अवयवो वा=पैप्पलः।

४. ओरञ् ४।३।१३९—उ ऊ में अन्त होनेवाले शब्दों के अन्तर अवयव अर्थ बतलाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय होता है। यथा—देवदारोः विकारः= दैवदारवम्, भाद्रदारवम्।

मतुबर्थक

हिन्दी में जो अर्थ वान् या वाला आदि प्रत्ययों के द्वारा सूचित किया जाता है, संस्कृत में वह अर्थ मतुप् प्रत्यय के द्वारा प्रकट किया जाता है।

१. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४—किसी वस्तु का होना किसी दूसरी वस्तु में सूचित करने के लिए मतुप् प्रत्यय लगता है। यथा—गावः अस्य सन्तीति=गोमान् (गो+मतुप्)।

२. भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशयने। सम्बन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः (का०)—जब किसी वस्तु का बाहुल्य, निन्दा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसा, नित्ययोग, अधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो, तो विशेषकर मत्वर्थीय प्रत्यय लगते हैं। यथा—

धनवान्, निन्दा—वाचालः, प्रशंसा—गुणवान्, नित्ययोगः—लोमशः। क्षीरीवृक्षः, उदरिणी कन्या (वड़े पेटवाली लड़की), दण्डी (मत्वर्थीय इति)।

३. गुणवाचक शब्दों में मतुप् प्रत्यय जुड़ता है। यथा गुणवान्, रूपवान्, रसवान् आदि।

४. अत इनिठनौ ५।२।११५—अकारान्त शब्दों के अनन्तर इनि (इन्) और ठन् (इक्) प्रत्यय मतुवर्थ में लगते हैं। यथा – दण्डी (दण्ड + इति) = दण्डिकः (दण्ड + ठन्)।

५. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्यः इतच् ५।२।३६—यह उत्पन्न हो गया है, जिसमें इस अर्थ को वतलाने के लिए तारकादि—तारका, पुष्प, मजरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कण्टक, मुकुल, किसलय; पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा आदि शब्दों से इतच् प्रत्यय होता है। यथा—

तारकाः संजाताः अस्य = तारकितं नभः, तारका + इतच् = तारकितं, पिपासितं, पुष्पितः, कुसुमितः।

६. दन्त शब्द से उन्नत अर्थ वतलाने में मत्वर्थीय उरच् प्रत्यय होता है। यथा – दन्ता उन्नता अस्य सन्ति = दन्तुरः।

७. मत्वर्थीय इन्, ठन्, इलच्, विन्, युस् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—तुन्दमस्यास्तीति = तुन्दी (तुन्द + इन्); तुन्द + ठन् = तुन्दिकः, तुन्द + इलच् = तुन्दिलः, उदरी, उदरिकः, उदरिलः। यशोऽस्यास्तीति – यशस्वी (यशस् + विन्), पयस्वी, तपस्वी, मेधावी, मयावी,। ऊर्णा अस्य विद्यन्ते = ऊर्णायुर्विः (ऊर्णा + युस्)।

स्वार्थिक

१. अतिशायने तमविष्ठनौ ५।३।५५—अतिशय-विशिष्ट अर्थ की विवक्षा में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं। यथा—लघुतमः, लघिष्ठः, गुरुतमः, गरिष्ठः।

२. तिङश्च ५।३।५६—तिङन्त से भी अतिशय वोध कराने में तमप् प्रत्यय होता है। परन्तु, तिङन्त में तम् के आगे आम् प्रयुक्त हो जाता है। यथा—पचतितमाम्। इसी प्रकार किम् और अव्यय से भी तमप् होने पर आम् आगे प्रयुक्त होता है। किंतमाम्, उच्चैस्तमाम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७—दो में से एक की अतिशय व्यवस्था में तरप् और इयसुन् प्रत्यय होते हैं। यथा—अयमनयोरतिशयेन लघुः लघुतरः वा लघीयान्।

४. सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ५।४।१७—क्रिया की गणना में संख्या शब्द से स्वार्थ में कृत्व, सुच् प्रत्यय होते हैं। यथा—पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते।

५. प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९—प्रकार कहने के अर्थ में शब्दों से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होता है। यथा—एवम्प्रकारः, एवञ्जातीयः, मृदुप्रकारः, मृदुजातीयः, प्रमाणजातीयः, प्रमेयजातीयः।

६. प्रशंसायां रूपप् ५।३।६६—प्रशंसा अर्थ में स्वार्थिक रूपप् प्रत्यय होता है। यथा—प्रशस्तो वैयाकरणो=वैयाकरणरूपः, याज्ञिकरूपः, पाचकरूपः, प्राज्ञरूपः।

७. सङ्ख्याया विधार्थे ५।३।४२—प्रकार अर्थ में संख्यावाची शब्दों से स्वार्थिक धा प्रत्यय होता। यथा—एकधा भुङ्क्ते, द्विधा गच्छति, चतुर्धा, पञ्चधा, सप्तधा, नवधा आदि।

८. प्रकारवचने थाल् ५।३।२३—तद् आदि सर्वनाम शब्दों से प्रकार अर्थ में थाल् प्रत्यय होता है। यथा—तेन प्रकारेण=तथा, सर्वैः प्रकारैः=सर्वथा, अन्येन प्रकारेण=अन्यथा, येन प्रकारेण=यथा, बहुधा।

९. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ५।३।१५—सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, इन सर्वनाम शब्दों से दा प्रत्यय होता है। यथा—एकस्मिन् काले=एकदा, अन्यस्मिन काले अन्यदा, यस्मिन् काले=यदा, तस्मिन् काले=तदा, कस्मिन् काले =कदा, सर्वस्मिन् काले=सदा। सर्व के स्थान पर स और किम् के स्थान पर क आदेश होता है।

१०. इदमस्थमुः ५।३।२४—प्रकार अर्थ में इदम् शब्द से स्वार्थिक थमु प्रत्यय होता है। यथा—अनेन प्रकारेण=इत्थम् (इदम्+थम)।

११. किमश्च ५।३।२५—प्रकार अर्थ में किम् शब्द से स्वार्थिक थम् प्रत्यय होता है। यथा—केन प्रकारेण=कथम्।

अनेकार्थक

७४. प्रथमान्त आदि विभक्तियों से षष्ठी, सप्तमी या अन्य विभक्तियों के अर्थ में जो प्रत्यय होते हैं, वे अनेकार्थक कहलाते हैं। यथा—प्रथमान्त से षष्ठी अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में—ठक्—सुवर्णं पण्यमस्य = सौवर्णिकः, लावणिकः, मृदङ्ग शिल्पमस्य = मार्दङ्गिकः। छ—अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य = अनुप्रवचनीयम्, उत्थापनीयम्, प्रवेशनीयम्। वत् = यत्परिमाणमस्य = यावान्, तावान्, किं परिमाणमस्य = कियान्, इयं परिमाणमस्य = इयान्।

द्वितीयान्तात्

ठक्—समाजं रक्षति = सामाजिकः, शब्दं करोति = शाब्दिकः, धर्मम् चरति = धार्मिकः, समुदायात् समवैति = सामुदायिकः।

ण्य—परिषदं समवैति = पारिषदः, सेनां समवैति = सैन्यः, सैनिकः।

यत्—धुरं वहति = धुर्यः, धौरियः।

अण्—शकटं वहति = शाकटः।

तृतीयान्तात्

ठक्—अक्षैर्दीव्यति = आक्षिकः, कुद्दालेन खनति = कौद्दालिकः, वेतनेन जीवति = वैतनिकः, दण्डेन चरति = दाण्डिकः।

ठन्—नावा तरति = नाविकः।

यत्—नावा तार्यम् = नाव्यम्, वयसा तुल्यम् = वयस्यम्, मूलेन समं = मूल्यम्, तुलया सम्मितं = तुल्यम्।

चतुर्थ्यन्तात्

ख—आत्मने हितं = आत्मनीनम्, विश्वजनीनम्।

ख—ठञ्—सर्वजनेभ्यो हितं = सार्वजनीनम्, सार्वजनिकम्।

छ—वत्सेभ्यः हितं दुग्धम् = वत्सीयम्, सर्वेभ्यो हितं = सर्वीयम्।

यत्—गोभ्यः हितं = गव्यम्, दन्तेभ्यः हिता (ओषधिः) = दन्त्या।

सप्तम्यन्तात्

ठक्—द्वारे तिष्ठतीति = दौवारिकः, निकटे वसति = नैकटिकः।

ठञ्—लोके विदितः = लौकिकः, सार्वलौकिकः।

यत्—समान तीर्थे वसति = सतीर्थ्यः, समानोदरे वसति = सोदर्यः।

खञ्—प्रतिजने साधुः = प्रातिजनीनः, सर्वजनेसु साधुः = सार्वजनीनः।

ण—ण्य—परषदि साधुः = पारिषदः, पारिषद्यः।

ढञ्—पथि साधुः = पाथेयम्, आतिथेयम्, वासतेयम्।

य—सभायां साधुः = सभ्यः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ तथा कर्मार्थ

७५. तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९—किसी शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए उस शब्द में त्व अथवा तल् (ता) प्रत्यय जोड़ते हैं। त्व में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिंग और तल् में अन्त होनेवाले स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—

गो+त्व=गोत्वम्, गो+तल्=गोता, शिशु+तल्=शिशुता।

७६. पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा ५।१।१२२—पृथु, मृदु, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, पाक, दीर्घ, क्षुद्र आदि शब्दों से भाववाचक में विकल्प से इमनिच् प्रत्यय होता है। यथा--

पृथु + इमनिच्=प्रथिमन्, पृथुत्वम्, पृथुता; म्रदिमन्, महिमन्, पटियन् तनिमन्।

७७. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५।१।१२३—वर्णवाची शब्द शुक्ल, नील आदि तथा दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, पण्डित, मधुर, मूर्ख आदि शब्दों से भाव अर्थ में इमनिच् अथवा ष्यञ् प्रत्यय लगते हैं। यथा—

शुक्लस्य भावः=शुक्लिमा, शौकल्यम्, शुक्लत्वम्, शुक्लता, माधुर्यम्, मधुरिमा।

७८. गुणवाची तथा ब्राह्मण आदि शब्दों से ष्यञ् (य) प्रत्यय लगता है और इकारान्त, उकारान्त तथा ऋकारान्त शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है। यथा-- ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा=ब्राह्मण्यम्। शुचेर्भावः कर्म वा=शौचम्, मौनम् आदि।

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमोऽध्यायः

क्रिया-विचार

संस्कृत में क्रिया-शब्दों के मूल को धातु कहते हैं धातु शब्द का अर्थ है शब्द-योनि। धातुओं में विविध प्रत्यय जोड़ने पर क्रिया के रूप बनते हैं। सुविधा के लिए वैयाकरणों ने धातुओं को दस वर्गों में विभक्त किया है, जिन्हें गण कहते हैं। यथा—

१. भ्वादि गण—भू धातु के समान चलनेवाले धातुओं का गण—समूह
२. अदादिगण—अद् धातु के समान रूपवाले धातुओं का गण—समूह
३. जुहोत्यादि—हु धातु के समान रूपवाले धातुओं का गण—समूह
४. दिवादि—दिव् धातु के समान रूपवाले धातुओं का गण—समूह
५. स्वादि—सु धातु के समान रूपवाले धातुओं का गण—समूह
६. तुदादि—तुद् की धातु तरह चलने वाले धातुओं का गण—समूह
७. रुधादि—रुध् धातु के समान रूपवाले धातुओं का गण—समूह
८. तनादि—तन् धातु के समान रूपवाले धातुओं का गण—समूह
९. क्र्यादि—क्री धातु की तरह चलने वाले धातुओं का गण—समूह
१०. चुरादि गण चुर् धातु की तरह चलनेवाले धातुओं का गण—समूह

प्रयोग-काल में धातु के उत्तर तिङ् विभक्ति जोड़ी जाती है, अतः इन्हें तिङन्त भी कहते हैं। धातु रूप भी परस्मैपद और आत्मनेपद इन दो पदों में विभक्त हैं। कुछ धातु उभयपदी भी होते हैं। क्रिया के रूप तीन वाच्य और दस लकारों में होते हैं। यथा—

(१) लट्—वर्तमान काल के अर्थ में (Present tense)
(२) लोट्—आज्ञा अर्थ में (Imperative mood)
(३) विधि लिङ्—विधि अर्थ में (Potential mood)
(४) लङ्—अनद्यतन भूत (Imperfect tense)
(५) लिट्—परोक्ष भूत (Perfect tense)
(६) लुङ्—सामान्य भूत (Aorist)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) लुट्—अनद्यतन भविष्यत् (First future)
(८) लृट्—सामान्य भविष्यत् (Simple future)
(९) आशीर्लिङ्—आशीर्वाद (Benedictive)
(१०) लृङ्—क्रियातिपत्ति (Conditional)

विभक्ति चिह्न

लट् (परस्मैपद)			लट् (आत्मनेपद)		
ति	तस्	अन्ति	ते	इते	अन्ते
सि	थस्	थ	से	इथे	ध्वे
मि	वस्	मस्	ए	वहे	महे

लोट् (परस्मैपद)			लोट् (आत्मनेपद)		
तु	ताम्	अन्तु	ताम्	इताम्	अन्ताम्
हि, तात्	तम्	त	स्व	इथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

विधिलिङ् (परस्मैपद)			विधिलिङ् (आत्मनेपद)		
ईत	ईताम्	ईयुः	इत	ईयाताम्	ईरन्
ईः	ईतम्	ईत	ईयाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईयम्	ईव	ईम	ईय	ईवहि	ईमहि

दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सात आठवें और नवें गणों के धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में निम्न प्रत्यय :—

ते	आते	अन्ते
से	आथे	थे
ए	वहे	महे

दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गणों के धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में मध्यमपुरुष एकवचन 'हि' विभक्ति जोड़ी गयी है। शेष सब प्रत्यय ज्यों-के-त्यों हैं। आत्मनेपद में निम्न प्रत्यय होंगे।

ताम्	अताम्	अताम्
स्व	अथाम्	ध्वम्
ऐ	आवहै	आमहै

आत्मनेपद

दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवें और नवें गण के उपरान्त आत्मनेपद प्रत्यय :—

यात्	याताम्	युस्
यास्	यातम्	यात
याम्	याव	याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातुरूप

(भ्वादिगण) परस्मैपदी भू—होना

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः

आज्ञा—लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधिलिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

अनद्यतनभूत—लङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

सामान्यभूत—लुङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

परोक्षभूत—लिट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म० पु०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म० पु०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

लुट्

प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितारः
म० पु०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

नम्—झुकना या नमस्कार करना

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	नमति	नमतः	नमन्ति
म० पु०	नमसि	नमथः	नमथ
उ० पु०	नमामि	नमावः	नमामः

लृट्

प्र० पु०	नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति
म० पु०	नंस्यसि	नंस्यथः	नंस्यथ
उ० पु०	नंस्यामि	नंस्यावः	नंस्यामः

लोट्

प्र० पु०	नमतु	नमताम्	नमन्तु
म० पु०	नम	नमतम्	नमत
उ० पु०	नमानि	नमाव	नमाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
म० पु०	अनमः	अनमतम्	अनमत
उ० पु०	अनमम्	अनमाव	अनमाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
म० पु०	नमेः	नमेतम्	नमेत
उ० पु०	नमेयम्	नमेव	नमेम

लुङ्

प्र० पु०	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनसिषुः
म० पु०	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
उ० पु०	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

लिट्

प्र० पु०	ननाम	नेमतुः	नेमुः
म० पु०	नेमिथ	नेमथुः	नेम
उ० पु०	ननाम, ननम	नेमिव	नेमिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः
म० पु०	नम्याः	नम्यास्तम्	नम्यास्त
उ० पु०	नम्यासम्	नम्यास्व	नम्यास्म

लुट्

प्र० पु०	नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः
म० पु०	नन्तासि	नन्तास्थः	नन्तास्थ
उ० पु०	नन्तास्मि	नन्तास्वः	नन्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अनंस्यत्	अनंस्यताम्	अनंस्यन्
म० पु०	अनंस्यः	अनंस्यतम्	अनंस्यत
उ० पु०	अनंस्यम्	अनंस्याव	अनंस्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी हस-धातु [हँसना]

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	हसति	हसतः	हसन्ति
म० पु०	हससि	हसथः	हसथ
उ० पु०	हसामि	हसावः	हसामः

लृट्

प्र० पु०	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
म० पु०	हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ
उ० पु०	हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	हसतु, हसतात्	हसताम्	हसन्तु
म० पु०	हस, हसतात्	हसतम्	हसत
उ० पु०	हसानि	हसाव	हसाम

लङ्

प्र० पु०	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
म० पु०	अहसः	अहसतम्	अहसत
उ० पु०	अहसम्	अहसाव	अहसाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
म० पु०	हसेः	हसेतम्	हसेत
उ० पु०	हसेयम्	हसेव	हसेम

लुङ्

प्र० पु०	अहसीत्	अहसिष्टाम्	अहसिषुः
म० पु०	अहसीः	अहसिष्टम्	अहसिष्ट
उ० पु०	अहसिषम्	अहसिष्व	अहसिष्म

लिट्

प्र० पु०	जहास	जहसतुः	जहसुः
म० पु०	जहसिथ	जहसथुः	जहस
उ० पु०	जहास, जहंस	जहसिव	जहसिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	हस्यात्	हस्यास्ताम्	हस्यासुः
म० पु०	हस्याः	हस्यास्तम्	हस्यास्त
उ० पु०	हस्यासम्	हस्यास्व	हस्यास्म

लुट्

प्र० पु०	हसिता	हसितारौ	हसितारः
म० पु०	हसितासि	हसितास्थः	हसितास्थ
उ० पु०	हसितास्मि	हसितास्वः	हसितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्
म० पु०	अहसिष्यः	अहसिष्यतम्	अहसिष्यत
उ० पु०	अहसिष्वम्	अहसिष्याव	अहसिष्याम

परस्मैपदी दृश्—देखना

वर्त्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लोट्

प्र० पु०	पश्यतु, पश्यतात्	पश्यताम्	पश्यन्तु
म० पु०	पश्य, ,,	पश्यतम्	पश्यत
उ० पु०	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

विधि लिङ्

प्र० पु०	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
म० पु०	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उ० पु०	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अपश्यत	अपश्यताम्	अपश्यन्
म० पु०	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उ० पु०	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भविष्यत् काल—लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
म० पु०	ददर्शिथ-दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

लुट्

प्र० पु०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
म० पु०	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
उ० पु०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
म० पु०	दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
उ० पु०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
म० पु०	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
उ० पु०	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम

लृङ्

प्र० पु०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म० पु०	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ० पु०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

परस्मैपदी गम्-धातु (जाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म० पु०	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ० पु०	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
म० पु०	गच्छ	गच्छताम्	गच्छत
उ० पु०	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गच्छेत	गच्छेताम्	गच्छेयुः
म० पु०	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उ० पु०	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लङ्

प्र० पु०	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
म० पु०	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उ० पु०	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

लिट

प्र० पु०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
म० पु०	जगमिथ, जगंथ	जग्मथुः	जग्म
उ० पु०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

लुङ्

प्र० पु०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म० पु०	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ० पु०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

लुट्

प्र० पु०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
म० पु०	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
उ० पु०	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म० पु०	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उ० पु०	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः
म० पु०	गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उ० पु०	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

लृङ्

प्र० पु०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
म० पु०	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उ० पु०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

भ्वादिगण परस्मैपदी

पठ—पढ़ना

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः

लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
म० पु०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

लुट्

प्र० पु०	पठिता	पठितारौ	पठितारः
म० पु०	पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः

लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	पठतु, पठतात्	पठताम्	पठन्तु
म० पु०	पठ, पठतात्	पठतम्	पठत
उ० पु०	पठानि	पठाव	पठाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
म० पु०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
उ० पु०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
म० पु०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

लृङ्

प्र० पु०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
म० पु०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
उ० पु०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

परस्मैपदी स्था तिष्ठ—ठहरना

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तिष्ठतु; तिष्ठतात्	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
म० पु०	तिष्ठ, तिष्ठतात्	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उ० पु०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

विधि लिङ्

प्र० पु०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
म० पु०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उ० पु०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
म० पु०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उ० पु०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

भविष्यत्काल—लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
म० पु०	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
म० पु०	स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
म० पु०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
म० पु०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

परस्मैपदी घ्रा-धातु (जिघ्र)—सूँघना

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	जिघ्रति	जिघ्रतः	जिघ्रन्ति
म० पु०	जिघ्रसि	जिघ्रथः	जिघ्रथ
उ० पु०	जिघ्रामि	जिघ्रावः	जिघ्रामः

लृट्

प्र० पु०	घ्रास्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति
म० पु०	घ्रास्यसि	घ्रास्यथः	घ्रास्यथ
उ० पु०	घ्रास्यामि	घ्रास्यावः	घ्रास्यामः

लोट्

प्र० पु०	जिघ्रतु, जिघ्रतात्	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु
म० पु०	जिघ्र, जिघ्रतात्	जिघ्रतम्	जिघ्रत
उ० पु०	जिघ्राणि	जिघ्राव	जिघ्राम

लङ्

प्र० पु०	अजिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्
म० पु०	अजिघ्रः	अजिघ्रतम्	अजिघ्रत
उ० पु०	अजिघ्रम्	अजिघ्राव	अजिघ्राम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जिघ्रेत्	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः
म० पु०	जिघ्रेः	जिघ्रेतम्	जिघ्रेत
उ० पु०	जिघ्रेयम्	जिघ्रेव	जिघ्रेम

लुङ्

प्र० पु०	अघ्रासित्	अघ्रासिष्टाम्	अघ्रासिषुः
म० पु०	अघ्रासीः	अघ्रासिष्टम्	अघ्रासिष्ट
उ० पु०	अघ्रासिषम्	अघ्रासिष्व	अघ्रासिष्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	जघ्रौ	जघ्रतुः	जघ्रुः
म० पु०	जघ्राथ, जघ्रिथ	जघ्रथुः	जघ्र
उ० पु०	जघ्रौ	जघ्रिव	जघ्रिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	घ्रेयात्	घ्रेयास्ताम्	घ्रेयासुः
म० पु०	घ्रेयाः	घ्रेयास्तम्	घ्रेयास्त
उ० पु०	घ्रेयासम्	घ्रेयास्व	घ्रेयास्म

लुट्

प्र० पु०	घ्राता	घ्रातारौ	घ्रातारः
म० पु०	घ्रातासि	घ्रातास्थः	घ्रातास्थ
उ० पु०	घ्रातास्मि	घ्रातास्वः	घ्रातास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अघ्रास्यत्	अघ्रास्यताम्	अघ्रास्यन्
म० पु०	अघ्रास्यः	अघ्रास्यतम्	अघ्रास्यत
उ० पु०	अघ्रास्यम्	अघ्रास्याव	अघ्रास्याम

परस्मैपदी—नी (ले जाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	नयति	नयतः	नयन्ति
म० पु०	नयसि	नयथः	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयावः	नयामः

लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	नयतु, नयतात्	नयताम्	नयन्तु
म० पु०	नय, नयतात्	नयतम्	नयत
उ० पु०	नयानि	नयाव	नयाम

लङ्

प्र० पु०	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
म० पु०	अनयः	अनयतम्	अनयत
उ० पु०	अनयम्	अनयाव	अनयाम

लुङ्

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः
म० पु०	अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

लिट्

प्र० पु०	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
म० पु०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य
उ० पु०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

अशीर्लिङ्

प्र० पु०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः
म० पु०	नीयाः	नीयास्तम्	नीयास्त
उ० पु०	नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासि	नेतास्थः	नेतास्थ
उ० पु०	नेतास्मि	नेतास्वः	नेतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
म० पु०	अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उ० पु०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उभयपदी दा—देन (परस्मैपद)

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ददातु, दत्तात्	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि, दत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम्

विधि लिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

भविष्यत्काल—लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

लिट्

प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ–ददाथ	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासि	दातास्थः	दातास्थ
उ० पु०	दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
म० पु०	देयाः	देयास्तम्	देयास्त
उ० पु०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदुः
म० पु०	अदाः	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
म० पु०	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
उ० पु०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

परस्मै पदी गै-धातु (गाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	गायति	गायतः	गायन्ति
म० पु०	गायसि	गायथः	गायथ
उ० पु०	गायामि	गायावः	गायामः

आज्ञा लोट्

प्र० पु०	गायतु	गायताम्	गायन्तु
म० पु०	गाय	गायतम्	गायत
उ० पु०	गायानि	गायाव	गायाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गायेत्	गायेताम्	गायेयुः
म० पु०	गायेः	गायेतम्	गायेत
उ० पु०	गायेयम्	गायेव	गायेम

लङ्

प्र० पु०	अगायत्	अगायताम्	अगायन्
म० पु०	अगायः	अगायतम्	अगायत
उ० पु०	अगायम्	अगायाव	अगायाम

लृट्

प्र० पु०	गास्यति	गास्यतः	गास्यन्ति
म० पु०	गास्यसि	गास्यथः	गास्यथ
उ० पु०	गास्यामि	गास्यावः	गास्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषुः
म० पु०	अगासीः	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
उ० पु०	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म

लिट्

प्र० पु०	जगौ	जगतुः	जगुः
म० पु०	जगिथ	जगथुः	जग
उ० पु०	जगौ	जगिव	जगिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासुः
म० पु०	गेयाः	गेयास्तम्	गेयास्त
उ० पु०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म

लुट्

प्र० पु०	गाता	गातारौ	गातारः
म० पु०,	गातासि	गातास्थः	गातास्थ
उ० पु०	गातास्मि	गातास्वः	गातास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अगास्यत्	अगास्यताम्	अगास्यन्
म० पु०	अगास्यः	अगास्यतम्	अगास्यत
उ० पु०	अगास्यम्	अगास्याव	अगास्याम

परस्मैपदी स्मृ-धातु (स्मरण करना)

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति
म० पु०	स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ
उ० पु०	स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्मरतु, स्मरतात्	स्मरताम्	स्मरन्तु
म० पु०	स्मर, ,,	स्मरतम्	स्मरत
उ० पु०	स्मराणि	स्मराव	स्मराम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि लिङ्

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र० पु०	स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः
म० पु०	स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत
उ० पु०	स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्
म० पु०	अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत
उ० पु०	अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम

भविष्यत् काल—लृट्

प्र० पु०	स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति
म० पु०	स्मरिष्यसि	स्मरिष्यथः	स्मरिष्यथ
उ० पु०	स्मरिष्यामि	स्मरिष्यावः	स्मरिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः
म० पु०	अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट
उ० पु०	अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म

लिट्

प्र० पु०	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः
म० पु०	सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर
उ० पु०	सस्मार	सस्मरिव	सस्मरिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः
म० पु०	स्मर्याः	स्मर्यास्तम्	स्मर्यास्त
उ० पु०	स्मर्यासम्	स्मर्यास्व	स्मर्यास्म

लुट्

प्र० पु०	स्मर्त्ता	स्मर्त्तारौ	स्मर्त्तारः
म० पु०	स्मर्त्तासि	स्मर्त्तास्थः	स्मर्त्तास्थ
उ० पु०	स्मर्त्तास्मि	स्मर्त्तास्वः	स्मर्त्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्
म० पु०	अस्मरिष्यः	अस्मरिष्यतम्	अस्मरिष्यत
उ० पु०	अस्मरिष्यम्	अस्मरिष्याव	अस्मरिष्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी धृ-धातु (धरना)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र० पु०	धरति	धरतः	धरन्ति
म० पु०	धरसि	धरथः	धरथ
उ० पु०	धरामि	धरावः	धरामः
		लोट्	
प्र० पु०	धरतु	धरताम्	धरन्तु
म० पु०	धर	धरतम्	धरत
उ० पु०	धरानि	धराव	धराम
		विधिलिङ्	
प्र० पु०	धरेत्	धरेताम्	धरेयुः
म० पु०	धरेः	धरेतम्	धरेत
उ० पु०	धरेयम्	धरेव	धरेम
		लङ्	
प्र० पु०	अधरत्	अधरताम्	अधरन्
म० पु०	अधरः	अधरतम्	अधरत
उ० पु०	अधरम्	अधराव	अधराम
		लृट्	
प्र० पु०	धरिष्यति	धरिष्यतः	धरिष्यन्ति
म० पु०	धरिष्यसि	धरिष्यथः	धरिष्यथ
उ० पु०	धरिष्यामि	धरिष्यावः	धरिष्यामः
		लुङ्	
प्र० पु०	अधार्षीत्	अधार्ष्टाम्	अधार्षुः
म० पु०	अधार्षीः	अधार्ष्टम्	अधार्ष्ट
उ० पु०	अधार्षम्	अधार्ष्व	अधार्ष्म
		लिट्	
प्र० पु०	दधार	दध्रतुः	दध्रुः
म० पु०	दधर्थ	दध्रथुः	दध्र
उ० पु०	दधार	दध्रिव	दध्रिम
		आशीर्लिङ्	
प्र० पु०	ध्रियात्	ध्रियास्ताम्	ध्रियासुः
म० पु०	ध्रियाः	ध्रियास्तम्	ध्रियास्त
उ० पु०	ध्रियासम्	ध्रियास्व	ध्रियास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः
म० पु०	धर्तासि	धर्तास्थः	धर्तास्थ
उ० पु०	धर्तास्मि	धर्तास्वः	धर्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अधरिष्यत्	अधरिष्यताम्	अधरिष्यन्
म० पु०	अधरिष्यः	अधरिष्यतम्	अधरिष्यत
उ० पु०	अधरिष्यम्	अधरिष्याव	अधरिष्याम

परस्मैपदी श्रि-धातु (सहारा लेना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	श्रयति	श्रयतः	श्रयन्ति
म० पु०	श्रयसि	श्रयथः	श्रयथ
उ० पु०	श्रयामि	श्रयावः	श्रयामः

लोट्

प्र० पु०	श्रयतु	श्रयताम्	श्रयन्तु
म० पु०	श्रय	श्रयतम्	श्रयत
उ० पु०	श्रयानि	श्रयाव	श्रयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	श्रयेत्	श्रयेताम्	श्रयेयुः
म० पु०	श्रयेः	श्रयेतम्	श्रयेत
उ० पु०	श्रयेयम्	श्रयेव	श्रयेम

लङ्

प्र० पु०	अश्रयत्	अश्रयताम्	अश्रयन्
म० पु०	अश्रयः	अश्रयतम्	अश्रयत
उ० पु०	अश्रयम्	अश्रयाव	अश्रयाम

लृट्

प्र० पु०	श्रयिष्यति	श्रयिष्यतः	श्रयिष्यन्ति
म० पु०	श्रयिष्यसि	श्रयिष्यथः	श्रयिष्यथ
उ० पु०	श्रयिष्यामि	श्रयिष्यावः	श्रयिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
म० पु०	अशिश्रियः	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
उ० पु०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव	अशिश्रियाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	शिश्राय	शिश्रियतुः	शिश्रियुः
म० पु०	शिश्रियिथ	शिश्रियथुः	शिश्रिय
उ० पु०	शिश्राय	शिश्रियिव	शिश्रियिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्रीयात्	श्रीयास्ताम्	श्रीयासुः
म० पु०	श्रीयाः	श्रीयास्तम्	श्रीयास्त
उ० पु०	श्रीयासम्	श्रीयास्व	श्रीयास्म

लुट्

प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
म० पु०	श्रयितासि	श्रयितास्थः	श्रयितास्थ
उ० पु०	श्रयितास्मि	श्रयितास्वः	श्रयितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्
म० पु०	अश्रयिष्यः	अश्रयिष्यतम्	अश्रयिष्यत
उ० पु०	अश्रयिष्यम्	अश्रयिष्याव	अश्रयिष्याम

परस्मैपदी दाण्-धातु (देना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	यच्छति	यच्छतः	यच्छन्ति
म० पु०	यच्छसि	यच्छथः	यच्छथ
उ० पु०	यच्छामि	यच्छावः	यच्छामः

लोट्

प्र० पु०	यच्छतु	यच्छताम्	यच्छन्तु
म० पु०	यच्छ	यच्छतम्	यच्छत
उ० पु०	यच्छानि	यच्छाव	यच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	यच्छेत्	यच्छेताम्	यच्छेयुः
म० पु०	यच्छेः	यच्छेतम्	यच्छेत
उ० पु०	यच्छेयम्	यच्छेव	यच्छेम

लङ्

प्र० पु०	अयच्छत्	अयच्छताम्	अयच्छन्
म० पु०	अयच्छः	अयच्छतम्	अयच्छत
उ० पु०	अयच्छम्	अयच्छाव	अयच्छाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

श्रु-धातु—सुनना परस्मैपदी)

वर्तमान लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुवः, शृण्वः	शृणुमः, शृण्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधि लिङ्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० प०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० प०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

भविष्यत् काल—लृट्

प्र० पु०	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
म० पु०	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उ० पु०	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
म० पु०	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव	शुश्रुविव	शुश्रुविम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः
म० पु०	श्रूयाः	श्रूयास्तम्	श्रूयास्त
उ० पु०	श्रूयासम्	श्रूयास्व	श्रूयास्म

लुट्

प्र० पु०	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः
म० पु०	श्रोतासि	श्रोतास्थः	श्रोतास्थ
उ० पु०	श्रोतास्मि	श्रोतास्वः	श्रोतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्
म० पु०	अश्रोष्यः	अश्रोष्यतम्	अश्रोष्यत
उ० पु०	अश्रोष्यम्	अश्रोष्याव	अश्रोष्याम

परस्मैपदी पिब्-धातु (पीना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
म० पु०	पिबसि	पिबथः	पिबथ
उ० पु०	पिबामि	पिबावः	पिबामः

लोट्

प्र० पु०	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
म० पु०	पिब	पिबतम्	पिबत
उ० पु०	पिबानि	पिबाव	पिबाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
म० पु०	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
उ० पु०	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अपिवत्	अपिवताम्	अपिवन्
म० पु०	अपिवः	अपिवतम्	अपिवत
उ० पु०	अपिवम्	अपिवाव	अपिवाम

लृट्

प्र० पु०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
म० पु०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उ० पु०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अपात्	अपाताम्	अपुः
म० पु०	अपाः	अपातम्	अपात
उ० पु०	अपाम्	अपाव	अपाम

लिट्

प्र० पु०	पपौ	पपतुः	पपुः
म० पु०	पपाथ, पपिथ	पपथुः	पप
उ० पु०	पपौ	पपिव	पपिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः
म० पु०	पेयाः	पेयास्तम्	पेयास्त
उ० पु०	पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म

लुट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातारः
म० पु०	पातासि	पातास्थः	पातास्थ
उ० पु०	पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अपास्यत्	अपास्याताम्	अपास्यन्
म० पु०	अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
उ० पु०	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी जि-धातु (जीतना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	जयति	जयतः	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथः	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयावः	जयामः

लोट्

प्र० पु०	जयतु	जयताम्	जयन्तु
म० पु०	जय	जयतम्	जयत
उ० पु०	जयानि	जयाव	जयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
म० पु०	जयेः	जयेतम्	जयेत
उ० पु०	जयेयम्	जयेव	जयेम

लङ्

प्र० पु०	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
म० पु०	अजयः	अजयतम्	अजयत
उ० पु०	अजयम्	अजयाव	अजयाम

लृट्

प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
म० पु०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० म०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
म० तु०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः
म० पु०	जीयाः	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

लुट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतारः
म० पु०	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
म० पु०	अजेष्यः	अजेष्यतम्	अजेष्यत
उ० पु०	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम

परस्मैपदी त्यज्-धातु (छोड़ना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति
म० पु०	त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ
उ० पु०	त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः

लोट्

प्र० पु०	त्यजतु, त्यजात्,	त्यजताम्	त्यजन्तु
म० पु०	त्यज, त्यजतात्,	त्यजतम्	त्यजत
उ० पु०	त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम

लिङ्

प्र० पु०	त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयुः
म० पु०	त्यजेः	त्यजेतम्	त्यजेत
उ० पु०	त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम

लङ्

प्र० पु०	अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्
म० पु०	अत्यजः	अत्यजतम्	अत्यजत
उ० पु०	अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यतः	त्यक्ष्यन्ति
म० पु०	त्यक्ष्यसि	त्यक्ष्यथः	त्यक्ष्यथ
उ० पु०	त्यक्ष्यामि	त्यक्ष्यावः	त्यक्ष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अत्याक्षीत्	अत्याक्ताम्	अत्याक्षुः
म० पु०	अत्याक्षीः	अत्याक्तम्	अत्याक्त
उ० पु०	अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म

लिट्

प्र० पु०	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
म० पु०	तत्यजिथ	तत्यजथुः	तत्यज
उ० पु०	तत्याज	सत्यजिव	तत्यजिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	त्यज्यात्	त्यज्यास्ताम्	त्यज्यासुः
म० पु०	त्यज्याः	त्यज्यास्तम्	त्यज्यास्त
उ० पु०	त्यज्यासम्	त्यज्यास्व	त्यज्यास्म

लुट्

प्र० पु०	त्यक्ता	त्यक्तारौ	त्यक्तारः
म० पु०	त्यक्तासि	त्यक्तास्थः	त्यक्तास्थ
उ० पु०	त्यक्तास्मि	त्यक्तास्वः	त्यक्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अत्यक्ष्यत्	अत्यक्ष्यताम्	अत्यक्ष्यन्
म० पु०	अत्यक्ष्यः	अत्यक्ष्यतम्	अत्यक्ष्यत
उ० पु०	अत्यक्ष्यम्	अत्यक्ष्याव	अत्यक्ष्याम

परस्मैपदी तप्-धातु

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तपति	तपतः	तपन्ति
म० पु०	तपसि	तपथः	तपथ
उ० पु०	तपामि	तगावः	तपामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	तपतु, तपतात्	तपताम्	तपन्तु
म० पु०	तप, ,,	तपतम्	तपत
उ० पु०	तपानि	तपाव	तपाम

लिङ्

प्र० पु०	तपेत्	तपेताम्	तपेयुः
म० पु०	तपेः	तपेतम्	तपेत
उ० पु०	तपेयम्	तपेव	तपेम

लङ्

प्र० पु०	अतपत्	अतपताम्	अतपन्
म० पु०	अतपः	अतपतम्	अतपत
उ० पु०	अतपम्	अतपाव	अतपाम

लृट्

प्र० पु०	तप्स्यति	तप्स्यतः	तप्स्यन्ति
म० पु०	तप्स्यसि	तप्स्यथः	तप्स्यथ
उ० पु०	तप्स्यामि	तप्स्यावः	तप्स्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अताप्सीत्	अताप्ताम्	अताप्सुः
म० पु०	अताप्सीः	अताप्तम्	अताप्त
उ० पु०	अताप्सम्	अताप्स्व	अताप्स्म

लिट्

प्र० पु०	ततAप	तेपतुः	तेपुः
म० पु०	तेपिथ	तेपथुः	तेप
उ० पु०	ततAप	तेपिव	तेपिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तप्यात्	तप्यास्ताम्	तप्यासुः
म० पु०	तप्याः	तप्यास्तम्	तप्यास्त
उ० पु०	तप्यासम्	तप्यास्व	तप्यास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	तप्ता	तप्तारौ	तप्तारः
म० पु०	तप्तासि	तप्तास्थः	तप्तास्थ
उ० पु०	तप्तास्मि	तप्तास्वः	तप्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अतप्स्यत्	अतप्स्यताम्	अतप्स्यन्
म० पु०	अतप्स्यः	अतप्स्यतम्	अतप्स्यत
उ० पु०	अतप्स्यम्	अतप्स्याव	अतप्स्याम

परस्मैपदी क्षि-क्षये (नष्ट होना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	क्षयति	क्षयतः	क्षयन्ति
म० पु०	क्षयसि	क्षयथः	क्षयथ
उ० पु०	क्षयामि	क्षयावः	क्षयामः

लोट्

प्र० पु०	क्षयतु, क्षयतात्	क्षयताम्	क्षयन्तु
म० पु०	क्षय, ,,	क्षयतम्	क्षयत
उ० पु०	क्षयाणि	क्षयाव	क्षयाम

लिङ्

प्र० पु०	क्षयेत्	क्षयेताम्	क्षयेयुः
म० पु०	क्षयेः	क्षयेतम्	क्षयेत
उ० पु०	क्षयेयम्	क्षयेव	क्षयेम

लङ्

प्र० पु०	अक्षयत्	अक्षयताम्	अक्षयन्
म० पु०	अक्षयः	अक्षयतम्	अक्षयत
उ० पु०	अक्षयम्	अक्षयाव	अक्षयाम

लृट्

प्र० पु०	क्षेष्यति	क्षेष्यतः	क्षेष्यन्ति
म० पु०	क्षेष्यसि	क्षेष्यथः	क्षेष्यथ
उ० पु०	क्षेष्यामि	क्षेष्यावः	क्षेष्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अक्षैषीत्	अक्षैष्टाम्	अक्षैषुः
म० पु०	अक्षैषीः	अक्षैष्टम्	अक्षैष्ट
उ० पु०	अक्षैषम्	अक्षैष्व	अक्षैष्म

लिट्

प्र० पु०	चिक्षाय	चिक्षियतुः	चिक्षियुः
म० पु०	चिक्षयिथ, चिक्षेथ	चिक्षियथुः	चिक्षिय
उ० पु०	चिक्षाय	चिक्षियिव	चिक्षियिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	क्षीयात्	क्षीयास्ताम्	क्षीयासुः
म० पु०	क्षीयाः	क्षीयास्तम्	क्षीयास्त
उ० पु०	क्षीयासम्	क्षीयास्व	क्षीयास्म

लुट्

प्र० पु०	क्षेता	क्षेतारौ	क्षेतारः
म० पु०	क्षेतासि	क्षेतास्थः	क्षेतास्थ
उ० पु०	क्षेतास्मि	क्षेतास्वः	क्षेतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अक्षेष्यत्	अक्षेष्यताम्	अक्षेष्यन्
म० पु०	अक्षेष्यः	अक्षेष्यतम्	अक्षेष्यत
उ० पु०	अक्षेष्यम्	अक्षेष्याव	अक्षेष्याम

परस्मैपदी स्रु-धातु

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	स्रवति	स्रवतः	स्रवन्ति
म० पु०	स्रवसि	स्रवथः	स्रवथ
उ० पु०	स्रवामि	स्रवावः	स्रवामः

लोट्

प्र० पु०	स्रवतु, स्रवतात्	स्रवताम्	स्रवन्तु
म० पु०	स्रव, ,,	स्रवतम्	स्रवत
उ० पु०	स्रवाणि	स्रवाव	स्रवाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि लिङ्

प्र० पु०	स्रवेत्	स्रवेताम्	स्रवेयुः
म० पु०	स्रवेः	स्रवेतम्	स्रवेत
उ० पु०	स्रवेयम्	स्रवेव	स्रवेम

लङ्

प्र० पु०	अस्रवत्	अस्रवताम्	अस्रवन्
म० पु०	अस्रवः	अस्रवतम्	अस्रवत
उ० पु०	अस्रवम्	अस्रवाव	अस्रवाम

लृट्

प्र० पु०	स्रोष्यति	स्रोष्यतः	स्रोष्यन्ति
म० पु०	स्रोष्यसि	सोष्यथः	स्रोष्यथ
उ० पु०	स्रोष्यामि	स्रोष्यावः	स्रोष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	असुस्रुवत्	असुस्रुवताम्	असुस्रुवन्
म० पु०	असुस्रुवः	असुस्रुवतम्	असुस्रुवत
उ० पु०	असुस्रुवम्	असुस्रुवाव	असुस्रुवाम

लिट्

प्र० पु०	सुस्राव	सुस्रुवतुः	सुस्रुवुः
म० पु०	सुस्रोथ	सुस्रुवथुः	सुस्रुव
उ० पु०	सुस्राव, सुस्रव	सुस्रुव	सुस्रुम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्रूयात्	स्रूयास्ताम्	स्रूयासुः
म० पु०	स्रूयाः	स्रूयास्तम्	स्रूयास्त
उ० पु०	स्रूयासम्	स्रूयास्व	स्रूयास्म

लुट्

प्र० पु०	स्रोता	स्रोतारौ	स्रोतारः
म० पु०	स्रोतासि	स्रोतास्थः	स्रोतास्थ
उ० पु०	स्रोतास्मि	स्रोतास्वः	स्रोतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अस्रोष्यत्	अस्रोष्यताम्	अस्रोष्यन्
म० पु०	अस्रोष्यः	अस्रोष्यतम्	अस्रोष्यत
उ० पु०	अस्रोष्यम्	अस्रोष्याव	अस्रोष्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी तॄ-धातु (तैरना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तरति	तरतः	तरन्ति
म० पु०	तरसि	तरथः	तरथ
उ० पु०	तरामि	तरावः	तरामः

लोट्

प्र० पु०	तरतु, तरतात्	तरताम्	तरन्तु
म० पु०	तर, तरतात्	तरतम्	तरत
उ० पु०	तराणि	तराव	तराम

विधि लिङ्

प्र० पु०	तरेत्	तरेताम्	तरेयुः
म० पु०	तरेः	तरेतम्	तरेत
उ० पु०	तरेयम्	तरेव	तरेम

लङ्

प्र० पु०	अतरत्	अतरताम्	अतरन्
म० पु०	अतरः	अतरतम्	अतरत
उ० पु०	अतरम्	अतराव	अतराम

लृट्

प्र० पु०	तरीष्यति	तरीष्यतः	तरीष्यन्ति
म० पु०	तरीष्यसि	तरीष्यथः	तरीष्यथ
उ० पु०	तरीष्यामि	तरीष्यावः	तरीष्यामः

लट्

प्र० पु०	तरिष्यति	तरिष्यतः	तरिष्यन्ति
म० पु०	तरिष्यसि	तरिष्यथः	तरिष्यथ
उ० पु०	तरिष्यामि	तरिष्यावः	तरिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अतारीत्	अतारिष्टाम्	अतारिषु
म० पु०	अतारीः	अतारिष्टम्	अतारिष्ट
उ० पु०	अतारिषम्	अतारिष्व	अतारिष्म

लिट्

प्र० पु०	ततार	तेरतुः	तेरुः
म० पु०	तेरिथ	तेरथुः	तेर
उ० पु०	ततार, ततर	तेरिव	तेरिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तीर्यात्	तीर्यास्ताम्	तीर्यासुः
म० पु०	तीर्याः	तीर्यास्तम्	तीर्यास्त
उ० पु०	तीर्यासम्	तीर्यास्व	तीर्यास्म

लुट्

प्र० पु०	तरीता	तरीतारौ	तरीतारः
म० पु०	तरीतासि	तरीतास्थः	तरीतास्थ
उ० पु०	तरीतास्मि	तरीतास्वः	तरीतास्मः

लुट्

प्र० पु०	तरिता	तरितारौ	तरितारः
म० पु०	अरितासि	तरितास्थः	तरितास्थ
उ० पु०	तरितास्मि	तरितास्वः	तरितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अतरीष्यत्	अतरीष्यताम्	अतरीष्यन्
म० पु०	अतरीष्यः	अतरीष्यतम्	अतरीष्यत
उ० पु०	अतरीष्यम्	अतरीष्याव	अतरीष्याम

लृङ

प्र० पु०	अतरिष्यत्	अतरिष्यताम्	अतरिष्यन्
म० पु०	अतरिष्यः	अतरिष्यतम्	अतरिष्यत
उ० पु०	अतरिष्यम्	अतरिष्याव	अतरिष्याम

परस्मैपदी ध्यै-धातु (ध्यान करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ध्यायति	ध्यायतः	ध्यायन्ति
म० पु०	ध्यायसि	ध्यायथः	ध्यायथ
उ० पु०	ध्यायामि	ध्यायावः	ध्यायामः

लोट्

प्र० पु०	ध्यायतु, ध्यायतात्	ध्यायताम्	ध्यायन्तु
म० पु०	ध्याय, ,,	ध्यायतम्	ध्यायत
उ० पु०	ध्यायानि	ध्यायाव	ध्यायाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि लिङ्

प्र० पु०	ध्यायेत्	ध्यायेताम्	ध्यायेयुः
म० पु०	ध्यायेः	ध्यायेतम्	ध्यायेत
उ० पु०	ध्यायेयम्	ध्यायेव	ध्यायेम

लङ्

प्र० पु०	अध्यायत्	अध्यायताम्	अध्यायन्
म० पु०	अध्यायः	अध्यायतम्	अध्यायत
उ० पु०	अध्यायम्	अध्यायाव	अध्यायाम

लृट्

प्र० पु०	ध्यास्यति	ध्यास्यतः	ध्यास्यन्ति
म० पु०	ध्यास्यसि	ध्यास्यथः	ध्यास्यथ
उ० पु०	ध्यास्यामि	ध्यास्यावः	ध्यास्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अध्यासीत्	अध्यासिष्टाम्	अध्यासिषुः
म० पु०	अध्यासीः	अध्यासिष्टम्	अध्यासिष्ट
उ० पु०	अध्यासिषम्	अध्यासिष्व	अध्यासिष्म

लिट्

प्र० पु०	दध्यौ	दध्यतुः	दध्युः
म० पु०	दध्याथ, दध्यिथ	दध्यिथुः	दध्य
उ० पु०	दध्यौ	दध्यिव	दध्यिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ध्येयात्	ध्येयास्ताम्	ध्येयासुः
म० पु०	ध्येयाः	ध्येयास्तम्	ध्येयास्त
उ० पु०	ध्येयासम्	ध्येयास्व	ध्येयास्म

लुट्

प्र० पु०	ध्याता	ध्यातारौ	ध्यातारः
म० पु०	ध्यातासि	ध्यातास्थः	ध्यातास्थ
उ० पु०	ध्यातास्मि	ध्यातास्वः	ध्यातास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अध्यास्यत्	अध्यास्यताम्	अध्यास्यन्
म० पु०	अध्यास्यः	अध्यास्यतम्	अध्यास्यत
उ० पु०	अध्यास्यम्	अध्यास्याव	अध्यास्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी अर्च्-धातु (पूजा करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अर्चति	अर्चतः	अर्चन्ति
म० पु०	अर्चसि	अर्चथः	अर्चथ
उ० पु०	अर्चामि	अर्चावः	अर्चामः

लोट्

प्र० पु०	अर्चतु, अर्चतात्	अर्चताम्	अर्चन्तु
म० पु०	अर्च ,, ,,	अर्चतम्	अर्चत
उ० पु०	अर्चानि	अर्चाव	अर्चाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	अर्चेत्	अर्चेताम्	अर्चेयुः
म० पु०	अर्चेः	अर्चेताम्	अर्चेत
उ० पु०	अर्चेयम्	अर्चेव	अर्चेम

लङ्

प्र० पु०	आर्चत्	आर्चताम्	आर्चन्
म० पु०	आर्चः	आर्चतम्	आर्चत
उ० पु०	आर्चम्	आर्चाव	आर्चाम

लृट्

प्र० पु०	अर्चिष्यति	अर्चिष्यतः	अर्चिष्यन्ति
म० पु०	अर्चिष्यसि	अर्चिष्यथः	अर्चिष्यथ
उ० पु०	अर्चिष्यामि	अर्चिष्यावः	अर्चिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	आर्चीत्	आर्चिष्टाम्	आर्चिषुः
म० पु०	आर्चीः	आर्चिष्टम्	आर्चिष्ट
उ० पु०	आर्चिषम्	आर्चिष्व	आर्चिष्म

लिट्

प्र० पु०	आनर्च	आनर्चतुः	आनर्चुः
म० पु०	आनर्चिथ	आनर्चथुः	आनर्च
उ० पु०	आनर्च	आनर्चिव	आनर्चिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अर्च्यात्	अर्च्यास्ताम्	अर्च्यासुः
म० पु०	अर्च्याः	अर्च्यास्तम्	अर्च्यास्त
उ० पु०	अर्च्यासम्	अर्च्यास्व	अर्च्यास्म

लुट्

प्र० पु०	अर्चिता	अर्चितारौ	अर्चितारः
म० पु०	अर्चितासि	अर्चितास्थः	अर्चितास्थ
उ० पु०	अर्चितास्मि	अर्चितास्वः	अर्चितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	आर्चिष्यत्	आर्चिष्यताम्	आर्चिष्यन्
म० पु०	आर्चिष्यः	आर्चिष्यतम्	आर्चिष्यत
उ० पु०	आर्चिष्यम्	आर्चिष्याव	आर्चिष्याम

आत्मनेपदी धृ-धातु (धरना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	धरते	धरेते	धरन्ते
म० पु०	धरसे	धरेथे	धरध्वे
उ० पु०	धरे	धरावहे	धरामहे

लोट्

प्र० पु०	धरताम्	धरेताम्	धरन्ताम्
म० पु०	धरस्व	धरेथाम्	धरध्वम्
उ० पु०	धरै	धरावहै	धरामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	धरेत	धरेयाताम्	धरेरन्
म० पु०	धरेयाः	धरेयाथाम्	धरेध्वम्
उ० पु०	धरेय	धरेवहि	धरेमहि

लङ्

प्र० पु०	अधरत	अधरेताम्	अधरन्त
म० पु०	अधरथाः	अधरेथाम्	अधरध्वम्
उ० पु०	अधरे	अधरावहि	अधरामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	धरिष्यते	धरिष्येते	धरिष्यन्ते
म० पु०	धरिष्यसे	धरिष्येथे	धरिष्यध्वे
उ० पु०	धरिष्ये	धरिष्यावहे	धरिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अधृत	अधृषाताम्	अधृषत
म० पु०	अधृथाः	अधृषाथाम्	अधृढ्वम्
उ० पु०	अधृषि	अधृष्वहि	अधृष्महि

लिट्

प्र० पु०	दध्रे	दध्राते	दध्रिरे
म० पु०	दध्रिषे	दध्राथे	दध्रिध्वे
उ० पु०	दध्रे	दध्रिवहे	दध्रिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धृषीष्ट	धृषीयास्ताम्	धृषीरन्
म० पु०	धृषीष्ठाः	धृषीयास्थाम्	धृषीढ्वम्
उ० पु०	धृषीय	धृषीवहि	धृषीमहि

लुट्

प्र० पु०	धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः
म० पु०	धर्तासे	धर्तासाथे	धर्ताध्वे
उ० पु०	धर्ताहे	धर्तास्वहे	धर्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अधरिष्यत	अधरिष्येताम्	अधरिष्यन्त
म० पु०	अधरिष्यथाः	अधरिष्येथाम्	अधरिष्यध्वम्
उ० पु०	अधरिष्ये	अधरिष्यावहि	अधरिष्यामहि

आत्मनेपदी श्रि-धातु (सहारा लेना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	व० व०
प्र० पु०	श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते
म० पु०	श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे
उ० पु०	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे

लोट्

प्र० पु०	श्रयताम्	श्रयेताम्	श्रयन्ताम्
म० पु०	श्रयस्व	श्रयेथाम्	श्रयध्वम्
उ० पु०	श्रयै	श्रयावहै	श्रयामहै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	श्रयेत	श्रयेयाताम्	श्रयेरन्
म० पु०	श्रयेथाः	श्रयेयाथाम्	श्रयेध्वम्
उ० पु०	श्रयेय	श्रयेवहि	श्रयेमहि

लङ्

प्र० पु०	अश्रयत	अश्रयेताम्	अश्रयन्त
म० पु०	अश्रयथाः	अश्रयेथाम्	अश्रयध्वम्
उ० पु०	अश्रये	अश्रयावहि	अश्रयामहि

लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
म० पु०	अशिश्रियथाः	अशिश्रियेथाम्	अशिश्रियध्वम्
उ० पु०	अशिश्रिये	अशिश्रियावहि	अशिश्रियामहि

लिट्

प्र० पु०	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे
म० पु०	शिश्रियिष	शिश्रियाथे	शिश्रियिध्वे
उ० पु०	शिश्रिये	शिश्रियिवहे	शिश्रियिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्रयीषीष्ट	श्रयीषीयास्ताम्	श्रयिषीरन्
म० पु०	श्रयिषीष्ठाः	श्रयिषीयास्थाम्	श्रयिषीध्वम्
उ० पु०	श्रयिषीय	श्रयिषीवहि	श्रयिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
म० पु०	श्रयितासे	श्रयितासाथे	श्रयिताध्वे
उ० पु०	श्रयिताहे	श्रयितास्वहे	श्रयितास्महे

लृट्

प्र० पु०	श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते
म० पु०	श्रयिष्यसे	श्रयिष्येथे	श्रयिष्यध्वे
उ० पु०	श्रयिष्ये	श्रयिष्यावहे	श्रयिष्यामहे

लृङ्

प्र० पु०	अश्रयिष्यत	अश्रयिष्येताम्	अश्रयिष्यन्त
म० पु०	अश्रयिष्यथाः	अश्रयिष्येथाम्	अश्रयिष्यध्वम्
उ० पु०	अश्रयिष्ये	अश्रयिष्यावहि	अश्रयिष्यामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपदी नी-धातु (ले जाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	नयते	नयेते	नयन्ते
म० पु०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उ० पु०	नये	नयावहे	नयामहे

लोट्

प्र० पु०	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
म० पु०	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
उ० पु०	नयै	नयावहै	नयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
म० पु०	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
उ० पु०	नयेय	नयेवहि	नयेमहि

लङ्

प्र० पु०	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
म० पु०	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
उ० पु०	अनये	अनयावहि	अनयामहि

लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म० पु०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
उ० पु०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिढ्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीढ्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

आत्मनेपदी एध्-धातु (वृद्धि, प्राप्त होना, बढ़ना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	व० व०
प्र० पु०	एधते	एधेते	एधन्ते
म० पु०	एधसे	एधेथे	एधध्वे
उ० पु०	एधे	एधावहे	एधामहे

लिट्

प्र० पु०	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चक्राते	एधाञ्चक्रिरे
म० पु०	एधाञ्चकृषे	एधाञ्चक्राथे	एधाञ्चकृढ्वे
उ० पु०	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चकृवहे	एधाञ्चकृमहे

लुट्

प्र० पु०	एधिता	एधितारौ	एधितारः
म० पु०	एधितासे	एधितासाथे	एधिताध्वे
उ० पु०	एधिताहे	एधितास्वहे	एधितास्महे

लृट्

प्र० पु०	एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते
म० पु०	एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे
उ० पु०	एधिष्ये	एधिष्यावहि	एधिष्यामहि

लोट्

प्र० पु०	एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्
म० पु०	एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्
उ० पु०	एधै	एधावहै	एधामहै

अब शेष लकारों के रूप लभ् धातु के समान होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपदी लभ्-धातु (पाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
म० पु०	अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
उ० पु०	अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि

लिट्

प्र० पु०	लेभे	लेभाते	लेभिरे
म० पु०	लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे
उ० पु०	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्
म० पु०	लप्सीष्ठाः	लप्सीयास्थाम्	लप्सीढ्वम्
उ० पु०	लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि

लुट्

प्र० पु०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
म० पु०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उ० पु०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० पु०	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० पु०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

आत्मनेपदी सेव्-धातु (सेवा करना)

लट्

	ए०व०	द्वि० व०	ब०व०
प्र० पु०	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
म० पु०	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उ० पु०	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लोट्

प्र० पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
म० पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उ० पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
म० पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उ० पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लङ्

प्र० पु०	असेवेत	असेवेताम्	असेवन्त
म० पु०	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उ० पु०	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

	ए० व०	द्वि०	ब० व०
प्र० पु०	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
म० पु०	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उ० पु०	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यमहे

लुङ्

प्र० पु०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
म० पु०	असेविष्ठाः	असेविषथाम्	असेविढ्वम्
उ० पु०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

लिट्

प्र० पु०	सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे
म० पु०	सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे
उ० पु०	सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
म० पु०	सेविसीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्
उ० पु०	सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि

लुट्

प्र० पु०	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
म० पु०	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
उ० पु०	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

लृङ्

प्र० पु०	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
म० पु०	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
उ० पु०	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

आत्मनेपदी वृत्-धातु वर्त्तमान रहना)

लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्त्तेते	वर्त्तन्ते
म० पु०	वर्त्तसे	वर्त्तेथे	वर्त्तध्वे
उ० पु०	वर्त्ते	वर्त्तावहे	वर्त्तामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	वर्त्तताम्	वर्त्तेताम्	वर्त्तन्ताम्
म० पु०	वर्त्तस्व	वर्त्तेथाम्	वर्त्तध्वम्
उ० पु०	वर्त्ते	वर्त्तावहै	वर्त्तामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	वर्त्तेत	वर्त्तेयाताम्	वर्त्तेरन्
म० पु०	वर्त्तेथाः	वर्त्तेयाथाम्	वर्त्तेध्वम्
उ० पु०	वर्त्तेय	वर्त्तेवहि	वर्त्तेमहि

लङ्

प्र० पु०	अवर्त्तत	अवर्त्तेताम्	अवर्त्तन्त
म० पु०	अवर्त्तथाः	अवर्त्तेथाम्	अवर्त्तध्वम्
उ० पु०	अवर्त्ते	अवर्त्तावहि	अवर्त्तामहि

लृट्

प्र० पु०	वर्त्तिष्यते	वर्त्तिष्येते	वर्त्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्त्तिष्यसे	वर्त्तिष्येथे	वर्त्तिष्यध्वे
उ० पु०	वर्त्तिष्ये	वर्त्तिष्यावहे	वर्त्तिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अवर्त्तिष्ट	अवर्त्तिषाताम्	अवर्त्तिषत
म० पु०	अवर्त्तिष्ठाः	अवर्त्तिषाथाम्	अवर्त्तिध्वम्
उ० पु०	अवर्त्तिषि	अवर्त्तिष्वहि	अवर्त्तिष्महि

लिट्

प्र० पु०	ववृते	ववृताते	ववृतिरे
म० पु०	ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे
उ० पु०	ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वर्त्तिषीष्ट	वर्त्तिषीयास्ताम्	वर्त्तिषीरन्
म० पु०	वर्त्तिषीष्ठाः	वर्त्तिषीयास्थाम्	वर्त्तिषीध्वम्
उ० पु०	वर्त्तिषीय	वर्त्तिषीवहि	वर्त्तिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	वर्त्तिता	वर्त्तितारौ	वर्त्तितारः
म० पु०	वर्त्तितासे	वर्त्तितासाथे	वर्त्तिताध्वे
उ० पु०	वर्त्तिताहे	वर्त्तितास्वहे	वर्त्तितास्महे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
म० पु०	अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
उ० पु०	अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

भ्वादिगण आत्मनेपदी वृध्-धातु (बढ़ना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
म० पु०	वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
उ० पु०	वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे

लोट्

प्र० पु०	वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्
म० पु०	वर्धस्व	वर्धेथाम्	वर्धध्वम्
उ० पु०	वर्धै	वर्धावहै	वर्धामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	वर्धेत	वर्धेयाताम्	वर्धेरन्
म० पु०	वर्धेथाः	वर्धेयाथम्	वर्धेध्वम्
उ० पु०	वर्धेय	वर्धेवहि	वर्धेमहि

लङ्

प्र० पु०	अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त
म० पु०	अवर्धेथाः	अवर्धेथाम्	अवर्धध्वम्
उ० पु०	अवर्धे	अवर्धावहि	अवर्धामहि

लृट्

प्र० पु०	वर्धिष्यते	वर्धिष्येते	वर्धिष्यन्ते
म० पु०	वर्धिष्यसे	वर्धिष्येथे	वर्धिष्यध्वे
उ० पु०	वर्धिष्ये	वर्धिष्यावहे	वर्धिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अवर्धिष्ट	अवर्धिषाताम्	अवर्धिषत
म० पु०	अवर्धिष्ठाः	अवर्धिषाथाम्	अवर्धिड्ढ्वम्
उ० पु०	अवर्धिषि	अवर्धिष्वहि	अवर्धिष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
म० पु०	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
उ० पु०	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
म० पु०	वर्धिषीष्ठाः	वर्धिषीयास्थाम्	वर्धिषीध्वम्
उ० पु०	वर्धिषीय	वर्धिषीवहि	वर्धिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	वर्धिता	वर्धितारौ	वर्धितारः
म० पु०	वर्धितासे	वर्धितासाथे	वर्धिताध्वे
उ० पु०	वर्धिताहे	वर्धितास्वहे	वर्धितास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अवर्धिष्यत	अवर्धिष्येताम्	अवर्धिष्यन्त
म० पु०	अवर्धिष्यथाः	अवर्धिष्येथाम्	अवर्धिष्यध्वम्
उ० पु०	अवर्धिष्ये	अवर्धिष्यावहि	अवर्धिष्यामहि

अदादिगण

परस्मैपदी अद्-धातु (खाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ० पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतुः	जक्षुः
म० पु०	जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष
उ० पु०	जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः
म० पु०	अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त
उ० पु०	अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उ० पु०	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

लोट्

प्र० पु०	अत्तु, अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अद्धि, अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन्
म० पु०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम्	आद्व	आद्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लुङ्

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
म० पु०	अघसः	अघसतम्	अघसत
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

लृङ्

प्र० पु०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म० पु०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ० पु०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अदादिगण) परस्मैपदी हन्-धातु (हिंसा करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
म० पु०	हंसि	हथः	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लृट्

प्र० पु०	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
म० पु०	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ० पु०	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	हन्तु, हतात्	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि, हतात्	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लुङ्

प्र० पु०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः
म० पु०	अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म० पु०	जघनिथ	जघ्नथुः	जघ्न
उ० पु०	जघान	जघ्निव	जघ्निम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः
म० पु०	वध्याः	वध्यास्तम्	वध्यास्त
उ० पु०	वध्यासम्	वध्यास्व	वध्यास्म

लुट्

प्र० पु०	हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः
म० पु०	हन्तासि	हन्तास्थः	हन्तास्थ
उ० पु०	हन्तास्मि	हन्तास्वः	हन्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
म० पु०	अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
उ० पु०	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

परस्मैपदी अस्-धातु (होना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

लोट्

प्र० पु०	अस्तु; स्तात्	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि, ,,	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

शेष लकारों में अस्-धातु के रूप वे ही हैं जो भ्वादिगणीय 'भू' धातु के हैं।

परस्मैपदी स्वप्-धातु (सोना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

लोट्

प्र० पु०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
म० पु०	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लङ्

प्र० पु०	अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म० पु०	अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

लृट्

प्र० पु०	स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति
म० पु०	स्वप्स्यसि	स्वप्स्यथः	स्वप्स्यथ
उ० पु०	स्वप्स्यामि	स्वप्स्यावः	स्वप्स्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
म० पु०	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ० पु०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
म० पु०	सुष्वपिथ	सुषुपथुः	सुषुप
उ० पु०	सुष्वाप	सुषुपिव	सुषुपिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः
म० पु०	सुप्याः	सुप्यास्तम्	सुप्यास्त
उ० पु०	सुप्यासम्	सुप्यास्व	सुप्यास्म

लुट्

प्र० पु०	स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
म० पु०	स्वप्तासि	स्वप्तास्थः	स्वप्तास्थ
उ० पु०	स्वप्तास्मि	स्वप्तास्वः	स्वप्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्	अस्वप्स्यन्
म० पु०	अस्वप्स्यः	अस्वप्स्यतम्	अस्वप्स्यत
उ० पु०	अस्वप्स्यम्	अस्वप्स्याव	अस्वप्स्याम

परस्मैपदी स्ना-धातु (नहाना)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
		लट्	
प्र० पु०	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति
म० पु०	स्नासि	स्नाथः	स्नाथ
उ० पु०	स्नामि	स्नावः	स्नामः
		लोट्	
प्र० पु०	स्नातु	स्नाताम्	स्नान्तु
म० पु०	स्नाहि	स्नातम्	स्नात
उ० पु०	स्नानि	स्नाव	स्नाम
		विधिलिङ्	
प्र० पु०	स्नायात्	स्नायाताम्	स्नायुः
म० पु०	स्नायाः	स्नायातम्	स्नायात
उ० पु०	स्नायाम्	स्नायाव	स्नायाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अस्नात्	अस्नाताम्	अस्नान्
म० पु०	अस्नाः	अस्नातम्	अस्नात
उ० पु०	अस्नाम्	अस्नाव	अस्नाम

लृट्

प्र० पु०	स्नास्यति	स्नास्यतः	स्नास्यन्ति
म० पु०	स्नास्यसि	स्नास्यथः	स्नास्यथ
उ० पु०	स्नास्यामि	स्नास्यावः	स्नास्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अस्नासीत्	अस्नासिष्टाम्	अस्नासिषुः
म० पु०	अस्नासीः	अस्नासिष्टम्	अस्नासिष्ट
उ० पु०	अस्नासिषम्	अस्नासिष्व	अस्नासिष्म

लिट्

प्र० पु०	सस्नौ	सस्नतुः	सस्नुः
म० पु०	सस्निथ	सस्नथुः	सस्न
उ० पु०	सस्नौ	सस्निव	सस्निम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासुः
म० पु०	स्नायाः	स्नायास्तम्	स्नायास्त
उ० पु०	स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म

लृङ्

प्र० पु०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
म० पु०	अस्नास्यः	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
उ० पु०	अस्नास्यम्	अस्नास्याव	अस्नास्याम

लुट्

प्र० पु०	स्नाता	स्नातारौ	स्नातारः
म० पु०	स्नातासि	स्नातास्थः	स्नातास्थ
उ० पु०	स्नातास्मि	स्नातास्वः	स्नातास्मः

परस्मैदी या-धातु (जाना)

लट्

प्र० पु०	याति	यातः	यान्ति
म० पु०	यासि	याथः	याथ
उ० पु०	यामि	यावः	यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	यातु	याताम्	यान्तु
म० पु०	याहि	यातम्	यात
उ० पु०	यानि	याव	याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायाताम्	यायुः
म० पु०	यायाः	यायातम्	यायात
उ० पु०	यायाम्	यायाव	यायाम

लङ्

प्र० पु०	अयात्	अयाताम्	अयुः
म० पु०	अयाः	अयातम्	अयात
उ० पु०	अयाम्	अयाव	अयाम

लृट्

प्र० पु०	यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति
म० पु०	यास्यसि	यास्यथः	यास्यथ
उ० पु०	यास्यामि	यास्यावः	यास्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः
म० पु०	अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
उ० पु०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म

लिट्

प्र० पु०	ययौ	ययतु	ययुः
म० पु०	ययिथ	ययथुः	यय
उ० पु०	ययौ	ययिव	ययिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायास्ताम्	यायासुः
म० पु०	यायाः	यायास्तम्	यायास्त
उ० पु०	यायासम्	यायास्व	यायास्म

लुट्

प्र० पु०	याता	यातारौ	यातारः
म० पु०	यातासि	यातास्थः	यातास्थ
उ० पु०	यातास्मि	यातास्वः	यातास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
म० पु०	अयास्यः	अयास्यतम्	अयास्यत
उ० पु०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

परस्मैपदी शास्-धातु (शासन करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	शास्ति	शिष्टः	शासति
म० पु०	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ट
उ० पु०	शास्मि	शिष्वः	शिष्म

लोट्

प्र० पु०	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
म० पु०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उ० पु०	शासानि	शासाव	शासाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उ० पु०	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

लङ्

प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
म० पु०	अशाः	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

लृट्

प्र० पु०	शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति
म० पु०	शासिष्यसि	शासिष्यथः	शासिष्यथ
उ० पु०	शासिष्यामि	शासिष्यावः	शासिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
म० पु०	अशिषः	अशिषतम्	अशिषत
उ० पु०	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम

लिट्

प्र० पु०	शशास	शशासतुः	शशासुः
म० पु०	शशासिथ	शशासथुः	शशास
उ० पु०	शशास	शशासिव	शशासिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

लुट्

प्र० पु०	शासिता	शासितारौ	शासितारः
म० पु०	शासितासि	शासितास्थः	शासितास्थ
उ० पु०	शासितास्मि	शासितास्वः	शासितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
म० पु०	अशासिष्यः	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
उ० पु०	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

उभय-पदी ब्रू-धातु बोलना (परस्मैपदी)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति
म० पु०	ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु, ब्रूतात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि, ब्रूतात्	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

लिङ्

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
म० पु०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

लङ्

प्र० पु०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रूवन्
म० पु०	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.

लृट्

प्र० पु०	वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति
म० पु०	वक्ष्यसि	वक्ष्यथः	वक्ष्यथ
उ० पु०	वक्ष्यामि	वक्ष्यावः	वक्ष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्
म० पु०	अवोचः	अवोचतम्	अवोचत
उ० पु०	अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम

लिट्

प्र० पु०	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः
म० पु०	उवचिथ	ऊचथुः	ऊच
उ० पु०	उवाच	ऊचिव	ऊचिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः
म० पु०	उच्याः	उच्यास्तम्	उच्यास्त
उ० पु०	उच्यासम्	उच्यास्व	उच्यास्म

लुट्

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासि	वक्तास्थः	वक्तास्थ
उ० पु०	वक्तास्मि	वक्तास्वः	वक्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्यः	अवक्ष्यतम्	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

परस्मैपदी रुद्-धातु (रोना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उ० पु०	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

लङ्

प्र० पु०	अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
म० पु०	अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उ० पु०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

लृट्

प्र० पु०	रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति
म० पु०	रोदिष्यसि	रोदिष्यथः	रोदिष्यथ
उ० पु०	रोदिष्यामि	रोदिष्यावः	रोदिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः
म० पु०	अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट
उ० पु०	अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्म

लिट्

प्र० पु०	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
म० पु०	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
उ० पु०	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यास्तम्	रुद्यास्त
उ० पु०	रुद्यासम्	रुद्यास्व	रुद्यास्म

लुट्

प्र० पु०	रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः
म० पु०	रोदितासि	रोदितास्थः	रोदितास्थ
उ० पु०	रोदितास्मि	रोदितास्वः	रोदितास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्
म० पु०	अरोदिष्यः	अरोदिष्यतम्	अरोदिष्यत
उ० पु०	अरोदिष्यम्	अरोदिष्याव	अरोदिष्याम

ब्रू-धातु आत्मने पदी (बोलना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ब्रूते	ब्रवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट्

प्र० पु०	ब्रताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ० पु०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

लङ्

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
म० पु०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्र ध्वम्
उ० पु०	अब्र वि	अब्रूमहि	अब्रूमहि

लृङ्

प्र० पु०	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
म० पु०	वक्ष्यसे	वक्ष्येथे	वक्ष्यध्वे
उ० पु०	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
म० पु०	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
उ० पु०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
म० पु०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उ० पु०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्ठाः	वक्षीयास्थाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीवहि	वक्षीमहि

लुट्

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
उ० पु०	वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
म० पु०	अवक्ष्यथाः	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

आत्मनेपदी आस्-धातु (बैठना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	आस्ते	आसाते	आसते
म० पु०	आस्से	आसाथे	आध्वे
उ० पु०	आसे	आस्वहे	आस्महे

लोट्

प्र० पु०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
म० पु०	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसै	आसावहै	आसामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
म० पु०	आसीथाः	आसीयाथा	आसीध्वम्
उ० पु०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	आस्त	आसाताम्	आसत
म० पु०	आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसि	आस्वहि	आस्महि

लृट्

प्र० पु०	आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते
म० पु०	आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे
उ० पु०	आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
म० पु०	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिध्वम्
उ० पु०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

लिट्

प्र० पु०	आसाञ्चके	आसाञ्चक्राते	आसाञ्चक्रिरे
म० पु०	आसाञ्चकृषे	आसाञ्चक्राथे	आसाञ्चकृढ्वे
उ० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चकृवहे	आसाञ्चकृमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्
म० पु०	आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्
उ० पु०	आसिषीय	आसिषीवहि	आसिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	आसिता	आसितारौ	आसितारः
म० पु०	आसितासि	आसितासाथे	आसिताध्वे
उ० पु०	आसिताहे	आसितास्वहे	आसितास्महे

लृङ्

प्र० पु०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त
म० पु०	आसिष्यथाः	आसिष्येथाम्	आसिष्यध्वम्
उ० पु०	आसिष्ये	आसिष्यावहि	आसिष्यामहि

आत्मनेपदी (अधि) इङ् (अध्ययन करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उ० पु०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ० पु०	अध्यये	अध्ययावहै	अध्ययामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म० पु०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ० पु०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लङ्

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

लृट्

प्र० पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
म० पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उ० पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
म० पु०	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्, ध्वम्
उ० पु०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

लिट्

प्र० पु०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० प०	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
म० पु०	अध्येषीष्ठाः	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीध्वम्
उ० पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

लुट्

प्र० पु०	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
म० पु०	अध्येतासे	अध्येताआथे	अध्येताध्वे
उ० पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
म० पु०	अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि

आत्मनेपदी शीङ्-धातु (शयन करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शये	शेवहे	शेमहे

लोट्

प्र० प०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

लङ्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिध्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
म० पु०	शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे
उ० पु०	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीध्वम्
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितारः
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

जुहोत्यादिगण

परस्मैपदी हु-धातु (हवन करना)

लट्

प्र० पु०	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति
म० पु०	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ
उ० पु०	जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः

लोट्

प्र० पु०	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
म० पु०	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उ० पु०	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
म० पु०	जुहुयाः	जुहुयाताम्	जुहुयात
उ० पु०	जुहुयाम	जुहुया	जुहुयाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः
म० पु०	अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत
उ० पु०	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम

लृट्

प्र० पु०	होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति
म० पु०	होष्यसि	होष्यथः	होष्यथ
उ० पु०	होष्यामि	होष्यावः	होष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अहौषीत्	अहोष्टाम्	अहोषुः
म० पु०	अहौषीः	अहोष्टम्	अहोष्ट
उ० पु०	अहौषम्	अहोष्व	अहोष्म

लिट्

प्र० पु०	जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः
म० पु०	जुहविथ	जुहुवथुः	जुहुव
उ० पु०	जुहाव	जुहुविव	जुहुविम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः
म० पु०	हूयाः	हूयास्तम्	हूयास्त
उ० पु०	हूयासम्	हूयास्व	हूयास्म

लुट्

प्र० पु०	होता	होतारौ	होतारः
म० पु०	होतासि	होतास्थः	होतास्थ
उ० पु०	होतास्मि	होतास्वः	होतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्
म० पु०	अहोष्यः	अहोष्यतम्	अहोष्यत
उ० पु०	अहोष्यम्	अहोष्याव	अहोष्याम

परस्मैपदी धा-धातु (धारण करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	दधाति	धत्तः	दधति
म० पु०	दधासि	धत्थः	धत्थ
उ० पु०	दधामि	दध्वः	दध्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	दधातु	धत्ताम्	दधतु
म० पु०	धेहि	धत्तम्	धत्त
उ० पु०	दधानि	दधाव	दधाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः
म० पु०	दध्याः	दध्यातम्	दध्यात
उ० पु०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम

लङ्

प्र० पु०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
म० पु०	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उ० पु०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

लृट्

प्र० पु०	धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति
म० पु०	धास्यसि	धास्यथः	धास्यथ
उ० पु०	धास्यामि	धास्यावः	धास्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अधात्	अधाताम्	अधुः
म० पु०	अधाः	अधातम्	अधात
उ० पु०	अधाम्	अधाव	अधाम

लिट्

प्र० पु०	दधौ	दधतुः	दधुः
म० पु०	दधिथ	दधथुः	दध
उ० पु०	दधौ	दधिव	दधिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासुः
म० पु०	धेयाः	धेयास्तम्	धेयास्त
उ० पु०	धेयासम्	धेयास्व	धेयास्म

लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	ातारः
म० पु०	धातासि	धातास्थः	धातास्थ
उ० पु०	धातास्मि	धातास्वः	धातास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अध्यास्यत्	अध्यास्यताम्	अध्यास्यन्
म० पु०	अध्यास्यः	अध्यास्यतम्	अध्यास्यत
उ० पु०	अध्यास्यम्	अध्यास्याव	अध्यास्याम

परस्मैपदी हा-धातु (छोड़ना)

लट्

प्र० पु०	जहाति	जहितः	जहति
म० पु०	जहासि	जहिथः	जहिथ
उ० पु०	जहामि	जहिवः	जहिमः

लोट्

प्र० पु०	जहातु	जहिताम्	जहतु
म० पु०	जहाहि	जहितम्	जहित
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः
म० पु०	जह्याः	जह्यातम्	जह्यात
उ० पु०	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

लङ्

प्र० पु०	अजहात्	अजहिताम्	अजहुः
म० पु०	अजहः	अजहितम्	अजहित
उ० पु०	अजहाम्	अजहिव	अजहिम

लृट्

प्र० पु०	हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति
म० पु०	हास्यसि	हास्यथः	हास्यथ
उ० पु०	हास्यामि	हास्यावः	हास्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः
म० पु०	अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट
उ० पु०	अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म

लिट्

प्र० पु०	जहौ	जहतुः	जहुः
म० पु०	जहिथ	जहथुः	जह
उ० पु०	जहौ	जहिव	जहिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः
म० पु०	हेयाः	हेयास्तम्	हेयास्त
उ० पु०	हेयासम्	हेयास्व	हेयास्म

लुट्

प्र० पु०	हाता	हातारौ	हातारः
म० पु०	हातासि	हातास्थः	हातास्थ
उ० पु०	हातास्मि	हातास्वः	हातास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्
म० पु०	अहास्यः	अहास्यतम्	अहास्यत
उ० पु०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

परस्मैपदी भी-धातु (डरना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	बिभेति	बिभीतः	बिभ्यति
म० पु०	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
उ० पु०	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः

लोट्

प्र० पु०	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
म० पु०	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
उ० पु०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
म० पु०	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
उ० पु०	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम

लङ्

प्र० पु०	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभीयुः
म० पु०	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत
उ० पु०	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
म० पु०	भेष्यसि	भेष्यथः	भेष्यथ
उ० पु०	भेष्यामि	भेष्यावः	भेष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
म० पु०	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ० पु०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

लिट्

प्र० पु०	बिभयामास	बिभयामासतुः	बिभयामासुः
म० पु०	बिभयामासिथ	बिभयामासथुः	बिभयामास
उ० पु०	बिभयामास	बिभयामासिव	बिभयामासिम

आशीर्लिङ

प्र० पु०	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
म० पु०	भीयाः	भीयास्तम्	भीयास्त
उ० पु०	भीयासम्	भीयास्व	भीयास्म

लुट्

प्र० पु०	भेता	भेतारौ	भेतारः
म० पु०	भेतासि	भेतास्थः	भेतास्थ
उ० पु०	भेतास्मि	भेतास्वः	भेतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
म० पु०	अभेष्यः	अभेष्यतम्	अभेष्यत
उ० पु०	अभेष्यम्	अभेष्याव	अभेष्याम

परस्मैपदी दा-धातु (देना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

लोट्

प्र० पु०	ददातु, दत्तात्	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि, दत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

लङ्

म० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्याताम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

लिट्

प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ,	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

लुङ्

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदुः
म० पु०	अदाः	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
म० पु०	देयाः	देयास्तम्	देयास्त
उ० पु०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासि	दातास्थः	दातास्थ
उ० पु०	दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
म० पु०	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
उ० पु०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

आत्मनेपदी धा-धातु (धारण करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	धत्ते	दधाते	दधते
म० पु०	धत्से	दधाथे	दध्वे
उ० पु०	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट्

प्र० पु०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म० पु०	धत्स्व	दधाथाम्	दधध्वम्
उ० पु०	दधै	दधावहै	दधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दधीत्	दधीयाताम्	दधीरन्
म० पु०	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ० पु०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

लङ्

प्र० पु०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
म० पु०	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

लृट्

प्र० पु०	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
म० पु०	धास्यसे	धास्येथे	धास्यध्वे
उ० पु०	धास्ये	धास्यावहे	धास्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
म० पु०	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिध्वम्
उ० पु०	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	दधे	दधाते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
उ० पु०	दधे	दधिवहे	दधिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
म० पु०	धासीष्ठाः	धासीयास्थाम्	धासीध्वम्
उ० पु०	धासीय	धासीवहि	धासीमहि

लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातारः
म० पु०	धातासे	धातासाथे	धाताध्वे
उ० पु०	धाताहे	धातास्वहे	धातास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त
म० पु०	अधास्यथाः	अधास्येथाम्	अधास्यध्वम्
उ० पु०	अधास्ये	अधास्यावहि	अधास्यामहि

आत्मनेपदी दा-धातु (देना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथेः	दद्ध्वे
उ० पु०	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहै	ददामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
म० पु०	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
उ० पु०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिवादिगण

परस्मैपदी दिव्–धातु (क्रीडा आदि अर्थ में)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः
म० पु०	दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

लुट्

प्र० पु०	देविता	देवितारौ	देवितारः
म० पु०	देवितासि	देवितास्थः	देवितास्थ
उ० पु०	देवितास्मि	देवितास्वः	देवितास्मः

लृट्

प्र० पु०	देविष्यतः	देविष्यतः	देविष्यन्ति
म० पु०	देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ
उ० पु०	देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः

लोट्

प्र० पु०	दीव्यतु, दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ्

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
म० पु०	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः
म० पु०	अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः
म० पु०	दीव्याः	दीव्यास्तम्	दीव्यास्त
उ० पु०	दीव्यासम्	दीव्यास्व	दीव्यास्म

लृङ्

प्र० पु०	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्
म० पु०	अदेविष्यः	अदेविष्यतम्	अदेविष्यत
उ० पु०	अदेविष्यम्	अदेविष्याव	अदेविष्याम

परस्मैपदी कुप्-धातु (कोप करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति
म० पु०	कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ
उ० पु०	कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः

लोट्

प्र० पु०	कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
म० पु०	कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत
उ० पु०	कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः
म० पु०	कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत
उ० पु०	कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम

लङ्

प्र० पु०	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
म० पु०	अकुप्यः	अकुप्यतम्	अकुप्यत
उ० पु०	अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति
म० पु०	कोपिष्यसि	कोपिष्यथः	कोपिष्यथ
उ० पु०	कोपिष्यामि	कोपिष्यावः	कोपिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
म० पु०	अकुपः	अकुपतम्	अकुपत
उ० पु०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम

लिट्

प्र० पु०	चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः
म० पु०	चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप
उ० पु०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः
म० पु०	कुप्याः	कुप्यास्तम्	कुप्यास्त
उ० पु०	कुप्यासम्	कुप्यास्व	कुप्यास्म

लुट्

प्र० पु०	कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः
म० पु०	कोपितासि	कोपितास्थः	कोपितास्थ
उ० पु०	कोपितास्मि	कोपितास्वः	कोपितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्
म० पु०	अकोपिष्यः	अकोपिष्यतम्	अकोपिष्यत
उ० पु०	अकोपिष्यम्	अकोपिष्याव	अकोपिष्याम

आत्मनेपदी जन्-धातु (पैदा होना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जाय	जायावहै	जायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

लङ्

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

लृट्

प्र० पु०	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
म० पु०	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
उ० पु०	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
म० पु०	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिध्वम्
उ० पु०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	जनिषीरन्
म० पु०	जनिषीष्ठाः	जनिषीयास्थाम्	जनिषीध्वम्
उ० पु०	जनिषीय	जनिषीवहि	जनिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	जनिता	जनितारौ	जनितारः
म० पु०	जनितासे	जनितासाथे	जनिताध्वे
उ० पु०	जनिताहे	जनितास्वहे	जनितास्महे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त
म० पु०	अजनिष्यथाः	अजनिष्येथाम्	अजनिष्यध्वम्
उ० पु०	अजनिष्ये	अजनिष्यावहि	अजनिष्यावहि

आत्मनेपदी विद्-धातु (होना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
म० पु०	विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

लोट्

प्र० पु०	विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्
म० पु०	विद्यस्व	विद्येथाम्	विद्यध्वम्
उ० पु०	विद्यै	विद्यावहै	विद्यामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	विद्येत	विद्येयाताम्	विद्येरन्
म० पु०	विद्येथाः	विद्येयाथाम्	विद्येध्वम्
उ० पु०	विद्येय	विद्येवहि	विद्येमहि

लङ्

प्र० पु०	अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त
म० पु०	अविद्यथाः	अविद्येथाम्	अविद्यध्वम्
उ० पु०	अविद्ये	अविद्यावहि	अविद्यामहि

लृट्

प्र० पु०	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
म० पु०	वेत्स्यसे	वेत्स्येथे	वेत्स्यध्वे
उ० पु०	वेत्स्ये	वेत्स्यावहे	वेत्स्यामहे

लिट्

प्र० पु०	विविदे	विविदाते	विविदरे
म० पु०	विविदिषे	विविदाथे	विविदिध्वे
उ० पु०	विवदे	विविदिवहे	विविदिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अवित्त	अवित्सताम्	अवित्सत
म० पु०	अवित्थाः	अवित्साथाम्	अविद्ध्वम्
उ० पु०	अवित्सि	अवित्स्वहि	अवित्स्महि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वित्सीष्ट	वित्सीयास्ताम्	वित्सीरन्
म० पु०	वित्सीष्ठाः	वित्सीयास्थाम्	वित्सीध्वम्
उ० पु०	वित्सीय	वित्सीवहि	वित्सीमहि

लुट्

प्र० पु०	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तारः
म० पु०	वेत्तासे	वेत्तासाथे	वेत्ताध्वे
उ० पु०	वेत्ताहे	वेत्तास्वहे	वेत्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम्	अवेत्स्यन्त
म० पु०	अवेत्स्यथाः	अवेत्स्येथाम्	अवेत्स्यध्वम्
उ० पु०	अवेत्स्ये	अवेत्स्यावहि	अवेत्स्यामहि

परस्मैपदी षुञ्-धातु स्वादिगण (नहलाना, रस निकालना)

लट्

	एक० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति
म० पु०	सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ
उ० पु०	सुनोमि	सुनुवः, सुन्वः	सुनुमः, सुन्मः

लिट्

प्र० पु०	सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः
म० पु०	सुषविथ, सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव
उ० पु०	सुषाव, सुषव	सुषुविव	सुषुविम

लुट्

प्र० पु०	सोता	सोतारौ	सोतारः
म० पु०	सोतासि	सोतास्थः	सोतास्थ
उ० पु०	सोतास्मि	सोतास्वः	सोतास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति
म० पु०	सोष्यसि	सोष्यथः	सोष्यथ
उ० पु०	सोष्यामि	सोष्यावः	सोष्यामः

लोट्

प्र० पु०	सुनोतु, सुनुतात्	सुनुताम्	सुन्वन्तु
म० पु०	सुनु, सुनुतात्	सुनुतम्	सुनुत
उ० पु०	सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम

लङ्

प्र० पु०	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्
म० पु०	असुनोः	असुनुतम्	असुनुत
उ० पु०	असुनवम्	असुनुव, असुन्व	असुनुम, असुन्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः
म० पु०	सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात
उ० पु०	सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः
म० पु०	सूयाः	सूयास्तम्	सूयास्त
उ० पु०	सूयासम्	सुयास्व	सूयास्म

लुङ्

प्र० पु०	असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः
म० पु०	असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट
उ० पु०	असाविषम्	असाविष्व	असाविष्म

लृङ्

प्र० पु०	असोष्यत्	असोष्यताम्	असोष्यन्
म० पु०	असोष्यः	असोष्यतम्	असोष्यत
उ० पु०	असोष्यम्	असोष्याव	असोष्याम

परस्मैपदी आप्-धातु (पाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
म० पु०	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
उ० पु०	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
म० पु०	आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उ० पु०	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

लङ्

प्र० पु०	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म० पु०	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम

लृट्

प्र० पु०	आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति
म० पु०	आप्स्यसि	आप्स्यथः	आप्स्यथ
उ० पु०	आप्स्यामि	आप्स्यावः	आप्स्यामः

लुङ्

प्र० पु०	आपत्	आपताम्	आपन्
म० पु०	आपः	आपतम्	आपत
उ० पु०	आपम्	आपाव	आपाम

लिट्

प्र० पु०	आप	आपतुः	आपुः
म० पु०	आपिथ	आपथुः	आप
उ० पु०	आप	आपिव	आपिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः
म० पु०	आप्याः	आप्यास्तम्	आप्यास्त
उ० पु०	आप्यासम्	आप्यास्व	आप्यास्म

लुट्

प्र० पु०	आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः
म० पु०	आप्तासि	आप्तास्थः	आप्तास्थ
उ० पु०	आप्तास्मि	आप्तास्वः	आप्तास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्
म० पु०	आप्स्यः	आप्स्यतम्	आप्स्यत
उ० पु०	आप्स्यम्	आप्स्याव	आप्स्याम

परस्मैपदी चि-धातु (इकट्ठा करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
म० पु०	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
उ० पु०	चिनोमि	चिन्वः, चिनुवः	चिन्मः, चिनुमः

लोट्

प्र० पु०	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
म० पु०	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
उ० पु०	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः
म० पु०	चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात
उ० पु०	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

लङ्

प्र० पु०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
म० पु०	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
उ० पु०	अचिनवम्	अचिन्व, अचिनुव	अचिन्म, अचिनुम

लृट्

प्र० पु०	चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति
म० पु०	चेष्यसि	चेष्यथः	चेष्यथ
उ० पु०	चेष्यामि	चेष्यावः	चेष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः
म० पु०	अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट
उ० पु०	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः
म० पु०	चिचयिथ	चिच्यथुः	चिच्य
उ० पु०	चिचेय	चिच्यिव	चिच्यिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः
म० पु०	चीयाः	चीयास्तम्	चीयास्त
उ० पु०	चीयासम्	चीयास्व	चीयास्म

लुट्

प्र० पु०	चेता	चेतारौ	चेतारः
म० पु०	चेतासि	चेतास्थः	चेतास्थ
उ० पु०	चेतास्मि	चेतास्वः	चेतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्
म० पु०	अचेष्यः	अचेष्यतम्	अचेष्यत
उ० पु०	अचेष्यम्	अचेष्याव	अचेष्याम

परस्मैपदी वृ-धातु (चुनना, वरण करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
उ० पु०	वृणोमि	वृणुवः, वृण्वः	वृणुमः, वृण्मः

लोट्

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

आशीर्लिङ

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
म० पु०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
म० पु०	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उ० पु०	अवृणवम्	अवृणुव, अवृण्व	अवृणुम, अवृण्म

लृट्

प्र० पु०	वरिष्यति	वरिष्यतः	वरिष्यन्ति
म० पु०	वरिष्यसि	वरिष्यथः	वरिष्यथ
उ० पु०	वरिष्यामि	वरिष्यावः	वरिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अवारीत्	अवारिष्टाम्	अवारिषुः
म० पु०	अवारीः	अवारिष्टम्	अवारिष्ट
उ० पु०	अवारिषम्	अवारिष्व	अवारिष्म

लिट्

प्र० पु०	ववार	वव्रतुः	वव्रुः
म० पु०	ववारिथ	वव्रथुः	वव्र
उ० पु०	ववार	ववृव:	ववृम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	व्रियात्	व्रियास्ताम्	व्रियासुः
म० पु०	व्रियाः	व्रियास्तम्	व्रियास्त
उ० पु०	व्रियासम्	व्रियास्व	व्रियास्म

लुट्

प्र० पु०	वरिता	वरितारौ	वरितारः
म० पु०	वरितासि	वरितास्थः	वरितास्थ
उ० पु०	वरितास्मि	परितास्वः	वरितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अवरिष्यत्	अवरिष्यताम्	अवरिष्यन्
म० पु०	अवरिष्यः	अवरिष्यतम्	अवरिष्यत
उ० पु०	अवरिष्यम्	अवरिष्याव	अवरिष्याम

परस्मैपदी शक्-धातु (सकना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
म० पु०	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
उ० पु०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

लङ्

प्र० पु०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अक्नुवन्
म० पु०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उ० पु०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

लृट्

प्र० प्र०	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
म० पु०	शक्ष्यसि	शक्ष्यथः	शक्ष्यथ
उ० पु०	शक्ष्यामि	शक्ष्यावः	शक्ष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
म० पु०	अशकः	अशकतम्	अशकत
उ० पु०	अशकम्	अशकाव	अशकाम

लिट्

प्र० पु०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
म० पु०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथुः	शेक
उ० पु०	शशाक	शेकिव	शेकिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
म० पु०	शक्याः	शक्यास्तम्	शक्यास्त
उ० पु०	शक्यास्म्	शक्यास्म्	शक्यास्म

लुट्

प्र० पु०	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
म० पु०	शक्तासि	शक्तास्थः	शक्तास्थ
उ० पु०	शक्तास्मि	शक्तास्वः	शक्तास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्
म० पु०	अशक्ष्यः	अशक्ष्यतम्	अशक्ष्यत
उ० पु०	अशक्ष्यम्	अशक्ष्याव	अशक्ष्याम

आत्मनेपदी षुञ्-धातु (नहलाना, रस निकालना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
म० पु०	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
उ० पु०	सुन्वे	सुन्वहे, सुनुवहे	सुन्महे, सुनुमहे

लोट्

प्र० पु०	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
म० पु०	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
उ० पु०	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
म० पु०	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
उ० पु०	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

लङ्

प्र० पु०	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
म० पु०	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
उ० पु०	असुन्वि	असुन्वहि	असुन्महि

लृङ्

प्र० पु०	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
म० पु०	सोष्यसे	सोष्येथे	सोष्यध्वे
उ० पु०	सोष्ये	सोष्यावहे	सोष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
म० पु०	असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम्
उ० पु०	असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
म० पु०	सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
उ० पु०	सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्	सोषरीन्
म० पु०	सोषीष्ठाः	सोषीयास्थाम्	सोषीढ्वम्
उ० पु०	सोषीय	सोषीवहि	सोषीमहि

लुट्

प्र० पु०	सोता	सोतारौ	सोतारः
म० पु०	सोतासे	सोतासाथे	सोताध्वे
उ० पु०	सोताहे	सोतास्वहे	सोतास्महे

लृङ्

प्र० पु०	असोष्यत	असोष्येताम्	असोष्यन्त
म० पु०	असोष्यथाः	असोष्येथाम्	असोष्यध्वम्
उ० पु०	असोष्ये	असोष्यावहि	असोष्यामहि

आत्मनेपदी चि-धातु (इकट्ठा करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
म० पु०	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
उ० पु०	चिन्वे	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

लोट्

प्र० पु०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
म० पु०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
उ० पु०	चिनवै	चिन्वावहै	चिन्वामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
म० पु०	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ० पु०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
म० पु०	अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
उ० पु०	अचिन्वि	अचिन्वहि	अचिन्महि

लृट्

प्र० पु०	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
म० पु०	चेष्यसे	चेष्येथे	चेष्यध्वे
उ० पु०	चेष्ये	चेष्यावहे	चेष्यावहे

लुङ्

प्र० पु०	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
म० पु०	अचेष्ठाः	अचेषाथाम्	अचेढ्वम्
उ० पु०	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि

लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
म० पु०	चेषीष्ठाः	चेषीयास्थाम्	चेषीढ्वम्
उ० पु०	चेषीय	चेषीवहि	चेषीमहि

लुट्

प्र० पु०	चेता	चेतारौ	चेतारः
म० पु०	चेतासे	चेतासाथे	चेताध्वे
उ० पु०	चेताहे	चेतास्वहे	चेतास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त
म० पु०	अचेष्यथाः	अचेष्येथाम्	अचेष्यध्वम्
उ० पु०	अचेष्ये	अचेष्यावहि	अचेष्यामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपदी वृ-धातु (वरण करना, चुनना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृण्वहे, वृणुवहे	वृण्महे, वृणुमहे

लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

लङ्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृण्वहि	अवृण्महि

लृङ्

प्र० पु०	वरिष्यते	वरिष्येते	वरिष्यन्ते
म० पु०	वरिष्यसे	वरिष्येथे	वरिष्यध्वे
उ० पु०	वरिष्ये	वरिष्यावहे	वरिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अवरीष्ट	अवरीषाताम्	अवरीषत
म० पु०	अवरीष्ठाः	अवरीषाथाम्	अवरीढ्वम्
उ० पु०	अवरीषि	अवरीष्वहि	अवरीष्महि

लिट्

प्र० पु०	वव्रे	वव्राते	वव्रिरे
म० पु०	ववृषे	वव्राथे	ववृध्वे
उ० पु०	वव्रे	ववृवहे	ववृमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वरिषीष्ट	वरिषीयास्ताम्	वरिषीरन्
म० पु०	वरिषीष्ठाः	वरिषीयास्थाम्	वरिषीध्वम्
उ० पु०	वरिषीय	वरिषीवहि	वरिषीमहि

लुट्

प्र० पु०	वरिता	वरितारौ	वरितारः
म० पु०	वरितासे	वरितासाथे	वरिताध्वे
उ० पु०	वरिताहे	वरितास्वहे	वरितास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अवरिष्यत	अवरिष्येताम्	अवरिष्यन्त
म० पु०	अवरिष्यथाः	अवरिष्येथाम्	अवरिष्यध्वम्
उ० पु०	अवरिष्ये	अवरिष्यावहिं	अवरिष्यामहि

परस्मैपदी तुद्-धातु (पीड़ा पहुँचाना)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
		लट्	
प्र० पु०	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदावः	तुदामः
		लुङ्	
प्र० पु०	अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः
म० पु०	अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
उ० पु०	अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म
		लृङ्	
प्र० पु०	अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	अतोत्स्यन्
म० पु०	अतोत्स्यः	अतोत्स्यतम्	अतोत्स्यत
उ० पु०	अतोत्स्यम्	अतोत्स्याव	अतोत्स्याम
		लिट्	
प्र० पु०	तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः
म० पु०	तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद
उ० पु०	तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
म० पु०	तोत्तासि	तोत्तास्थः	तोत्तास्थ
उ० पु०	तोत्तास्मि	तोत्तास्वः	तोत्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति
म० पु०	तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ
उ० पु०	तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः

लोट्

प्र० पु०	तुदतु, तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद, तुदतात्	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

लङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः
म० पु०	तुद्याः	तुद्यास्तम्	तुद्यास्त
उ० पु०	तुद्यासम्	तुद्यास्व	तुद्यास्म

परस्मैपदी इष्-धातु (इच्छा करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
म० पु०	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उ० पु०	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
म० पु०	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उ० पु०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
म० पु०	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उ० म०	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

लङ्

प्र० पु०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
म० पु०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उ० पु०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

लृट्

प्र० पु०	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
म० पु०	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उ० पु०	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः
म० पु०	ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट
उ० पु०	ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म

लिट्

प्र० पु०	इयेष	ईषतुः	ईषुः
म० पु०	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
उ० पु०	इयेष	ईषिव	ईषिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः
म० पु०	इष्याः	इष्यास्तम्	इष्यास्त
उ० पु०	इष्यासम्	इष्यास्व	इष्यास्म

लुट्

प्र० पु०	एषिता	एषितारौ	एषितारः
म० पु०	एषितासि	एषितास्थः	एषितास्थ
उ० पु०	एषितास्मि	एषितास्वः	एषितास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	ऐषिष्यत	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्
म० पु०	ऐषिष्यः	ऐषिष्यतम्	ऐषिष्यत
उ० पु०	ऐषिष्यम्	ऐषिष्याव	ऐषिष्याम

परस्मैपदी पृच्छ-धातु (पूछना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
म० पु०	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उ० पु०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लोट्

प्र० पु०	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
म० पु०	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उ० पु०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु5	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
म० पु०	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उ० पु०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

लङ्

प्र० पु०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
म० पु०	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उ० पु०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

लृट्

प्र० पु०	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
म० पु०	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उ० पु०	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
म० पु०	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
उ० पु०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
म० पु०	पप्रच्छिथ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पृच्छ्यात्	पृच्छ्यास्तम्	पृच्छ्यासुः
म० पु०	पृच्छ्याः	पृच्छ्यास्ताम्	पृच्छ्यास्त
उ० पु०	पृच्छ्यासम्	पृच्छ्यास्व	पृच्छ्यास्म

लुट्

प्र० पु०	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
म० पु०	प्रष्टासि	प्रष्टास्थः	प्रष्टास्थ
उ० पु०	प्रष्टास्मि	प्रष्टास्वः	प्रष्टास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्	अप्रक्ष्यन्
म० पु०	अप्रक्ष्यः	अप्रक्ष्यतम्	अप्रक्ष्यत
उ० पु०	अप्रक्ष्यम्	अप्रक्ष्याव	अप्रक्ष्याम

आत्मनेपदी तुद्-धातु (पीड़ा पहुँचना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
म० पु०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उ० पु०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

लोट्

प्र० पु०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
म० पु०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उ० पु०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
म० पु०	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उ० पु०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
म० पु०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उ० पु०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

लृट्

प्र० पु०	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
म० पु०	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
उ० पु०	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
म० पु०	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
उ० पु०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

लिट्

प्र० पु०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
म० पु०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
उ० पु०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	तुत्सीरन्
म० पु०	तुत्सीष्ठाः	तुत्सीयास्थाम्	तुत्सीध्वम्
उ० पु०	तुत्सीय	तुत्सीवहि	तुत्सीमहि

लुट्

प्र० पु०	तोत्ता	ता त्तारौ	तोत्तारः
म० पु०	तोत्तासे	तोत्तासाथे	तोत्ताध्वे
उ० पु०	तोत्ताहे	तोत्तास्वहे	तोत्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	अतोत्स्यन्त
म० पु०	अतोत्स्यथाः	अतोत्स्येथाम्	अतोत्स्यध्वम्
उ० पु०	अतोत्स्ये	अतोत्स्यावहि	अतोत्स्यामहि

रुधादिगण

परस्मैपदी रुध्-धातु (रोकना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः
म० पु०	रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध
उ० पु०	रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम

लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
म० पु०	रोद्धासि	रोद्धास्थः	रोद्धास्थ
उ० पु०	रोद्धास्मि	रोद्धास्वः	रोद्धास्मः

लृट्

प्र० पु०	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति
म० पु०	रोत्स्यसि	रोत्स्यथः	रोत्स्यथ
उ० पु०	रोत्स्यामि	रोत्स्यावः	रोत्स्यामः

लोट्

प्र० पु०	रुणद्धु, रुन्द्धात्	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु
म० पु०	रुन्द्धि, रुन्द्धात्	रुन्द्धम्	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

लङ्

प्र० पु०	अरुणत्, अरुणद्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुणः, अरुणत्	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
म० पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः
म० पु०	रुध्याः	रुध्यास्तम्	रुध्यास्त
उ० पु०	रुध्यासम्	रुध्यास्व	रुध्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्
म० पु०	अरुधः	अरुधतम्	अरुधत
उ० पु०	अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्
म० पु०	अरोत्स्यः	अरोत्स्यतम्	अरोत्स्यत
उ० पु०	अरोत्स्यम्	अरोत्स्याव	अरोत्स्याम

परस्मैपदी छिद्-धातु (काटना)

लट्

	एक व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
म० पु०	छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ
उ० पु०	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

लोट्

प्र० पु०	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
म० पु०	छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त
उ० पु०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
म० पु०	छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
उ० पु०	छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम

लङ्

प्र० पु०	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
म० पु०	अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उ० पु०	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

लृट्

प्र० पु०	छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति
म० पु०	छेत्स्यसि	छेत्स्यथः	छेत्स्यथ
उ० पु०	छेत्स्यामि	छेत्स्यावः	छेत्स्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अच्छिदत्	अच्चिदताम्	अच्छिदन्
म० पु०	अच्छिदः	अच्छिदनम्	अच्छिदत
उ० पु०	अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः
म० पु०	चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद
उ० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः
म० पु०	छिद्याः	छिद्यास्तम्	छिद्यास्त
उ० पु०	छिद्यासम्	छिद्यास्व	छिद्यास्म

लुट्

प्र० पु०	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
म० पु०	छेत्तासि	छेत्तास्थ	छेत्तास्थ
उ० पु०	छेत्तास्मि	छेत्तास्वः	छेत्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अच्छेत्स्यत्	अच्छेस्यताम्	अच्छेत्स्यन्
म० पु०	अच्छेत्स्यः	अच्छेत्स्यतम्	अच्छेत्स्यत
उ० पु०	अच्छेत्स्यम्	अच्छेत्स्याव	अच्छेत्स्याम

परस्मैपदी भुज्-धातु (रक्षा करना, खाना)

लट्

	एक व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
म० पु०	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ
उ० पु०	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

लोट्

प्र० पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
म० पु०	भुङ्ग्धि, भुङ्क्तात्	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उ० पु०	भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः
म० पु०	भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात
उ० पु०	भुंञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अभुनक्-ग्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
म० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उ० पु०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्जम

लृट्

प्र० पु०	भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति
म० पु०	भोक्ष्यसि	भोक्ष्यथः	भोक्ष्यथ
उ० पु०	भोक्ष्यामि	भोक्ष्यावः	भोक्ष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः
म० पु०	अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त
उ० पु०	अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म

लिट्

प्र० पु०	बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः
म० पु०	बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज
उ० पु०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः
म० पु०	भुज्याः	भुज्यास्तम्	भुज्यास्त
उ० पु०	भुज्यासम्	भुज्यास्व	भुज्यास्म

लुट्

प्र० पु०	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
म० पु०	भोक्तासि	भोक्तास्थः	भोक्तास्थ
उ० पु०	भोक्तास्मि	भोक्तास्वः	भोक्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्
म० पु०	अभोक्ष्यः	अभोक्ष्यतम्	अभोक्ष्यत
उ० पु०	अभोक्ष्यम्	अभोक्ष्याव	अभोक्ष्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपदी रुध्-धातु (रोकना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	रुन्धते	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लोट्

प्र० पु०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उ० पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

लङ्

प्र० पु०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्धत
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

लृट्

प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
म० पु०	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
उ० पु०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

लिट्

प्र० पु०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
म० पु०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिध्वे
उ० पु०	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
म० पु०	रुत्सीष्ठाः	रुत्सीयास्थाम्	रुत्सीध्वम्
उ० पु०	रुत्सीय	रुत्सीवहि	रुत्सीमहि

लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
म० पु०	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
उ० पु०	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त
म० पु०	अरोत्स्यथाः	अरोत्स्येथाम्	अरोत्स्याध्वम्
उ० पु०	अरोत्स्ये	अरोत्स्यावहि	अरोत्स्यामहि

आत्मनेपदी छिद्-धातु (काटना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्ध्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

लोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
उ० पु०	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

लङ्

प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्त्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्
उ० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

लृट्

प्र० पु०	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
म० पु०	छेत्स्यसे	छेत्स्येथे	छेत्स्यध्वे
उ० पु०	छेत्स्ये	छेत्स्यावहे	छेत्स्यामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अच्छित्त	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
म० पु०	अच्छित्थाः	अच्छित्साथाम्	अच्छिद्ध्वम्
उ० पु०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि

लिट्

प्र० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे
म० पु०	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे
उ० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	छित्सीष्ट	छित्सीयास्ताम्	छित्सीरन्
म० पु०	छित्सीष्ठाः	छित्सीयास्थाम्	छित्सीध्वम्
उ० पु०	छित्सीय	छित्सीवहि	छित्सीमहि

लुट्

प्र० पु०	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
म० पु०	छेत्तासे	छेत्तासाथे	छेत्ताध्वे
उ० पु०	छेत्ताहे	छेत्तास्वहे	छेत्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त
म० पु०	अच्छेत्स्यथाः	अच्चेत्स्येथाम्	अच्छेत्स्यध्वम्
उ० पु०	अच्छेत्स्ये	अच्छेत्स्यावहि	अच्छेत्स्यामहि

आत्मनेपदी भुज्-धातु (खाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लङ्

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

लृट्

प्र० पु०	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
म० पु०	भोक्ष्यसे	भोक्ष्येथे	भोक्ष्यध्वे
उ० पु०	भोक्ष्ये	भोक्ष्यावहे	भोक्ष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
म० पु०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
उ० पु०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि

लिट्

प्र० पु०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
म० पु०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
उ० पु०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	भुक्षीरन्
म० पु०	भुक्षीष्ठाः	भुक्षीयास्थाम्	भुक्षीध्वम्
उ० पु०	भुक्षीय	भुक्षीवहि	भुक्षीमहि

लुट्

प्र० पु०	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
म० पु०	भोक्तासे	भोक्तासाथे	भोक्ताध्वे
उ० पु०	भोक्ताहे	भोक्तास्वहे	भोक्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त
म० पु०	अभोक्ष्यथाः	अभोक्ष्येथाम्	अभोक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अभोक्ष्ये	अभोक्ष्यावहि	अभोक्ष्यामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तनादिगण

परस्मैपदी तन्-धातु (फैलाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
म० पु०	तनोषि	तनुथः	तनुथ
उ० पु०	तनोमि	तनुवः, तन्वः	तनुमः, तन्मः

लोट्

प्र० पु०	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
म० पु०	तनु	तनुतम्	तनुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः
म० पु०	तनुयाः	तनुयाथाम्	तनुयात
उ० पु०	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम

लङ्

प्र० पु०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म० पु०	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
उ० पु०	अतनवम्	अतनुव,अतन्व	अतनुम, अतन्म

लृङ्

प्र० पु०	तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति
म० पु०	तनिष्यसि	तनिष्यथः	तनिष्यथ
उ० पु०	तनिष्यामि	तनिष्यावः	तनिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषुः
म० पु०	अतानीः	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
उ० पु०	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म

लिट्

प्र० पु०	ततान	तेनतुः	तेनुः
म० पु०	तेनिथ	तेनथुः	तेन
उ० पु०	ततान	तेनिव	तेनिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः
म० पु०	तन्याः	तन्यास्तम्	तन्यास्त
उ० पु०	तन्यासम्	तन्यास्व	तन्यास्म

लुट्

प्र० पु०	तनिता	तनितारौ	तनितारः
म० पु०	तनितासि	तनितास्थः	तनितास्थ
उ० पु०	तनितास्मि	तनितास्वः	तनितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	अतनिष्यन्
म० पु०	अतनिष्यः	अतनिष्यतम्	अतनिष्यत
उ० पु०	अतनिष्यम्	अतनिष्याव	अतनिष्याम

उभयपदी कृ-धातु करना (परस्मैपदी)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट्

प्र० पु०	करोतु, कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

लङ्

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
म० पु०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उ० पु०	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

लिङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
म० पु०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार	चकृव	चकृम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	क्रियात	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
म० पु०	क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
उ० पु०	क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म

लुट्

प्र० पु०	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
म० पु०	कर्त्तासि	कर्त्तास्थः	कर्त्तास्थ
उ० पु०	कर्त्तास्मि	कर्त्तास्वः	कर्त्तास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
म० पु०	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
उ० पु०	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

आत्मनेपदी तन्-धातु (फैलाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म० पु०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ० पु०	तन्वे	तन्वहे	तन्महे

लोट्

प्र० पु०	तनुताम	तन्वाताम्	तन्वताम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ० पु०	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म० पु०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ० पु०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

लङ्

प्र० पु०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म० पु०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
उ० पु०	अतन्वि	अतन्वहि	अतन्महि

लृट्

प्र० पु०	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
म० पु०	तनिष्यसे	तनिष्येथे	तनिष्यध्वे
उ० पु०	तनिष्ये	तनिष्यवहे	तनिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
म० पु०	अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
उ० पु०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि

लिट्

प्र० पु०	तेने	तेनाते	तेनिरे
म० पु०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
उ० पु०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	तनिषीरन्
म० तु०	तनिषीष्ठाः	तनिषीयास्थाम्	तनिषीध्वम्
उ० पु०	तनिषीय	तनिषीवहि	तनिषीमहि

लुङ्

प्र० पु०	तनिता	तनितारौ	तनितारः
म० पु०	तनितासे	तनितासाथे	तनिताध्वे
उ० पु०	तनिताहे	तनितास्वहे	तनितास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	अतनिष्यथाः	अतनिष्येथाम्	अतनिष्यध्वम्
उ० पु०	अतनिष्ये	अतनिष्यावहे	अतनिष्यामहे

आत्मनेपदी कृ-धातु (करना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाते	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	करवै	करवावहै	करवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

लङ्

प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० पु०	अकुर्वथाः	अकुर्वताम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
म० पु०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृध्वम्
प्र० पु०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चक्रिषे	चक्राथे	चकृध्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
म० पु०	कृषीष्ठाः	कृषीयास्थाम्	कृषीढ्वम्
उ० पु०	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि

लुट्

प्र० पु०	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
म० पु०	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
उ० पु०	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
म० पु०	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
उ० पु०	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि

क्र्यादिगण

परस्मैपदी क्री-धातु (खरीदना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
म० पु०	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उ० पु०	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

लोट्

प्र० पु०	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
म० पु०	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उ० पु०	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
म० पु०	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ० पु०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

लङ्

प्र० पु०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म० पु०	अक्रीणीः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ० पु०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

लृट्

प्र० पु०	क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	क्रेष्यसि	क्रेष्यथः	क्रेष्यथ
उ० पु०	क्रेष्यामि	क्रेष्यावः	क्रेष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः
म० पु०	अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट
उ० पु०	अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म

लिट्

प्र० पु०	चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः
म० पु०	चिक्रयिथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय
उ० पु०	चिक्राय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः
म० पु०	क्रीयाः	क्रीयास्तम्	क्रीयास्त
उ० पु०	क्रीयासम्	क्रीयास्व	क्रीयास्म

लुट्

प्र० पु०	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
म० पु०	क्रेतासि	क्रेतास्थः	क्रेतास्थ
उ० पु०	क्रेतास्मि	क्रेतास्वः	क्रेतास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्
म० पु०	अक्रेष्यः	अक्रेष्यतम्	अक्रेष्यत
उ० पु०	अक्रेष्यम्	अक्रेष्याव	अक्रेष्याम्

परस्मैपदी ग्रह्-धातु (लेना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

लृट्

प्र० पु०	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति
म० पु०	ग्रहीष्यसि	ग्रहीष्यथः	ग्रहीष्यथ
उ० पु०	ग्रहीष्यामि	ग्रहीष्यावः	ग्रहीष्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
म० पु०	जग्रहिथ	जग्रहथुः	जग्रह
उ० पु०	जग्राह	जगृहिव	जगृहिम

लुट्

प्र० पु०	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
म० पु०	ग्रहीतासि	ग्रहीतास्थः	ग्रहीतास्थ
उ० पु०	ग्रहीतास्मि	ग्रहीतास्वः	ग्रहीतास्मः

लोट्

प्र० पु०	गृह्णातु, गृह्णीतात्	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण, गृह्णीतात्	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

लङ्

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
म० पु०	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

आशीर्लिङ्

म० पु०	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः
म० पु०	गृह्याः	गृह्यास्तम्	गृह्यास्त
उ० पु०	गृह्यासम्	गृह्यास्व	गृह्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषु
म० पु०	अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म

लृङ्

प्र० पु०	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्
म० पु०	अग्रहीष्यः	अग्रहीष्यतम्	अग्रहीष्यत
उ० पु०	अग्रहीष्यम्	अग्रहीष्याव	अग्रहीष्याम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी बन्ध्-धातु (बाँधना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति
म० पु०	बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ
उ० पु०	बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः

लोट

प्र० पु०	बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु
म० पु०	बधान	बध्नीतम्	बध्नीत
उ० पु०	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः
म० पु०	बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात
उ० पु०	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम

लङ्

प्र० पु०	अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्
म० पु०	अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत
उ० पु०	अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम

लृट्

प्र० पु०	भन्त्स्यति	भन्त्स्यतः	भन्त्स्यन्ति
म० पु०	भन्त्स्यसि	भन्त्स्यथः	भन्त्स्यथ
उ० पु०	भन्त्स्यामि	भन्त्स्यावः	भन्त्स्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अभान्त्सीत्	अबान्धाम्	अभान्त्सुः
म० पु०	अभान्त्सीः	अबान्धम्	अबान्ध
उ० पु०	अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म

लिट्

प्र० पु०	बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः
म० पु०	बबन्धिथ	बबन्धथुः	बबन्ध
उ० पु०	बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	बध्यात्	बध्यास्ताम्	बध्यासुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	वध्याः	वध्यास्तम्	वध्यास्त
उ० पु०	वध्यासम्	वध्यास्व	वध्यास्म

लुट्

प्र० पु०	बन्द्धा	बन्द्धारौ	बन्द्धारः
म० पु०	बन्द्धासि	बन्द्धास्थः	बन्द्धास्थ
उ० पु०	बन्द्धास्मि	बन्द्धास्वः	बन्द्धास्म

लृङ्

प्र० पु०	अभन्त्स्यत्	अभन्त्स्यताम्	अभन्त्स्यन्
म० पु०	अभन्त्स्यः	अभन्त्स्यतम्	अभन्त्स्यत
उ० पु०	अभन्त्स्यम्	अभन्त्स्याव	अगन्त्स्याम

परस्मैपदी ज्ञा-धातु (जानाना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म० पु०	जानासि	जानीथः	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीवः	जानीमः

लुङ्

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म

लृट्

प्र० पु०	अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्	अज्ञास्यन्
म० पु०	अज्ञास्यः	अज्ञास्यतम्	अज्ञास्यत
उ० पु०	अज्ञास्यम्	अज्ञास्याव	अज्ञास्याम

लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
म० पु०	ज्ञातासि	ज्ञातास्थः	ज्ञातस्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ० पु०	ज्ञातास्मि	ज्ञातास्वः	ज्ञातास्मः
		लृट्	
प्र० पु०	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
म० पु०	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उ० पु०	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः
		लोट्	
प्र० पु०	जानातु, जानीतात्	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि, जानीतात्	जानीतम्	जानीत
म० पु०	जानानि	जानाव	जानाम
		लङ्	
प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम
		विधिलिङ्	
प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम
		आशीर्लिङ्	
प्र० पु०	ज्ञायात्	ज्ञायास्ताम्	ज्ञायासुः
म० पु०	ज्ञायाः	ज्ञायास्तम्	ज्ञायास्त
उ० पु०	ज्ञायासम्	ज्ञायास्व	ज्ञायास्म

आत्मनेपदी क्री-धातु (खरीदना)

		लट्	
	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
		लोट्	
प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म० पु०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

लङ्

प्र० पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० पु०	अक्रीणीथाः	अक्रीणथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

लृट्

प्र० पु०	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
म० पु०	क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे
उ० पु०	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
म० पु०	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्
उ० पु०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

लिट्

प्र० पु०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म० पु०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
उ० पु०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
म० पु०	क्रेषीष्ठाः	क्रेषीयास्थाम्	क्रेषीढ्वम्
उ० पु०	क्रेषीय	क्रेषीर्वहि	क्रेषीमहि

लुट्

प्र० पु०	क्रेष्टा	क्रेष्टारौ	क्रेष्टारः
म० पु०	क्रेष्टासे	क्रेष्टासाथे	क्रेष्टाध्वे
उ० पु०	क्रेष्टाहे	क्रेष्टास्वहे	क्रेष्टास्महे

लृङ्

प्र० पु०	अक्रेष्यत	अक्रेष्याम्	अक्रेष्यन्त
म० पु०	अक्रेष्यथाः	अक्रेष्यथाम्	अक्रेष्यध्वम्
उ० पु०	अक्रेष्ये	अक्रेष्यावहि	अक्रेष्यमाहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपदी ज्ञा-धातु (जानना)

लट्

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ० पु०	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म० पु०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उ० पु०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

लुङ्

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
म० पु०	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुरादिगण

परस्मैपदी चुर्-धातु (चुराना)

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
म० पु०	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उ० पु०	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

लोट्

प्र० पु०	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
म० पु०	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
म० पु०	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

लङ्

प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
उ० पु०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

लृट्

प्र० पु०	चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति
म० पु०	चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ
उ० पु०	चोरयिष्यामि	चोरयिष्यावः	चोरयिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
म० पु०	अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत
उ० पु०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम

लिट्

प्र० पु०	चोरयामास	चोरयामासतुः	चोरयामासुः
म० पु०	चोरयामासिथ	चोरयामासथुः	चोरयामास
उ० पु०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	चोर्याः	चोर्यास्तम्	चोर्यास्त
उ० पु०	चोर्यासम्	चोर्यास्व	चोर्यास्म

लुट्

प्र० पु०	चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः
म० पु०	चोरयितासि	चोरयितास्थः	चोरयितास्थ
उ० पु०	चोरयितास्मि	चोरयितास्वः	चोरयितास्मः

लृङ्

प्र० पु०	अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्	अचोरयिष्यन्
म० पु०	अचोरयिष्यः	अचोरयिष्यतम्	अचोरयिष्यत
उ० पु०	अचोरयिष्यम्	अचोरयिष्याव	अचोरयिष्याम

आत्मनेपदो चुर-धातु (चुराना)

लट्

	एक व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म० पु०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ० पु०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

लोट्

प्र० पु०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म० पु०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उ० पु०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
म० पु०	चोरयेथा	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
उ० पु०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

लङ्

प्र० पु०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म० पु०	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उ० पु०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

लृट्

प्र० पु०	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	चोरयिष्यन्ते
म० पु०	चोरयिष्यसे	चोरयिष्येथे	चोरयिष्यध्वे
उ० पु०	चोरयिष्ये	चोरयिष्यावहे	चोरयिष्यामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म० पु०	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
उ० पु०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

लिट्

प्र० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे
म० पु०	चोरयाञ्चकृषे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चक्रिढ्वे
उ० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे

णिजन्त—प्रेरणार्थक क्रिया

धातु से जब प्रेरणा का अर्थ प्रकट करना होता है, तो णिच् प्रत्यय लगाया जाता है। सादी धातु में जो कर्त्ता रहता है, वह प्रेरणार्थक में स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य कराता है। जैसे—पढ़ना से पढ़वाना, बनाना से बनवाना आदि। णिजन्त क्रियाओं के रूप चुरादि गण के धातुओं के समान चलते हैं।

णिच् में इ का अय् के रूप में परिवर्तन हो जाता है। अजन्त धातु से णिच् होने पर अन्तस्थ इ, उ, ऋ, इत्यादि वर्णों के स्थान पर आय्, आव्, आर्, आदि का आदेश होता है। धातु की उपधा में आकार अथवा ह्रस्व इ, उ, ऋ वर्ण रहे, तो उसके स्थान पर क्रमशः ए, ओ और आर का श्रवण होता है।

यथा	सादा	प्रेरणार्थक
१ बुध्	बोधति	बोधयति
१ अद्	अत्ति	आदयति
३ हु	जुहोति	हावयति
४ दिव्	दिव्यति	देवयति
५ सु	सुनोति	श्रावयति
६ तुद्	तुदति	तोदयति
७ रुध्	रुणद्धि	रोधयति
८ तनु	तनोति	तानयति
९ अश्	अश्नाति	आशयति
१० भू	भवति	भावयति
११ पा	पिबति	पाययति
१२ गम्	गच्छति	गमयति
१३ श्रू	शृणोति	श्रावयति
१४ पच्	पचति	पाचयति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५ कृ	करोति	कारयति
१६ क्री	क्रीणाति	क्रापयति
१७ दा	ददाति	दापयति
१८ हन्	हन्ति	घातयति

सन्नन्त क्रिया

किसी कार्य के करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए धातु से सन् प्रत्यय जोड़ा जाता है। इसके रूप दसों लकारों में चलते हैं। जैसे:—कर्तुमिच्छति चिकीर्षति। आवश्यक सन्नन्त रूप नीचे दिये जाते हैं।

धातु	वर्तमान	भूत	भविष्य
भू	बुभूषति	अबुभूषत्	बुभूषिष्यति
पठ्	पिपठिषति	अपिपठिषत्	पिपठिषिष्यति
पा	पिपासति	अपिपासत्	पिपासिष्यति
गम्	जिगमिषति	अजिगमिषत्	जिगमिषिष्यति
जि	जिगीषति	अजिगीषत्	जिगीषिष्यति
चि	चिचीषति	अचिचीषत्	चिचीषिष्यति
रुच्	रुरुचिषते	अरुरुचिषत्	रुरुचिषिष्यते
हृ	जिहीर्षति	अजिहीर्षत्	जिहीर्षिष्यति
लभ्	लिप्सते	अलिप्सत्	लिप्सिष्यते
अत्	जिघत्सति	अजिघत्सीत्	जिघत्सिष्यति
शी	शिशयिषते	अशिशयिषत्	शिशयिष्यते
विद्	विविदिषति	अविविदिषत्	विविदिषिष्यति
हन्	जिघांसति	अजिघांसीत्	जिघांसिष्यति
दा	दित्सति-ते	अदित्सद्-त	दित्सिष्यति-ते
दिव्	दिघूषति	अदुघूषत्	दुघूसिष्यति
भुज्	बुभुक्षति	अबुभुक्षत्	बुभुक्षिष्यति
कृ	चिकीर्षति	अचिकीर्षत्	चिकीर्षिष्यति
ग्रह	जिघृक्षति	अजिघृक्षत्	जिघृक्षिष्यति
ज्ञप्	ज्ञीप्सति	अज्ञीप्सत्	ज्ञीप्सिष्यति

यङन्त क्रियाएँ

व्यञ्जन से आरम्भ होनेवाली किसी भी एकाच् धातु के अनन्तर क्रिया को बार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। यङन्त-क्रियाएँ लौकिक संस्कृत में आत्मनेपदी होती हैं।

धातु	वर्तमान	भूत	भविष्य
भू	बोभूयते	अबोभूयिष्ट	बोभूयिष्यते
पा	पेपीयते	अपेपीयिष्ट	पेपीयिष्यते
स्मृ	सास्मर्यते	असास्मर्यिष्ट	सास्मर्यिष्यते
व्रज्	वाव्रज्यते	अवाव्रजिष्ट	वाव्रजिष्यते
वृ	वरीवृत्यते	अवरीवृतिष्ट	वरीवृतिष्यते
यज्	यायज्यते	अयायजिष्ट	यायजिष्यते
हन्	जेघ्नीयते	अजेघ्नीयिष्ट	जेघ्नीयिष्यते
शी	शाशय्यते	अशाशयिष्ट	शाशयिष्यते
शक्	शाशक्यते	अशाशकिष्ट	शाशकिष्यते
प्रच्छ्	पाप्रच्छयते	अपाप्रच्छिष्ट	पाप्रच्छिष्यते
भुज्	बोभुज्यते	अबोभुजिष्ट	बोभुजिष्यते
कृ	चेक्रीयते	अचेक्रीयिष्ट	चेक्रीयिष्यते

नाम धातु

जब किसी सुबन्त—संज्ञा के अनन्तर प्रत्यय जोड़कर धातु बना लेते हैं, तो उसे नाम धातु कहते हैं। नाम धातुओं के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं यथा—पुत्रीयति—पुत्र की इच्छा करता है, लोहितायते—लाल हो जाता है।

जिस वस्तु की इच्छा करे, उस वस्तु के सूचक शब्द से क्यच् और काम्यच् प्रत्यय होते हैं। यथा :—

	वर्तमान	भूत	भविष्य
पुत्र + क्यच् =	पुत्रीयति	अपुत्रीयीत्	पुत्रीयिष्यति
राजन् ,, (स्वेच्छा)	राजीयति	अराजीयीत्	राजयिष्यति
वाच् क्यच् स्वेच्छा	वाच्यति	अवाच्यीत्	वाच्यिष्यति
गो ,, ,,	गव्यति	अगव्यीत्	गव्यिष्यति
कर्तृ ,, ,,	कर्त्रीयति	अकर्त्रीयीत्	कर्त्रीयिष्यति
अश्व ,, (मैथुनेच्छा)	अश्वस्यति	अश्वस्यीत्	अश्वस्यिष्यति
क्षीर ,, (लालसा)	क्षीरस्यति	अक्षीरस्यीत्	क्षीरस्यिष्यति
अशन ,, (बुभुक्षा)	अशनायति	आशनायीत्	अशनायिष्यति
धन ,, (लिप्सा)	धनायति	अधनायीत्	धनायिष्यति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशस् + काम्यच् (स्वेच्छा)	यशस्काम्यति	अयशस्कामयीत्	यशस्काम्यिष्यति
पुत्र + „ „	पुत्रकाम्यति	अपुत्रकाम्यीत्	पुत्रकाम्यिष्यति
हंस + क्यङ् (आचरण)	हंसायते	अहंसायिष्ट	हंसायिष्यते
अप्सरस् „ „	अप्सरायते	अप्सरायिष्ट	अप्सरायिष्यते
राज + क्यङ् „	राजायते	अराजायिष्ट	राजायिष्यते
लोहित + क्यष् (भाव)	लोहितायति	अलोहितायीत्	लोहितायिष्यति
कष्ट + क्यङ् (क्रमण)	कष्टायते	अकष्टायिष्ट	कष्टायिष्यते
वाष्प „ (उद्वमन)	वाष्पायते	अवाष्पायिष्ट	वाष्पायिष्यते
शब्द „ (करण)	शब्दायते	अशब्दायिष्ट	शब्दायिष्यते
सुख „ (कर्तृवेदन)	सुखायते	असुखायिष्ट	सुखायिष्यते
नमस् + क्यच् (सत्करण)	नमस्यति	अनमस्यीत्	नमस्यिष्यति

अभ्रं करोति = अभ्रायते, अभ्रयति; वैरं करोति = वैरायते, वैरयति; कलहं करोति = कलहायते, मेघं करोति = मेघायते, सुदिनं करोति = सुदिनायते, अभृशः भृशो भवति = भृशायते, अशीघ्रः शीघ्रो भवति = शीघ्रायते, अमन्दः मन्दो भवति = मन्दायते, अनुन्मनाः उन्मनाः भवति = उन्मनायते, कृष्ण इवाचरति = कृष्णाति, मालेवाचरति = मालाति, शिष्य इवाचरति = शिष्यति, राजेवाचरति = राजानति, सखा इव आचरति = सखयति, दुष्यं करोति = दुष्यति, मृदुं करोत्याचष्टे वा = म्रदयति, श्वानमाचष्टे = शावयति, शुनयति ।

आत्मनेपद प्रक्रिया

संस्कृत भाषा में दो पद होते हैं--परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है—'वह पद जो दूसरे के लिए हो' और आत्मनेपद का अर्थ है 'वह पद जो अपने लिए हो'। तात्पर्य यह है कि जिन क्रियाओं का फल दूसरे के लिए हो, ये परस्मैपद में, और जिनका फल अपने लिए हो उन्हें आत्मनेपद में रखना चाहिए। जैसे :—'सः वपति—वह बोता है' वाक्य में वपति परस्मैपद की क्रिया है और इससे यह भाव निकलता है कि बोने की क्रिया का फल दूसरे के लिए होगा। यदि 'सः वपते—वह बोता है' कहा जाय तो इसका अर्थ होगा कि बोने की क्रिया का फल बोने वाले को मिलेगा। परन्तु उक्त अर्थ की दृष्टि से क्रिया के रूपों का प्रयोग केवल व्याकरण में ही मिलता है, काव्य ग्रन्थों में नहीं। संस्कृत के बड़े-बड़े कवि और लेखकों ने उक्त दोनों पदों का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के किया है। यथा—'निर्देशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि' (मालविका० १) अब मैं सन्देश सुनना चाहता हूँ।' इस वाक्य में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छामि क्रिया परस्मैपद की है, पर इसका फल कर्त्ता को मिल रहा है, अन्य को नहीं। अतः कर्तृगामी क्रिया आत्मनेपद में होनी चाहिए, यह यहाँ अटल नहीं रहा।

यदि यह माना जाय कि उभयपदी धातुओं के विषय में ही उक्त भेद कहा गया है, तो यह बात भी प्रयोगों से सिद्ध नहीं होती है। यथा—राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार। शुकनासोऽपि विप्रजनोचितं वैशम्पायन इति नाम चक्रे।' इस वाक्य में चकार परस्मैपद का और चक्रे आत्मनेपद का प्रयोग है, किन्तु दोनों का व्यवहार एक ही अर्थ से किया गया है।

नम्, भ्रम्, रुच् और भाष् आदि कुछ धातुओं के रूप केवल एक पद में तथा कृ, चि, चु, और दुह् आदि कुछ धातुओं के रूप दोनों पदों में चलते हैं। अतः संस्कृत में धातुएँ परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद इन तीन वर्गों में विभक्त हैं। कभी-कभी उपसर्ग आदि के कारण एक पद का धातु दूसरे पद का हो जाता है।

धातुओं के आत्मनेपद में प्रयुक्त होने के आवश्यक नियम निम्न प्रकार हैं:—

१. भावकर्मणोः १।३।१३ भाव और कर्मवाच्य में धातु केवल आत्मनेपद में रहता है। यथा—तेन स्थीयते, तेन पुस्तकं पठ्यते, भूयते, अनुभूयते।

२. कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४ कर्तृवाच्य में कर्मव्यतिहार (Reciprocal action) कर्ता के उचित कार्य के न होने पर धातु आत्मनेपद में रहता है। यथा:—ब्राह्मणः शस्यं व्यतिलुनीते—ब्राह्मण खेती काटता है। यहाँ खेती काटना ब्राह्मण का काम नहीं है, शूद्र का है। संप्रहरन्ते राजान—राजा एक दूसरे पर प्रहार करते हैं।

अपवाद—

३. न गतिहिंसार्थेभ्यः १।३।१५—गति और हिंसार्थक धातु कर्मव्यतिहार में आत्मनेपदी नहीं होते। यथा:—ते व्यतिगच्छन्ति—वे एक दूसरे के विरुद्ध जाते हैं। व्यतिहिंसन्ति, व्यतिघ्नन्ति।

४. नेर्विशः १।३।१७—विश् धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाता है। यथा:—नृपः नगरं निविशते—राजा नगर में प्रविष्ट होता है, अभिनिविशते सन्मार्गम्।

५. परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८—क्री के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि उपसर्ग हों, तो वह आत्मनेपदी हो जाता है। यथा:—गोपो दुग्धं विक्रीणीते, अवक्रीणीते, परिक्रीणीते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. विपराभ्यां जे: १।३।१९—वि और परा पूर्वक जि धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—विजयतां महाराजः, बालकोऽध्ययनात्पराजयते, विजयते।

७. आङो दोऽनास्यविहरणे १।३।२०—मुख विहरण (विस्तार) से भिन्न अर्थ में वर्तमान आङ्पूर्वक दा धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—विद्यामादत्ते, वस्त्रमादत्ते। किन्तु—विडालः मुखं व्याददाति—बिल्ली मुँह खोलती है, नदी कूलं व्याददाति—नदी किनारे को तोड़ती है, आदि प्रयोगों में आत्मनेपद नहीं होता है।

८. भुजोऽनवने १।३।६६—भोजन और भोग अर्थ (Enjoy, eat) में भुज् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। पर जब भुज् धातु रक्षार्थ में होता है, उस समय उसका आत्मनेपद में प्रयोग नहीं होता। यथा :—ओदनं भुङ्क्ते, राजा महीं भुङ्क्ते; किन्तु नृपः प्रजाः भुनक्ति—राजा प्रजा की रक्षा करता है।

९. क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च १।३।२१—आ, अनु, सम्, परि उपसर्ग पूर्वक क्रीड् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—बालकोऽनुक्रीडते, आक्रीडते, परिक्रीडते, संक्रीडते। पर शब्द करने के अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता। यथा—संक्रीडन्ति शकटानि, संक्रीडति चक्रम्—पहिया चूँ चूँ करता है।

१०. आङि नु प्रच्छ्योरुपसंख्यानम् (वा०)—आ पूर्वक नु और प्रच्छ् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—आनुते शृगाल—गीदड़ भोंकते हैं, आपृच्छस्व प्रियसखम्—अपने प्यारे मित्र से विदा लो, आपृच्छते।

११. हरतेर्गतताच्छील्ये (वा०)—हृ धातु अनु उपसर्ग के योग में शील ग्रहण के अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है। यथा :—मातरं गावोऽनुहरन्ते। जहाँ अनुकरण या मिलना-जुलना अर्थ होगा, वहाँ आत्मनेपद नहीं होता। यथा :—स्वरेण रामभद्रमनुहरति, बालकः पितरम् अनुहरति।

१२. समवप्रविभ्य: स्थः १।३।२२—सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग पूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—संतिष्ठते, अवतिष्ठते, वितिष्ठते प्रतिष्ठते। न कोऽपि निर्धनस्य वाक्ये सन्तिष्ठते—कंगाल के कहने पर कोई काम नहीं करता।

१३. आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् (वा०)—प्रतिज्ञा अर्थ में स्था धातु आ के योग में आत्मनेपदी हो जाता है। यथा :—शब्दं नित्यमातिष्ठते नित्यत्वेन प्रतिजानीते इत्यर्थः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४. प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च १।३।२३—आशय-प्रकाशन, विवाद और पदार्थ-निर्णय अर्थ में वर्तमान स्था (तिष्ठ्) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—

तिष्ठते कृष्णाय गोपी—गोपी कृष्ण से आशय व्यक्त करती है, संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः।

१५ उदोऽनूर्ध्वकर्मणि १।३।२४—उठने अर्थ से भिन्न अर्थ में उत् पूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में उपयोग होता है। यथा :—मुक्तावुत्तिष्ठते—मुक्ति के लिए यत्न कर रहा है।

उत्थान अर्थ में आत्मनेपद का उपयोग नहीं होता। यथा:—आसनादुत्तिष्ठति—आसन से उठता है।

१६ उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् (वा०)—उप पूर्वक स्था (तिष्ठ्) धातु का देवपूजा, संगति (मिलन), मैत्रीकरण और मार्गबोधन अर्थ में आत्मनेपद में ही प्रयोग होता है। यथा :—

देवपूजा—आदित्यमुपतिष्ठते—सूर्य की पूजा करता है।
संगतिकरण—गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते—गङ्गा यमुना से मिलती है।
मैत्रीकरण—रथिकानुपतिष्ठते—मैत्री करता है।
मार्ग—पन्थास्तुघ्नमुपतिष्ठते—प्राप्त करता है।

१७. वा लिप्सायामिति वाच्यम् (वा०)—जहाँ लाभेच्छा अर्थ प्रतीत हो तो उप पूर्वक स्था धातु का विकल्प से आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा—भिक्षुक धनिक के पास लाभ की इच्छा से जाता है।

१८. अकर्मकाच्च १।३।२६—अकर्मपूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा: —भोजनकाल उपतिष्ठते—भोजन का समय उपस्थित है।

१९ उद्विभ्यां तपः १।३।२७—अकर्मक तप् धातु उत् और वि उपसर्ग के योग में आत्मनेपद होता है। यथा :—रवि उत्तपते वितपते वा—सूरज चमकता है।

२० आङो यमहनः १।३।२८—अकर्मक आपूर्वक यम् (यच्छ) और हन्-धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—आयच्छते तरुः—वृक्ष फैलता है, आयच्छते पाणिम्—हाथ फैलाता है, आहते। सकर्मक दशा में परस्मैपद होता है—परस्य शिर आहन्ति।

२१. समो गम्यृच्छिभ्याम् १।३।२९—अकर्मक समपूर्वक गम् (गच्छ) और ऋच्छ्-धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—गंगा यमुनया संगच्छते—गङ्गा यमुना से मिलती है, अयमर्थः न संगच्छते—यह अर्थ ठीक नहीं बैठता; समृच्छते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२. उपाद्यमः स्वकरणे १।३।५६—उप उपसर्ग के साथ यम् धातु स्वकरण के योग में आत्मनेपद होता है। यथा :—रामः सीताम् उपयेमे—राम ने सीता से विवाह किया।

२३. विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् (वा०) अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् (वा०)—विद्, प्रच्छ, स्वर और ऋ, श्रु, दृश् धातु सम् उपसर्ग के योग में आत्मनेपद में प्रयुक्त होते हैं। यथा :—संवित्ते, संपृच्छते संस्वरते। हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः—जो हितैषी की नहीं सुनता वह क्या (बुरा) स्वामी है।

२४. स्पर्धायामाङः १।३।३१—स्पर्धा अर्थ में आ उपसर्गपूर्वक ह्वे (ह्वय) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा:—आह्वयते मल्लो मलम्—मल्ल मल्ल को ललकारता है, भीमः जरासन्धम् आह्वयते—भीम जरासन्ध को ललकारता है।

२५. अधेः प्रहसने १।३।३३—क्षमा और अभिभव (जीतना) अर्थ में अधिपूर्वक कृ धातु का आत्यनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—शत्रुम् अधिकुरुते—शत्रु को क्षमा करता है।

२६. वेः शब्दकर्मणः १।३।३४—कृ धातु वि के योग में शब्द कर्म (Making sound or having sound for its object) के अर्थ में आत्मनेपद होता है। यथा :—शृगालः स्वरान् विकुरुते—गीदड़ शोर करता है, गायकः स्वरान् विकुरुते।

२७ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२—हिंसन, भर्त्सन, सेवन, साहसिक्य, सहसा प्रवृत्ति, गुण ग्रहण इत्यादि अर्थ में कृ धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—

१. गन्धन—हिंसन (Hurting, killing) उत्कुरुते—मारता है।

२. अवक्षेपण—भर्त्सना (Censuring, overcoming)—श्येनोवर्तिकामुदाकुरुते— बाज बटेर की भर्त्सना करता है या वस करता है।

३. सेवन (Serving, attending)—हरिम् उपकुरुते—हरि की सेवा करता है।

४. साहसिक्य (Using violence)—परदारान् प्रकुरुते—दूसरे की स्त्री पर बलात्कार करता है।

५. (प्रतियत्न Imparting additional quality)—एधः उदकस्य उपस्कुरुते—इंधन पानी को गर्मी देता है।

६. प्रकथन (Reciting)—गाथाः प्रकुरुते—गाथा कहता है।

७ उपयोग (Applying to use)—शतं प्रकुरुते—धर्म के लिए विनियोग करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८ सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः १।३।३६—सम्मान प्रदर्शित करना, उत्सञ्जन—ऊपर उठाना, आचार्यकरण—आचार्य बनाना, ज्ञान, भृति, विगणन—कर देना और व्यय इन सात अर्थों में नी धातु का प्रयोग आत्मनेपद में होता है। यथा :—

१ सम्मानन (Showing regard for) शास्त्रे नयते—शास्त्र की शिक्षा देता है।

२. उत्सञ्जन (Lifting up)—दण्डं उन्नयते—डंडा उठाता है।

३. आचार्यकरण (Initiating into sacred rites, making one a spritual guide) माणवकमुपनयते—बालक का उपनयन संस्कार करता है।

४. ज्ञान (Determining the sense of)—तत्त्वं नयते—सत्य का निश्चय करता है।

५. भृति (Employing on wages) कर्मकारान् उपनयते—मजदूरों को वेतन पर नौकर रखता है।

६. विगणन (Paying off as a debt, taxes,etc.) करं विनयते—कर देता है।

७. व्यय (Spending giving in Charity)—शतं विनयते—सौ रुपये धर्मार्थ में खर्च करता है।

२९ कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि १। ३। ३७—जब नी धातु का कर्म कर्तृस्थ अशरीर वस्तु होता है, तो उसका प्रयोग आत्मनेपद में किया जाता है। यथा :—क्रोधं विनयते—अपने क्रोध को मारता है, श्रमं विनयते—थकावट दूर करता है।

३०. वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः १।३।३८—क्रम धातुवृत्ति (Continutiy), सर्ग (Energy) और तायन (Development) अर्थ में आत्मनेपद होता है। यथा :—अस्य बुद्धिः ऋचि क्रमते, अध्ययनाय क्रमते बालः—बालक पढ़ने के लिए उत्साह करता है, अस्मिन् शास्त्राणि क्रमन्ते—उसमें शास्त्र वृद्धि को प्राप्त होता है।

३१. उपपराभ्याम् १।३।३९—उप और परा उपसर्ग के योग में वृत्ति, सर्ग और वृद्धि अर्थ में क्रम धातु आत्मनेपद में प्रयुक्त होता है। यथाः —उपक्रमते, पराक्रमते।

३२. आङ उद्गमने १।३।४०—क्रम धातु आ के योग में उद्गमन के अर्थ में आत्मनेपद होता है यथा :—आक्रमते सूर्यः—सूर्य निकलता है।

३३ वेः पादविहरणे १।३।४१ क्रम् धातु से वि उपसर्ग के योग में पादविहरण—चलना इस अर्थ में आत्मनेपदो होता है। यथा :—साधु विक्रमते वाजीः—घोड़ा अच्छा चलता है, विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे—विष्णु ने तीन बार कदम रखा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४. प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् १।३।४२—आरम्भ अर्थ में प्र और उप पूर्वक क्रम धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा ;—अध्येतुं प्रक्रमते उपक्रमते वा—पढ़ना आरम्भ करता है।

३५. अपह्नवे ज्ञः १। ३।४४—अपलाप अर्थ में ज्ञा (जन) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथाः —शतम् अपजानीते— सौ रुपये से इनकार करता है।

३६. सम्प्रतिभ्यामनाध्याने १।३।४६—उत्कण्ठापूर्वक स्मरण अर्थ से भिन्न अर्थ में सम् और प्रति पूर्वक ज्ञा धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—शतं संजानीते—सौ रुपये की आशा करता है, शतं प्रतिजानीते—सौ रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है।

३७. भासनोपसंभषा ज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः १।३।४७—भासन, उपसम्भाषा, ज्ञान, यत्न, विमति और उपमन्त्रण अर्थ में वद् धातु का प्रयोग आत्मनेपद में किया जाता है। यथा :—

१. भासन (Showing brilliance, proficiency in) शास्त्रे वदते—शास्त्र में कौशल दिखाता है।

२. उपभाषा—(Pacifying)—प्रभुः भृत्यान् उपवदते—स्वामी नौकरों को खुश रखता है।

३. ज्ञान (Perfect knowledge)—शास्त्रे वदते—शास्त्र में पूरा ज्ञान रखता है।

४. यत्न (Effort) कृषीवलः क्षेत्रे वदते—किसान खेत में परिश्रम करता है।

५ विमति— (Quarrel, difference of opinian) क्षेत्रे विवदते—खेत पर झगड़ता है।

६. उपमन्त्रण (Flattery in secret, enticing)—दातारमुपवदते—दाता की खुशामद करता है, कुलनारीम् उपवदते—कुलीन स्त्री को बहकाता है।

३८. व्यक्तवाचां समुच्चारणे १।३।४८—व्यक्तवाणी के उच्चारण के अर्थ में संप्र के योग में वद् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—ब्राह्मणाः संप्रवदन्ते—ब्राह्मण इकट्ठा उच्चारण करते हैं, संप्रवदन्ति खगाः —पक्षी उच्चारण करते हैं—यहाँ पक्षियों का उच्चारण अव्यक्त होने से आत्मनेपद का प्रयोग नहीं हुआ, किन्तु परस्मैपद का प्रयोग किया गया है।

३९. उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३—सकर्मक उत् पूर्वक चर् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—धर्ममुच्चरते—धर्म का उल्लंघन करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०. ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १।३।५७—सन्नन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, दिदृक्षते।

४१. पूर्ववत्सनः १।३।६२—सन् प्रत्यय की प्रकृति के समान सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है अर्थात् सन् प्रत्यय का प्रकृतिभूत धातु आत्मनेपद में हो तो सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो जाता है। यथा :—एदिधिषते, शिशयिषते, निविविक्षते।

४२. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १।३।६१—मृ धातु का प्रयोग लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, लुङ्, और आशीर्लिङ् में आत्मनेपद में होता है और शेष लकारों में परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—म्रियते।

४३ अनुपसर्गाज्ज्ञः १।३।७६—उपसर्ग रहित ज्ञा धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—गां जानीते।

४४. समः प्रतिज्ञाने १।३।५२—प्रतिज्ञा अर्थ में सम् पूर्वक गॄ (गिर) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—शब्दं नित्यं सङ्गिरते।

४५. आ उपसर्ग के योग में मन्त्र धातु एवं आ और प्र उपसर्ग के योग में शास् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा :—आमन्त्रयस्व सह चरम्—अपने साथी से विदा लो, ऋषिः शकुन्तलां आशास्ते—ऋषि शकुन्तला को आशीर्वाद देता है, इदं प्रशास्महे—हम यह प्रार्थना करते हैं।

४६. समस्तृतीयायुक्तात् १।३।५४—तृतीयान्त वाहन के योग में सम् पूर्वक चर् धातु आत्मनेपद में प्रयुक्त होता है। यथा :—रथेन संचरते।

परस्मैपद-प्रक्रिया

१. अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९—कृञ् धातु उभयपदी है, किन्तु अनु और परा उपसर्ग के साथ आने पर केवल परस्मैपद में ही इसका प्रयोग होता है। यथा :—छात्रो गुरुमनुकरोति—विद्यार्थी गुरु का अनुकरण करता है; आचार्यः शिष्यस्य प्रार्थनां पराकरोति—आचार्य शिष्य की प्रार्थना को अस्वीकार करता है।

२ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०—अभि, प्रति और अति उपसर्गपूर्वक क्षिप् धातु का प्रयोग परस्मैपद में होता है। यथा:—प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति, अभिक्षिपति भीमोबलेन, दुर्योधनम् अभिक्षिपति—भीम बल में दुर्योधन से बड़ा है।

३. प्राद्वहः १।३।८१—प्रपूर्वक वह धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—नदी प्रवहति—नदी बहती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. परेमृ षः १।३।८२—परिपूर्वक मृष् धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—परिमृष्यति।

५. व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३, उपाच्च १।३।८४—वि, आ, परि और उपपूर्वक रम् धातु का प्रयोग परस्मैपद में होता है। यथा :—पापाद् विरमति—पाप से बचता है, उद्याने आरमति—बाग में आराम करता है, पुत्रं दृष्ट्वा परिरमति—पुत्र को देख कर प्रसन्न होता है। अध्ययनाद् उपरमति—पढ़ने से बचता है। उप के योग में विकल्प से रम् धातु का परस्मैपद होता है। यथा:—उपरमति—उपरमते।

६. बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्नुभ्यो णेः १।३।८६—ण्यन्त बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु और स्नु धातुओं का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—बोधयति पद्मम्, योधयति काष्ठानि, नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्, अध्यापयति वेदम्, प्रावयति, प्रापयति, द्रावयति, स्नावयति।

७. निगरणचलनार्थेभ्यश्च १।३।८७—ण्यन्त भक्षणार्थक और चलनार्थक धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—माता शिशुं भजयति —माँ बच्चे को खिलाती है, पवनः वृक्षं कम्पयति—पवन वृक्ष को हिलाता है, निगारयति, आशयति, चलयति।

८. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः १।३।५९—सन्नन्त प्रति और आपूर्वक श्रु धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—प्रतिशुश्रूषति आशुश्रूषति।

९. मृ धातु का लिङ् लट्, लुट्, और लृङ् लकार में परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा :—ममार, मरिष्यति, मर्ता, अमरिष्यत्।

अनुशीलनी

१. रम्, कृ, क्षिप् मृ, वृत् और श्रु धातु किस-कि वस्था में परस्मैपदी होते हैं?

२. वद्, नी, रथ्, स्था, क्रम्, जि, प्रच्छ्, क्रीड्, पत्, हन्, कृ, वद, ज्ञा, यम् और क्री धातु कब आत्मनेपदी होते हैं?

३. वद् धातु किन-किन अर्थों में आत्मनेपदी होता है? सोदाहरण विवेचन कीजिये।

४. कृञ् धातु किन-किन अर्थों में आत्मनेपदी होता है तथा इस धातु के पूर्व अनु और परा उपसर्ग जोड़ देने पर इसका प्रयोग किस पद में होता है? नियमपूर्वक सिद्ध कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. अनु और प्रति के योग में स्था धातु किस पद में प्रयुक्त होता है? ह्वे धातु का प्रयोग आत्मनेपद में किस-किस अर्थ में होता है? नियम सहित लिखिये।

६. परस्मैपद और आत्मनेपद का क्या अर्थ है? क्या संस्कृत के कवियों ने इनके शाब्दिक अर्थ के समान धातुओं का प्रयोग किया है? आलोचना करते हुए लिखिये।

७. लट् और लुङ् लकार में मृ धातु का प्रयोग किस पद में किया जाता है? उपसर्ग रहित ज्ञा धातु का प्रयोग किस पद में किया जाता है? सन्नन्त ज्ञा धातु का प्रयोग आत्मनेपद में कब होता है?

८. निम्नलिखत वाक्यों में क्रिया को शुद्ध या सिद्ध (Justify) कीजिये—

(१) राजा महीं भुङ्क्ते, (२) धूर्तः शतं अपजानाति, (३) शिक्षकः आसनाद् उत्तिष्ठते, (४) संयमी रिपून् पराजयति, (५) तपसे वनं प्रतस्थौ, (३) पिता पुत्रं आह्वयते, (७) पितरम् अनुहरति रूपेण पुत्रः, (८) बालको ऽन्नं भुनक्ति, (९) दारिद्रात् पुरुषस्य वान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते, (१०) जलं विषं वा तव कारणादास्थास्ये, (११) उत्तिष्ठमानं मित्रार्थे कस्त्वां न वहु मन्यते, (१२) गङ्गा यमुनामुपतिष्ठति, (१३) भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठति, (१) व्रीहीन् संयच्छते, (१५) दातारमुपवदति, (१६) अनुवदति कठः कलापस्य, (१७) कर्मकरान् उपनयत, (१८) रविर्वितपते, (१९) विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे, (२०) अध्ययनाय भजत, (२१) पिञ्जरस्थः शुकः तमनुवदति, (२२) पत्नी पतिं शुश्रूषति, (२३) प्रवासं गमिष्यन् रामः मातरम् आपृच्छति, (२४) कुलनारीम् उपवदते, (२५) विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।

९. निम्न क्रियापदों में अर्थभेद लिखिये और अर्थभेद को दिखलाने के लिए वाक्य बनाइए।

अह्वायति—आह्वयते, आक्रमति—आक्रमते, व्याददाति—व्यादत्ते, उतिष्ठति—उतिष्ठते, उत्तपति—उत्तपते, करोति—कुरुते, भुनक्ति—भुङ्क्ते, अनुहरति—अनुहरते, विकरोति—विकुरुते, विनयति—विनयते; संजानाति—संजानते, संक्रीडति—संक्रीडते, संयच्छति—संयच्छते, संगच्छति—संगच्छते, विक्रामति—विक्रमते, वदति—वदते, संजानाति—संजानीते, अधिकरोति—अधिकुरुते।

कर्मवाच्य

संस्कृत का धातु कर्मवाच्य में प्रयुक्त हो सकता है। कर्मवाच्य में आत्मनेपद के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। कर्मवाच्य के रूप दिवादि गण के आत्मनेपदी धातुओं की भाँति चलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लट्, लङ्, लोट् विधिलिङ् लकारों में तथा शतृ और शानच् प्रत्ययों में कर्म-वाच्य बनाने के लिए धातु से परे य प्रत्यय लगता है और य से पूर्व धातु में निम्न विकार उत्पन्न होते हैं :—

१—दा, धा, मा, स्था, या, हा, ध्या (ध्यै), गा (गै) आदि धातुओं के अन्त्य आ को ई हो जाता है। यथा :—दीयते, पीयते, हीयते, गीयते आदि। परन्तु ज्ञा धातु का ज्ञायते रूप ही बनता है।

२—अन्त्य इ और उ को दीर्घ होता है। यथा :—चि = चीयते, श्रु = श्रूयते।

३—संयोगपूर्वक अन्त्य ऋ को रि आदेश होता है। यथा :—कृ = क्रियते।

४—अन्त्य ॠ को ईर आदेश होता है, परन्तु पवर्ग से परे ऊर आदेश होता है। यथा :—कॄ = कीर्यते, पॄ = पूर्यते।

५—उपधा के अनुनासिक का लोप होता है। यथा :—भज् = भज्यते।

६—धातु के अन्तस्थों को सम्प्रसारण होता है। यथा :—यज् = इज्यते, वच् = उच्यते।

७—चुरादि तथा णिजन्त धातुओं के अय का लोप हो जाता है, परन्तु धातु के स्वर का विकार बना रहता है। यथा :—चुर् = चोरय, चोर् = चोर्यते; कृ—णिज् = कारय, कार, कार्यते।

कृ—कर्मवाच्य के रूप

लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

लङ्

प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

अ० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अपवाद

क—खन्, तन्, जन् के न् का लोप और स्वर को दीर्घ विकल्प से होता है। यथा :—खन्यते, खायते; तन्यते, तायते; जयन्ते, जायते।

ख—शि—शय्यते, श्वि—शूयते, शास्—शिस्यते—शास्यते।

ग—ब्रू को वच् और अस् को भू आदेश होता है। दरिद्रा के आ का लोप हो जाता है। यथा—दरिद्र्यते।

८. लिट् लाकार में कर्मवाच्य के रूप कर्तृवाच्य के समान होते हैं, किन्तु आत्मनेपद के प्रत्यय जोड़े जाते हैं। आम् प्रत्ययान्त में अनुपयुक्त क्रिया (Auxiliary) आत्मनेपद में होता है। यथा :—भू—बभूवे, गम्—जग्मे, ईक्षाञ्चक्रे, कथयामासे।

९. लुट्, लृट्, लङ् और आशीर्लिङ् में भी कर्मवाच्य के रूप में कर्तृवाच्य समान होते हैं, पर सभी धातुओं को आत्मनेपद में रखना होता है। यथा :—बुध्—बोधिताहे, बोधिष्ये, अबोधिष्ये, बोधिषीय।

१०. अजन्त धातु तथा हन्, ग्रह्, दृश् धातुओं के स्वर की विकल्प से वृद्धि और आत्मनेपदी प्रत्ययों से पूर्व इ का आगम होता है। यथा :—नी—नायिताहे, नेताहे, (लुट्), नायिष्ये, नेष्ये (लृट्), अनायिष्ये अनेष्ये (लृङ्), नायिषीय, नेषीय (आशीर्लिङ्)।

११. लुङ् के चतुर्थ, पंचम और सप्तम में दो कर्मवाच्य के रूप में केवल आत्मनेपद के प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा :—भू—अभविषि, कृ—अकृषि, धा—अधिषि, पच्—अपक्षि।

१२. प्रथम पुरुष एक वचनान्त कर्मवाच्य लुङ् में धातु से परे इ प्रत्यय लगता है तथा इ से पूर्व निम्नलिखित विकार होते हैं।

क—धातु की उपधा के (ह्रस्व स्वर को गुण होता है, परन्तु उपधा के अ की वृद्धि होती है। यथा :—तुद्—अतोदि, वद्—अवादि, गम्—अगामि, नी—अनायि, कृ—अकारि।

ख—आकारान्त धातुओं को इ से पूर्व य का आगम होता है। यथा :—दा—अदायि, पा—अपायि, गा (गै)—अगायि।

ग—चुरादि तथा णिजन्त धातुओं के अय् का लोप हो जाता है। यथा—चुर्—चोरय, अचोरि, रुह् णिज्—रोपय, अरोपि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घ—रभ् धातु को अनुनासिक का आगम होता है और इसकी उपधा के अ को गुण नहीं होता। मृज् को वृद्धि आदेश, गुह् के स्वर को दीर्घ और इ को गा आदेश होता है। यथा: —आरम्भि, अमार्जि, अगूहि, अगामि।

कर्मवाच्य में कतिपय धातु-रूप

लिट्

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

लुङ्

प्र० पु०	अमोचि	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

लुट्

प्र० पु०	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः—	इत्यादि

लृट्

प्र० पु०	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते—	इत्यादि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन् -	इत्यादि

लृङ्

प्र० पु०	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त—	इत्यादि

दा—दान—कर्मवाच्य

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतन भूत्--लङ्

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदायि	अदायिषाताम् अदिषाताम्	अदायिषत अदिषत
म० पु०	अदायिष्ठाः अदिथाः	अदायिषाथाम् अदिषाथाम्	अदायिध्वम् अदिध्वम्
उ० पु०	अदायिषि अदिषि	अदायिष्वहि अदिष्वहि	अदायिष्महि

अनद्यतन भविष्यत्—लुट्

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितारः
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

सामान्य भविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

पा—पाने—कर्मवाच्य

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पीयते	पीयेते	पीयन्ते
म० पु०	पीयसे	पीयेथे	पीयध्वे
उ० पु०	पीये	पीयावहे	पीयामहे

लोट्

प्र० पु०	पीयताम्	पीयेताम्	पीयन्ताम्
म० पु०	पीयस्व	पीयेथाम्	पीयध्वम्
उ० पु०	पीयै	पीयावहै	पीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	पीयेत	पीयेयाताम्	पीयेरन्
म० पु०	पीयेथाः	पीयेयाथाम्	पीयेध्वम्
उ० पु०	पीयेय	पीयेवहि	पीयेमहि

लङ्

प्र० पु०	अपीयत	अपीयेताम्	अपीयन्त
म० पु०	अपीयथाः	अपीयेथाम्	अपीयध्वम्
उ० पु०	अपीये	अपीयावहि	अपीयामहि

लिट्

प्र० पु०	पपे	पपाते	पपिरे
म० पु०	पपिषे	पपाथे	पपिध्वे
उ० पु०	पपे	पपिवहे	पपिमहे

लुङ्

प्र० पु०	अपायि	अपायिषाताम्	अपायिषत
म० पु०	अपायिष्ठाः	अपायिषाथाम्	अपायिध्वम्
उ० पु०	अपायिषि	अपायिष्वहि	अपायिष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातारः
म० पु०	पातासे	पातासाथे	पाताध्वे
उ० पु०	पाताहे	पातास्वहे	पातास्महे

लृट्

प्र० पु०	पास्यते	पास्येते	पास्यन्ते
म० पु०	पास्यसे	पास्येथे	पास्यध्वे
उ० पु०	पास्ये	पास्यावहे	पास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पासीष्ट	पासीयास्ताम्	पासीरन्
म० पु०	पासीष्ठाः	पासीयास्थाम्	पासीध्वम्
उ० पु०	पासीय	पासीवहि	पासीमहि

लुङ्

प्र० पु०	अपास्यत	अपास्येताम्	अपास्यन्त
म० पु०	अपास्यथाः	अपास्येथाम्	अपास्यध्वम्
उ० पु०	अपास्ये	अपास्यावहि	अपास्यामहि

ज्ञा—कर्मवाच्य

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायेथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायस्व	ज्ञायेथाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायावहै	ज्ञायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेथाः	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनद्यतन भूत—लङ्

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायेताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथाः	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि

परोक्ष भूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

लुङ्

प्र० पु०	अज्ञायि	अज्ञायिषाताम्	ज्ञायिषत
म० पु०	अज्ञायिष्ठाः	अज्ञायिषाथाम्	अज्ञायिध्वम्
उ० पु०	अज्ञायिषि	अज्ञायिष्वहि	अज्ञायिष्महि

अनद्यतन भविष्य—लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
म० पु०	ज्ञातासे	ज्ञातासाथे	ज्ञाताध्वे
उ० पु०	ज्ञाताहे	ज्ञातास्वहे	ज्ञातास्महे

सामान्य भविष्य—लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ज्ञासीष्ट	ज्ञासीयास्ताम्	ज्ञासीरन्
म० पु०	ज्ञासीष्ठाः	ज्ञासीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम्
उ० पु०	ज्ञासीय	ज्ञासीवहि	ज्ञासीमहि

लृङ्

प्र० पु०	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	अज्ञास्यन्त
म० पु०	अज्ञास्यथाः	अज्ञास्येथाम्	अज्ञास्यध्वम्
उ० पु०	ज्ञास्ये	अज्ञास्यावहि	अज्ञास्यामहि

ध्यै—लट्—ध्यायते, ध्यायेते, ध्यायन्ते। लोट्—ध्यायताम्, ध्यायेताम्। ध्यायन्ताम्। विधि—ध्यायेत, ध्यायेयाताम् ध्यायेरन्, लङ्—अध्यायत, अध्यायेताम्, अध्यायन्त। लिट्—दध्ये, दध्याते, दध्यि रे। लुङ्—अध्यायि, अध्यायिषाताम्, अध्यायिषत। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चि—कर्मवाच्य

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
		लट्	
प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे
		लोट्	
प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीयै	चीयावहै	चीयामहै
		विधिलिङ्	
प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथाः	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि
		अनद्यतन-भूत—लङ्	
प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथाः	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि
		परोक्षभूत लिट्	
प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे
		सामान्य भूत—	
प्र० पु०	अचायि	अचायिषाताम्	अचायिषत
म० पु०	अचायिष्ठाः	अचायिषाथाम्	अचायिध्वम्
उ० पु०	अचायिषि	अचायिष्वहि	अचायिष्महि
		लुट्	
प्र० पु०	चायिता	चायितारौ	चायितारः
म० पु०	चायितासे	चायितासाथे	चायिताध्वे
उ० पु०	चायिताहे	चायितास्वहे	चायितास्महे
		लृट्	
प्र० पु०	चायिष्यते	चायिष्येते	चायिष्यन्ते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	चायिष्यसे	चायिष्येथे	चायिष्यध्वे
उ० पु०	चायिष्ये	चायिष्यावहे	चायिष्यामहे
		आशीर्लिङ्	
प्र० पु०	चायिषीष्ट	चायिषीयास्ताम्	चायिषीरन्
म० पु०	चायिषीष्ठाः	चायिषीयास्थाम्	चायिषीध्वम्
उ० पु०	चायिषीय	चायिषीवहि	चायिषीमहि
		लृङ्	
प्र० पु०	अचायिष्यत	अचायिष्येताम्	अचायिष्यन्त
म० पु०	अचायिष्यथाः	अचायिष्येथाम्	अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	अचायिष्ये	अचायिष्यावहि	अचायिष्यामहि

जि—लट्—जीयते, जीयते, जीयन्ते। लोट्—जीयताम्, जीयेताम्, जीयन्ताम्। विधि—जीयेत, जीयेयाताम्, जीयेरन्। लङ्—अजीयत, अजीयेताम्, अजीयन्त। लिट्—जिग्ये, जिग्याते जिग्यिरे; जिग्यिषे, जिग्याथे, जिग्यिध्वे, जिग्ये, जिग्यिवहे, जिग्यिमहे। लुङ्—अजायि अजायिषाताम् अजायिषत; अजायिष्ठाः अजायिषाथाम्, अजायिध्वम्; अजायिषि, अजायिष्वहि, अजायिष्महि। लुट्—जेता—जयिता। लृट्—जेष्यते—जायिष्यते। आशी०—जेषीष्ट—जायिषीष्ट। लृङ्—अजेष्यत—अजायिष्यत। श्रि—लट्—श्रीयते, श्रीयेते, श्रीयन्ते। लोट्—श्रीयताम्, श्रीयेताम्, श्रीयन्ताम्। विधि—श्रीयेत। लङ्—अश्रीयत, अश्रीयेताम्, अश्रीयन्त। लिट्—शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे, शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिध्वे; शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे। लुङ्—अश्रायि, अश्रायिषाताम्, अश्रायिषत; अश्रायिष्ठाः, अश्रायिषाथाम्, अश्रायिध्वम्; अश्रायिषि, अश्रायिष्वहि, अश्रायिष्महि। लुट्—श्रयिता—श्रायिता। लट्—श्रयिष्यते—श्रायिष्यते। आशी०—श्रयिषीष्ट—श्रायिषीष्ट। लृङ्—अश्रयिष्यत—अश्रायिष्यत।

नी—कर्मवाच्य

लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० मु०
प्र० पु०	नीयते	नीयेते	नीयन्ते
म० पु०	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे
उ० पु०	नीये	नीयावहे	नीयामहे
		लोट्	
प्र० पु०	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म० पु०	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्
उ० पु०	नीयै	नीयावहै	नीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
म० पु०	नीयेथा:	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
उ० पु०	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म० पु०	अनीयथा:	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
उ० पु०	अनीये	अनीयावहि	अनीयावहि

सामान्य भूत—लुङ्

प्र० पु०	अनायि	अनायिषाताम्	अनायिषत
म० पु०	अनायिष्ठा:	अनायिषाथाम्	अनायिध्वम्
उ० पु०	अनायिषि	अनायिष्वहि	अनायिष्महि

अनद्यतन भविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार:
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठा:	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

धृ–लट्—ध्रियते, ध्रियेते, ध्रियन्ते। लोट्—ध्रियताम्, ध्रियेताम्, ध्रियन्ताम्। विधि—ध्रियेत, ध्रियेयाताम्, ध्रियेरन्। लङ्—अध्रियत, अध्रियेताम्, अध्रियन्त। लिट्—दध्रे, दध्राते, दध्रिरे। लुङ्—अधारि, अधारिषाताम्, अधारिषत।

वाच्यपरिवर्तन के नियम

१. कर्तृवाच्य को कर्मवाच्य में परिवर्तित करने के लिए कर्तृवाच्य का प्रथमान्त कर्त्ता तृतीयान्त में और द्वितीयान्त कर्म प्रथमान्त में परिवर्तित हो जाता है। क्रिया की समता प्रथमान्त कर्म से रहती है। यथा—रामः पुस्तकं पठति (कर्तृवाच्य) का रामेण पुस्तकं पठ्यते, सत्पुरुषाः असत्यं न वदन्ति (कर्तृ०) का सत्पुरुषैः असत्यं नोच्यते (कर्मवा०)।

२. कर्तृवाच्य के कर्त्ता का विशेषण कर्मवाच्य में तृतीयान्त और कर्म का विशेषण प्रथमान्त हो जाता है; यतः कर्मवाच्य में कर्त्ता तृतीया विभक्ति में और कर्म प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है। यथा—हिमाद्रेः प्रयता तनूजा तपस्यन्तं शिवं अन्वास्ते (कर्तृ०)—हिमाद्रेः प्रयतया तनूजया तपस्यन् शिवः अन्वास्यते (कर्म०)—सः भूतेश्वरपार्श्ववर्ती द्रंष्ट्रामयूखैः गिरिगह्वराणां अन्धकारं शकलानि कुर्वन् किंचित् विहस्य भूयः अर्थपतिं बभाषे (कर्तृवाच्य)—अनेन भूतेश्वर-पार्श्ववर्तिना द्रंष्ट्रामयूखैः गिरिगह्वराणां अन्धकारं शकलानि कुर्वता किंचित् विहस्य भूयः अर्थपतिः बभाषे (कर्मवाच्य)।

३. अपूर्ण सकर्मक क्रिया का कर्मपूरक कर्मवाच्य में कर्तृपूरक हो जाता है। यथा—स कुमारं नेतारं करोति (कर्तृवाच्य)—तेन कुमारो नेता क्रियते (कर्मवाच्य)

४. कर्त्ता और कर्म के विशेषणों के अतिरिक्त अन्य कारकों में तथा क्रिया-विशेषण आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता। यथा—स त्वं मदीयेन देहेन शरीर-वृत्तिं निर्वर्त्तयितुं प्रसीद (कर्तृवाच्य)—तेन त्वया मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिं निर्वर्त्तयितुं प्रसाद्यताम् (कर्मवाच्य)—सत्पुरुषा सभायां सत्यं चारु वदन्ति (कर्तृवाच्य)—सत्पुरुषैः सभायां सत्यं चारु उच्यते (कर्मवाच्य)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. दुह्, याच्, पच् आदि बारह द्विकर्मक धातुओं का गौण कर्म और नी, हृ कृष् और वह् इन चार द्विकर्मक धातुओं का प्रधानकर्म कर्मवाच्य में प्रथमान्त हो जाता है और द्वितीय कर्म द्वितीयान्त ही बना रहता है। यथा—स बलिं याचते वसुधाम् (कर्तृवाच्य)—तेन बलिः याच्यते वसुधाम् (कर्मवाच्य); स ग्राममजां नयति (कर्तृवाच्य)—तेन अजा ग्रामं नीयते (कर्मवाच्य)।

६. कर्तृवाच्य को भाववाच्य में बदलने के लिए कर्तृवाच्य का प्रथमान्त कर्त्ता तृतीयान्त हो जाता है और क्रिया सर्वदा प्रथम पुरुष एक वचन में रहती है। भाववाच्य का अर्थ है—केवल किसी क्रिया का होना दिखलाना। भाववाच्य अकर्मक क्रियाओं में ही होता है यथा—स भवति, तौ भवतः, ते भवन्ति ; त्वं भवसि, युवाम् भवथः, यूयम् भवथ, अहं भवामि, आवाम् भवावः, वयं भवामः (कर्तृवाच्य)—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, तैः भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्यां भूयते, युष्माभिः भूयते, मया भूयते आवाभ्यां भूयते, अस्माभिः भूयते। अहमधुना गच्छामि—मया अधुना गम्यते।

७. कर्मवाच्य को कर्तृवाच्य में बदलने के लिए कर्मवाच्य का तृतीयान्त कर्त्ता प्रथमान्त में और प्रथमान्त कर्म द्वितीयान्त में बदल जाता है तथा क्रिया का लिङ्ग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होता है। यथा—वनदेवताभिः नृपाणां कीर्त्तिः गीयते (कर्मवाच्य)—वनदेवताः नृपाणां कीर्त्तिं गायन्ति (कर्तृवाच्य)।

८. भाववाच्य को कर्तृवाच्य में परिवर्तित करने के लिए भाववाच्य का तृतीयान्त कर्त्ता प्रथमान्त हो जाता है और क्रिया के लिङ्ग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार हो जाते हैं। यथा—तूष्णीं स्थीयतां भवता (भाववाच्य)—तूष्णीं तिष्ठतु भवान् (कर्तृवाच्य)।

अनुशीलनी

१. निम्नलिखित धातुओं के कर्मवाच्य के रूप लिखो—

भू, पठ्, मुच्, स्था, दा, ज्ञा, पा और जि, नी और श्रि धातु के लट्, लोट्, विधिलिङ् और लुट् लकार में कर्मवाच्य के रूप लिखो।

२. भाववाच्य में क्रिया की क्या व्यवस्था रहती है? लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन सार्वधातुक लकारों में कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूप बनाने के लिए कौन-सा प्रत्यय जोड़ा जाता है? उदाहरणपूर्वक लिखिये।

३. कर्मवाच्य बनाने के नियमों का सोदाहरण विवेचन कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. निम्नलिखित वाक्यों में वाच्यपरिवर्तन कीजिये—

(१) रामो भरतं ब्रूते, (२) विजयतां देवः, (३) सः मम पुस्तकं कुत्र स्थापयति, (४) रामः मित्रेण सह पुस्तकं पठति, (५) कन्यया सह सः मनुष्य उद्यानं गच्छति, (६) सदा तत्र त्वमपि गच्छसि, (७) तेन पत्रिका प्रेषिता, (८) त्वं देवतायाः पूजां कुरु, (९) तस्य आज्ञया अहम् इदं कार्यं करोमि, (१०) अहमद्य उपदेशं श्रोतुं गच्छामि, (११) अहम् अत्र क्रीडामि, (१२) धेनुः वनं गमिष्यति, (१३) चौरः धनं चोरयति, (१४) रामेण सह लक्ष्मणः वनं गतः, (१५) सीतया सह रामः वनं गतः, (१६) सा पुत्रिका पुष्पमालां करोति, (१७) तेन पारितोषिकं प्राप्तम्, (१८) अयं सैनिकः कशया अश्वं ताडयति, (१९) पाठशालायां केनापि सह त्वं कलहं न कुरु, (२०) तेन अद्य शोभना कथा कथिता, (२१) मालाकारः उद्यानं गत्वा बहूनि पुष्पाणि आनयति, (२२) रजकः रक्तं वस्त्रं साधु प्रक्षालयितुं न शक्नोति, (२३) केनचित् धूर्तेन पक्षिपालकेन एकः शुकः मनुष्य इव वक्तुं शिक्षितः, (२४) तेन बालकेन तत्र तडागे एकः मण्डूकः दृष्टः, (२५) तेन वृषभेन प्रभूतं जलं पीतम्, (२६) तत् तृणं तेन वृषभेण शीघ्रमेव भक्षितम् ।

लकारार्थ प्रक्रिया

किन्हीं विशेष दशाओं में लकारों के अर्थ और काल में जो परिवर्तन होता है, उसका विवेचन लकारार्थ प्रक्रिया में किया जाता है।

१. वर्तमान काल में जो क्रिया हो रही है उसे निर्दिष्ट करने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है। यह क्रिया के अविराम (Continuity) और सर्वकाल में सत्य रहनेवाली वस्तु (True for all times) को भी प्रकट करता है। यथा—जलं वहति—जल ले जाता है, सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्—कहो सत्संगति क्या नहीं करती।

२. वर्तमान के समीपवर्ती भूत या भविष्यत् में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—अहमागच्छामि—मैं अभी आया हूँ। कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि—तुम कब जाओगे ? मैं अभी जाऊँगा।

३. कथाओं में स्वाभाविक क्रिया को बतलाने के लिए भूतकाल के अर्थ में लट् लकार प्रयुक्त होता है। यथा—हिरण्यकः भोजनं कृत्वा बिले स्वपिति।

४. स्म उपपद के योग में भूतकाल के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—एकस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म—किसी वन में भासुरक नाम का सिंह रहता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. प्रश्नवाचक शब्दों के साथ जब विचार या इच्छा विवक्षित हो तो, भविष्यत् के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—किं करामि, क्व गच्छामि—मैं क्या करूंगा, कहां जाऊंगा।

६. पुरा और यावत् के साथ भविष्यत् काल और निश्चय का बोध कराने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—आलोके ते निपतति पुरा सा—निश्चय ही वह तुम्हारे दृष्टिगोचर होगी।

७. कदा और कर्हि के साथ भविष्यत् के अर्थ में विकल्प से लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—कदा गच्छन्ति ते—वे कब जायेंगे।

८. लिप्सा की सिद्धि में लृङ् (Conditional) के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—यो अन्नं ददाति स स्वर्गं याति—जो अन्न देता है, वह स्वर्ग जाता है।

९. अनद्यतन—जो क्रिया आज से पहले समाप्त हो चुकी है, उसमें लङ् (Imperfect) लकार का प्रयोग होता है। ऐतिहासिक भूतकाल में भी इसका प्रयोग होता है।

१०. समीप भूतकाल के अन्तर्गत प्रश्न पूछने के लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा—अगच्छत् किं स ग्रामम्—क्या वह गांव को चला गया, किन्तु दूरवर्ती भूतकाल हो तो लिट् (perfect) का प्रयोग होता है। यथा—कंसं जघान किम् ?

११. दूरवर्ती भूतकाल की उस क्रिया को बतलाने के लिए, जो आज से पहले समाप्त हो चुकी है और जिसे वक्ता ने देखा नहीं है। यथा—कंसं जघान कृष्णः बभूव योगी किल वीर्यसेन.।

१२. सामान्य भूतकाल को बतलाने के लिए लुङ् लकार का प्रयोग होता है। आज से पहले की क्रिया लङ् और लिट् से निर्दिष्ट होती है, अतः लुङ् निकटवर्ती क्रिया में, जो आज के दिन (Currentday) में हुई है, प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में (Present Perfect) के द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है, वही अर्थ संस्कृत में लुङ् लकार के द्वारा प्रकट किया जाता है। यथा—अभूत् सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथ—मेरे मनोरथ ने स्वादुफल को प्राप्त कर लिया।

१३. समीप भूतकाल के अतिरिक्त प्रबन्ध के अर्थ में भी भूतकाल का प्रयोग होता है। यथा—ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवनम् अन्नमदात्—जीवनभर वह ब्राह्मणों को अन्न देता रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४. मा और मास्म के योग में लोट् लकार का अर्थ होने पर अकार आगम के बिना लुङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा—मा गाः—मत जाओ, मा शुचः—सोच मत करो, मास्म प्रतीपं गमः—विरुद्ध मत जाओ।

१५. जो क्रिया वर्तमान में न हो, उसको व्यक्त करने के लिए लुट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—पंचभिरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः—पाँच दिन में हम वहाँ जायेंगे; सभा भविता—सभा होगी।

१६. वर्तमान दिन की भविष्य क्रिया तथा साधारण भविष्य क्रिया के साथ भविष्य प्रवन्ध को व्यक्त करने के लिए लृट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—यास्यत्यद्य शकुन्तला—शकुन्तला आज जायगी; अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये—मैं कहाँ विश्राम करूंगा।

१७. कभी-कभी लोट् के अर्थ में भी लृट् (Simple futura) प्रयुक्त होता है। यथा—तदा मम पाशाँश्छेत्स्यसि—पीछे मेरे बन्धनों को काटो, पंचात् सरः प्रति गमिष्यति मानसं तत्—मानसरोवर के पीछे जाइये।

१८. जिनमें कोई भूत या भविष्यत्कार्य अन्य किसी कार्य पर निर्भर करता है, परन्तु कारण के न होने से कार्य न हो सकता हो, उन अर्थों में लङ् लकार का प्रयोग होता है। आशय यह है कि कार्यकारण दोनों को प्रकट करने के लिए लङ् लकार का व्यहावर किया जाता है। यथा—सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्।

१९. यदि कारण द्योतक वाक्य में विधिलिङ् का प्रयोग होता है, तो कार्यद्योतक वाक्य में लृङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। यथा—यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं उत्पीडयिष्यन् दुर्वला बलवत्तराः—यदि राजा दण्ड न दे तो अधिक बलवाले दुर्बलों को दुःख दें।

२०. आज्ञा, प्रार्थना और उपदेश के अर्थ में लोट् लकार मध्यम पुरुष में प्रयुक्त होता है। यथा—कुरु देव कार्यम्—देवताओं का काम करो, देहि में प्रतिवचनम्—मुझे उत्तर दीजिये, भज क्षमाम्—क्षमा को धारण करो।

२१. कर्मवाच्य में प्रार्थना का अर्थ होने पर लोट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में प्रयुक्त होता है। यथा—एतदासनमास्यताम्—इस आसन पर आप बैठिये, देव श्रूयताम्—महाराज सुनिये।

२२. इच्छा और आशीर्वाद के अर्थ में लोट्, विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा—चिरं जीव—चिरकाल तक जीवित रहो, पुत्रं लभस्व—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप को पुत्र प्राप्त हो काले-काले वर्षतु पर्जन्यः—समय-समय पर बादल बरसें।

२३. प्रश्न (Question), शक्ति Ability और विधि (Necessity) के अर्थ में लोट् लकार उत्तम पुरुष में प्रयुक्त होता है। यथा—किं करवाणि ते—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ?; करवामैतद्वयं देवि प्रियं तव—हे देवि, हम आपकी यह भलाई कर सकते हैं; नहि दूतवधं करवाणि—मुझे दूत का वध नहीं करना चाहिए।

२४. स्म के योग में प्रार्थना अर्थ में और मा के योग में वर्तमान अर्थ में लोट् लकार का प्रयोग होता है। यथा -बालमध्यापयस्म - कृपया बालक को पढ़ाइये; मा भवतु—यह नहीं है।

२५. सम्भावना (Possibility) या संशय (Doubt) के अर्थ में प्रश्न-वाचक शब्दों के योग में लोट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—किमधुना करवाम अब क्या करें।

२६. आशीर्वाद देने के अर्थ में आशीर्लिङ् का प्रयोग होता है। यथा—वीर-प्रसवा भूयाः—तू वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली हो; कृतार्थो भूयासम्—मैं कृतार्थ होऊँ। कभी-कभी लोट् और विधिलिङ् के अर्थ में भी यह लकार प्रयुक्त होता है। यथा—इदं वचो ब्रूयास्त—आप इस बात को कहें।

२७. विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट (Speaking of honorary duty), संप्रश्न (Questioning) और प्रार्थना अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—आपदर्थे धन रक्षेत्—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, इह भवान् भुञ्जीत—आप यहाँ भोजन कीजिये; इहासीत भवान्—आप यहाँ बैठिये, पुत्रमध्यापयेद्भवान्—आप मेरे पुत्र को पढ़ाइये; किं भो वेदम् अधीयीय उत तर्कम्—श्रीमान् क्या मैं वेद पढ़ूँ या तर्क? भोजनं लभेय—मैं भोजन पाऊँ।

२८. प्रैष (Direction) अतिसर्ग (Permission to do as one like) और प्राप्तकाल (Proper time for an action) में विधिलिङ्, लोट् या तव्य, अनीय य कृत्य प्रत्ययान्त पद प्रयुक्त होते हैं। यथा—इहासीत भवान्

२९. यत् शब्द के प्रयोग में काल, समय, वेला आदि के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—कालः समयो वेला वा यद्भुञ्जीत भवान् यह समय जब आप को भोजन करना चाहिए।

३०. अर्हता (Fitness) या शक्ति (Capability) अभिप्रेत हो तो विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—भवान् खलु कन्यां वहेत वोढा वा का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवता खलु कन्या उह्येत् वोढव्या—तुम कन्या से विवाह के योग्य हो।

३१. प्रश्नवाचक किम्, कतर आदि के साथ गर्हा (censure) में विधिलिङ्, लट् का प्रयोग होता है। यथा—कः हरिं निन्देत्—हरि की कौन निन्दा करे।

३२. आश्रित वाक्य में काम (Hope) या प्रार्थना (Prayer) के अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—अशंसेऽधीयीय—मैं आशा करता हूँ मैं पढूँगा।

३३. कच्चित् के प्रयोग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।

३४. संभावना वचन (Hope or expectation) संभावना, अपि, अपिनाम में यद् का प्रयोग होने पर विधिलिङ् लकार आता है। यथा—अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः - आशा है वह ब्राह्मण पुत्र जी जाये; संभावयामि यद्भुञ्जीथास्त्वम् – मुझे संभावना है कि आप भोजन करें।

३५. इच्छा अर्थवाले धातु – जैसे इष् कम्, प्रार्थ आदि के साथ विधिलिङ् या लोट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—इच्छामि सोमं पिवेत् वा भवान् मैं चाहता हूँ आप सोम पियें।

३६. संकेतार्थक (Conditional) वाक्यों में जहाँ एक वाक्य का अर्थ दूसरे वाक्य के अर्थ के साथ कार्य-करण भाव का सम्बन्ध रखता हो, वहीं विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा–यदि तातः सन्निहितो भवेत् ततः किं भवेत्–यदि पिताजी यहाँ होते तो क्या होता। यदि न स्यान्नरपति-र्विप्लवेन नौरिवप्रजा–यदि राजा न हो तो नौ की भांति प्रजा नष्ट हो जायगी।

अनुशीलनी

१. संस्कृत में भूत और भविष्यत्काल के कितने भेद हैं? भूतकाल के अर्थ में कौन-कौन लकार प्रयुक्त होते हैं? लिट् और लङ् लकार का प्रयोग किस-किस स्थिति में होता है?

२. लट् का प्रयोग कहाँ-कहाँ होता है? कदा और कर्हि के योग में कौन-से लकार का प्रयोग किया जाता है, उदाहरणपूर्वक समझाइये।

३. लिप्सा की सिद्धि में कौन-सा लकार आता है? लोट् लकार का प्रयोग किस-किस अर्थ में किया जाता है? विधिलिङ् का व्यवहार कहाँ-कहाँ किया जाता है, उदाहरण सहित लिखिये।

४. कार्य-कारण भाव को प्रकट करने के अर्थ में कौन-सा लकार आता है? उदाहरण सहित समझाइये।

५. निम्न वाक्यों के क्रियापदों को शुद्ध या सिद्ध कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) सेयं शकुन्तला पतिगृहं याति (२) एवं युवतयो गृहिणीपदं यास्यन्ति (३) अस्ति भागीरथीतीरे पाटलिपुत्रनामधेयं नगरम् (४) हस्ती ब्रूते कस्त्वम् (५) कर्हि गमिष्यते पाटलिपुत्रं भवान् (६) नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः (७) यावदहमेव तत्र गमिष्यामि (८) जगाम किमद्य स ग्रामम् (९) अभवत् राजाकिल शूद्रको नाम (१०) त्वं प्रतिष्ठां मा अगमः (११) यावज्जीवं सुखं जीवेत् (१२) तपोवनवासिनामुपरोधो मा वभूव (१३) ब्राह्मणानां वचनेषु संशयो मा भूत् (१४) बभूव सर्वं शुभशंसी तत्क्षणम् (१५) पञ्चभिरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तास्मः (१६) ते विद्यालयमस्मिन्नहनि गन्तारः (१७) अरुणस्तमो भेत्ता (१८) किंवा भविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (१९) राजानः परिपालयन्तु वसुधाम् (२०) मे प्रतिवचनं देयाः (२१) तृष्णां छिन्द्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कुरु (२२) यथेष्टं चर वैदेहि पन्थानः सन्तु ते शिवाः (२३) सतां पीडनं मा भवत्विदानीम् (२४) आत्मानं सततं रक्ष (२५) सहसा विदधीत न क्रियाम् (२६) दोषं तु मे कंचित्कथय येन स प्रतिविधीयिष्यते (२७) वर्जयेत्तादृशं मित्रम् (२८) न मुह्येदथकृच्छ्रेषु न च धर्मं परित्यजेत् (२९) शाम्येत प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः (३०) सर्वतो जयमिच्छेत् पुत्रादिच्छेत्पराजयम् ।

६. अर्हता और शक्ति के योग में कौन-सा लकार प्रयुक्त होता है, उदाहरण सहित लिखिये।

७. आज्ञा अर्थ में कौन-कौन लकार प्रयुक्त होते हैं ? विधिलिङ् और आशीर्लिङ् में अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से क्या अन्तर है, उदाहरणपूर्वक समझाइये ।

८. सम्भावना और संशय अर्थ में प्रयुक्त होने वाले लकारों का विवेचन कीजिये ।

९. लोट् और विधिलिङ् का प्रयोग किन-किन स्थितियों में होता है, उदाहरण सहित लिखिये।

१०. समीप काल में प्रश्न करने पर क्रिया को किस लकार में रखा जाता है ? "वसन्तीह पुरा छात्राः" वाक्य में प्रयुक्त क्रिया लट् लकार में क्यों रखी गई है ? यावत् और पुरा अव्ययों के योग में किस अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है ?

११. लिप्सासूचक किस सर्वनाम के योग में भविष्यदर्थं में कौन-कौन लकार प्रयुक्त होते हैं ? उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिये ।

कृदन्त विचार

कृत् प्रत्यय धातु के अन्त में लगते हैं और उनके योग से संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय के रूप बनते हैं। कृत् प्रत्ययों से सिद्ध शब्द कृदन्त कहलाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत् और तिङ् प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृत् प्रत्ययों से सिद्ध कृदन्त शब्द संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं, क्रिया नहीं; परन्तु तिङ् प्रत्ययों से सिद्ध तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं। कृत् और तद्धित प्रत्ययों में यह अन्तर है कि तद्धित प्रत्यय सर्वदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय में जोड़े जाते हैं; किन्तु कृत् प्रत्यय धातु में ही लगते हैं। कृदन्त कभी-कभी क्रिया का भी कार्य करता है।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं—कृत्य, कृत् और उणादि।

कृत्य प्रत्यय

कृत्य प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, और ण्यत्। ये प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में जो कार्य Potential Participle—पोटेंशल् पार्टीसिप्ल् से लिया जाता है, वही कार्य संस्कृत में कृत्य प्रत्ययों से लिया जाता है। प्रायः ये विशेषण का कार्य करते हैं। यथा—स्नानीयं चूर्णम्—वह चूर्ण जिससे स्नान किया जाय, दानीयो विप्रः—दान देने योग्य ब्राह्मण, गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए, आदि। अभिप्राय यह है कि हिन्दी में जो कार्य चाहिए या योग्य द्वारा प्रकट किया जाता है, संस्कृत में वही कार्य कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों से सम्पन्न होता है।

तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६; केलिमर उपसंख्यानम् (वा०)—तव्यत् (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिमर् (एलिम) ये चारों भाववाच्य और कर्मवाच्य में प्रायः सभी धातुओं में जोड़े जाते हैं। यथा—

पठ् + तव्य = पठितव्य, पठ् + अनीयर् (अनीय) = पठनीय, भू + तव्य = भवितव्य।

धातु	तव्य-तव्यत्,	अनीयर् (अनीय),	केलिमर् (एलिम)
गम्	गन्तव्य	गमनीय	
नी	नेतव्य	नयनीय	
ची	चेतव्य	चयनीय	
चर्	चरितव्य	चरणीय	
दा	दातव्य	दानीय	
भुज्	भोक्तव्य	भोजनीय	
भक्ष्	भक्षितव्य	भक्षणीय	
शंस्	शंसितव्य	शंसनीय	
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छिद्	छेत्तव्य	छेदनीय	छिदेलिम
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम
पच्	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम

२. अचो यत् ३।१।९७; पोरदुपधात् ३।१।९८—स्वरान्त धातुओं, पवर्गान्त धातुओं अथवा जिनकी उपधा में अकार हो, ऐसे धातुओं के अन्त में यत् प्रत्यय लगता है। यथा—दा + यत् (य) = देय, धा + यत् = धेय। निम्नांकित रूप स्मरणीय हैं।

धातु		प्रत्यय (यत्)						
गै	=	गेय	लप्	=	लप्य	शक्	=	शक्य
छो	=	छेय	लभ्	=	लभ्य	गद्	=	गद्य
चि	=	चेय	आ + लभ्	=	आलभ्य	मद्	=	मद्य
नी	=	नेय	उप + लभ्	=	उपलभ्य	चर्	=	चर्य
शप्	=	शप्य	तक्	=	तक्य	वह्	=	वह्य
जप्	=	जप्य	शस्	=	शस्य			
			हन्	=	वध्य			

३. नीचे लिखे हुए प्रमुख धातुओं में क्यप् प्रत्यय लगता है। यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो धातु और प्रत्यय के बीच 'त्' का आगम हो जाता है। यथा—

इ + क्यप् (य)	=	इत्य—जाने योग्य
स्तु "	=	स्तुत्य
शास् "	=	शिष्य
वृ "	=	वृत्य (वरणीय)
आदृ (क्यप्)	=	आदृत्य—आदरणीय
जुष् "	=	जुष्य—सेव्य
मृज् "	=	मृज्य—पवित्र करने योग्य
भृ "	=	भृत्य
कृ "	=	कृत्य
वृष् "	=	वृष्य

मृज्, भृ, कृ तथा वृष् में विकल्प से ही क्यप् लगता है, क्यप् न होने पर ण्यत् होता है और क्रमशः मार्ग्य, भार्या, कार्य और वर्ष्य रूप बनते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४—ऋकारान्त अथवा व्यञ्जनान्त धातुओं में ण्यत् (य) प्रत्यय लगता है। इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि या गुण हो जाता है। ण्यत् प्रत्यय लगने के पूर्व च् के स्थान पर ज् और क् के स्थान पर ग आदेश होता है। यथा—

कृ + ण्यत् (य) = क् + आर् + य = कार्य
पठ् + ण्यत् (य) = पाठ् + य = पाठ्य (अ के स्थान पर 'आ' वृद्धि हुई है)
वृष् + ण्यत् = व् + अर् + ष् + य = वर्ष्य (उपधा के ऋ के स्थान पर गुण हुआ है)
पच् + ण्यत् = पाक्य
मृज् + ण्यत् = मार्ग्य

यज् + ण्यत् = याज्य, याच् + ण्यत् = याच्य, रुच् + ण्यत् = रोच्य, ऋच् + ण्यत् = अर्च्य, त्यज् + ण्यत् = त्याज्य, भुज् + ण्यत् = भोज्य— भोग्य, वच् + ण्यत् = वाच्य— वाक्य, श्रू + ण्यत् = श्राव्य, पू + ण्यत् = पाव्य, लू + ण्यत् = लाव्य।

५. वसेस्तव्यत्कर्त्तरिणिच्च (वा); भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ३।४।६८— कुछ धातुओं के कृत्य प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—

वस + तव्य = वास्तव्यः (बसनेवाला)
भू + यत् = भव्यः (होनेवाला)
गै + यत् = गेयः (गानेवाला)
प्रवच् + अनीयर् = प्रवचीयः (व्याख्यान करनेवाला)
उपस्था + अनीयर् = उपस्थानीयः (निकट खड़ा होनेवाला)
जन् + यत् = जन्य (पैदा होनेवाला)
आप्लु + ण्यत् = आप्लाव्यः (तैरनेवाला)
आपत् + ण्यत् = आपात्यः (गिरनेवाला)

भव्य से लेकर आपात्य तक विकल्प से कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होते हैं।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय

भूतकाल का बोध कराने के लिए प्रधान रूप से चार कृत् प्रत्यय काम में लाये जाते हैं—क्त, क्तवतु, क्वसु और कानच्, भूतकाल के ये प्रत्यय अंग्रेजी (Past Participle) का अर्थ व्यक्त करते हैं।

क्त और क्तवतु

उपर्युक्त दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूतकाल अथवा कार्य की समाप्ति का बोध कराने के लिए लगाये जाते हैं। इनमें से क् और उ का लोप होकर त और तवत् शेष रह जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्त प्रत्ययान्त

पु०	न०	स्त्री०	
पठ्—पठितः	पठितम्	पठिता	भुज् + क्त = भुक्तः
स्ना—स्नातः	स्नातम्	स्नाता	मुच् + क्त = मुक्तः
पा—पातः	पातम्	पाता	रिच् + क्त = रिक्तः
भू—भूतः	भूतम्	भूता	युज् + क्त = युक्तः
कृ—कृतः	कृतम्	कृता	क्रुध् + क्त = क्रुद्धः
त्यज्—त्यक्तः	त्यक्तम्	त्यक्ता	तुष् + क्त = तुष्टः
तृप्—तृप्तः	तृप्तम्	तृप्ता	दह् + क्त = दग्धः
शक्—शक्तः	शक्तम्	शक्ता	लिख् + क्त = लिखितः
सिच्—सिक्तः	सिक्तम्	सिक्ता	दृश् + क्त = दृष्टः

क्तवतु प्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती	श्रु + क्तवतु = श्रुतवान्
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नातवती	चुर + क्तवतु = चोरितवान्
पातवान्	पातवत्	पातवती	लभ + क्तवतु = लब्धवान्
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती	दृश् + क्तवतु = दृष्टवान्
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती	लिख् + क्तवतु = लिखितवान्
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती	
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती	क्री + क्तवतु = क्रीतवान्
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती	नी + क्तवतु = नीतवान्
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती	

वद् + क्त = उदित, वद् + क्तवतु = उदितवत्, वस् + क्त = उषित, वस् + क्तवतु = उषितवान्, शॄ + क्त = शीर्ण, शीर्णवत्; जृ + क्त = जीर्ण, जृ + क्तवतु = जीर्णवत्, छिद् + क्त = छिन्न, छिद् + क्तवतु = छिन्नवत्, भिद् + क्त = भिन्न, भिद् + क्तवतु = भिन्नवत् ।

६. लिटः कानज्वा ३।२।१०६; क्वसुश्च ३।२।१०७—लिट्—परोक्ष भूत के अर्थ का बोध कराने के लिए क्वसु (वस्) और कानच् (आन) प्रत्यय जोड़े जाते हैं। क्वसु परस्मैपदी धातुओं के पश्चात् और कानच् आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। यथा—

श्रु + क्वसु (वस्) = शुश्रुवस्, विविद्वस्, मृद् + क्वसु = ममृद्वस्, स्तु + क्वसु = तुष्टुवस्, भू + क्वसु = बभूवस्, कृ + क्वसु = चकृवस्, घस् + क्वसु = जक्षिवस्, इन् + क्वसु = ईयिवस्, स्था + क्वसु = तस्थिवस्, दा + क्वसु = ददिवस्, पा + क्वसु = पपिवस्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पच् + क्वसु = पेचिवस्, सद् + क्वसु = सेदिवस्, पत् + क्वसु = पेतिवस्, वच् + क्वसु = ऊचिवस्, वस् + क्वसु = ऊषिवस्, यज् + क्वसु = इजिवस् ।

युध् + कानच् (आन) = युयुधान, रुच् + कानच् = रुरुचान, वन्द् + कानच् = ववन्दान, शिक्ष् + कानच् = शिशिक्षाण, व्यथ् + कानच् = विव्यथान, कृ + कानच् = चक्राण, वच् + कानच् = ऊचान ।

वर्तमान काल के कृत् प्रत्यय

वर्तमान काल का बोध कराने के लिए शतृ, शानच्, शानन् और चानश् प्रत्यय धातु के अन्त में जोड़े जाते हैं। अंग्रेजी में (Present Participale) का जो अर्थ है, संस्कृत में वही अर्थ भूतकालीन कृदन्तों से निकलता है।

७. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४—कर्तृवाच्य में परस्मैपदी धातुओं के अनन्तर वर्तमान काल में शतृ (अत्) प्रत्यय लगता है। और आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर शानच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। शानच् का केवल आन शेष रहता है। भ्वादि, दिवादी और तुदादि गणीय धातुओं के परे मुक् का आगम होने के कारण शानच् के स्थान पर मान हो जाता है। यथा—

धा० शतृ (अत्)

धातु	शतृ (अत्)				
धाव	धावत्	तृ	तरत्	दिव्	दीव्यत्
वद्	वदत्	तप्	तपत्	सिव्	सीव्यत्
वस्	वसत्	नम	नमत्	नश्	नश्यत्
भू	भवत्	चम्प्	चम्पत्	जॄ	जीर्यत्
जि	जयत्	फल्	फलत्	पुष्	पुष्यत्
कृष्	कर्षत्	पत्	पतत्	मुह्	मुह्यत्
शुच्	शोचत्	स्था	तिष्ठत्	स्पृश्	स्पृशत्
ग्लै	ग्लायत्		पिबत्	भी	बिभ्यत्
ध्यै	ध्यायत्	घ्रा	जिघ्रत्	शास्	शासत्
गै	गायत्	गम्	गच्छत्	हा	जुह्वत्
		दंश्	दंशत्		

शानच् (आन)

सेव् + शानच् = सेवमान, वृत् + शानच् = वर्तमान, वृध् + शानच् = वर्धमान, व्यथ् — व्यथमान, सह् — सहमान, जन् — जायमान, दीप् — दीप्यमान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दह्—दह्यमान, बुध्—बुध्यमान, विद्—विद्यमान, मृ—म्रियमाण, हृ—ह्रियमाण, भ्री—भ्रियमाण, शी—शयान, अधि + इ = अधीयान, तन्—तन्वान, मा—मिमान, क्री—क्रीणान।

आस् धातु के परे शानच् के स्थान पर ईन होता है। यथा—आसीन।

८. विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६—विद् धातु के बाद शतृ प्रत्यय के स्थान में विकल्प से वसु आदेश होता है। यथा—विद् + शतृ = विद्वत्, विद् + वसु = विद्वस्, पूङ् यजोः शानन् ३।३।१२८—वर्तमान काल का अर्थ प्रकट करने के लिए पू तथा यज् धातुओं के बाद शानन् प्रत्यय होता है। यथा—पू + शानन् = पवमानः, यज् + शानन् = यजमानः।

९. ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ३।५।१२९—परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार के धातुओं में किसी की आदत, आयु अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए चानश् (आन) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

भुज् + चानश् = भुञ्जानः—भोगं भुञ्जानः—भोग भोगने की आदत वाला, कवचं बिभ्राणः—कवच धारण करने की अवस्था वाला, शत्रुं निघ्नानः = शत्रु को मारने वाला।

भविष्यत्काल के कृत् प्रत्यय

१०. लृटः सद्वा ३।३।१४—भविष्यत् काल में परस्मैपदी धातु के परे कर्तृवाच्य में स्यतृ और आत्मनेपदी धातुओं में स्यमान प्रत्यय होते हैं। स्यमान परे रहने से लुट् लकार के सभी कार्य होते हैं। यथा—

भू + स्यतृ (स्यत्) = भविष्यत्, गम् + स्यतृ (स्यत्) = गमिष्यत्, श्रु—श्रोष्यत्, जि—जेष्यत्, या—यास्यत्, स्था—स्थास्यत्, पा—पास्यत्, दृश्—द्रक्ष्यत्, हन्—हनिष्यत्, मृ—मरिष्यत्, पत्—पतिष्यत्, कारि—कारयिष्यत्।

सेव् + स्यमान = सेविष्यमाण, वृत् + स्यमान = वर्त्तिष्यमाण, व्यथ्—व्यथिष्यमाण, जन्—जनिष्यमाण, पत्—पत्स्यमान, सह—सहिष्यमाण।

११. भविष्यत्काल में उभयपदी धातु के परे कर्तृवाच्य में स्यतृ और स्यमान दोनों प्रत्यय होते हैं। यथा—स्तु + स्यतृ (स्यत्) = स्तोष्यत्, स्तुस्यमान = स्तोष्यमाण, दा—दास्यत्, दास्यमान; धा—धास्यत्, धास्यमान; ग्रह—ग्रहीष्यत्, ग्रहीष्यमाण, कृ—करिष्यत्—करिष्यमाण।

स्यतृ और स्यमान से बने हुए शब्द विशेषण होते हैं, अतएव विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति का अनुसरण करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुमुन् (तुम्)

१२. समानकर्तृकेषु तुमुन् ३।३।१५८—यदि दो क्रियाओं का एक कर्त्ता हो तो उनमें से निमित्त अर्थबोधक धातु के परे तुमुन् प्रत्यय होता है। यथा—

दृश् + तुमुन् (तुम्) = द्रष्टुम्, भुज् + तुमुन् = भोक्तुम्, अधीङ्—अध्येतुम्, भू—भवितुम्, शी—शयितुम्, बुध्—बोद्धुम्, कृ—कर्तुम्, ग्रह्—ग्रहीतुम्, दा—दातुम्, स्था—स्थातुम्, ज्ञा—ज्ञातुम्, जि—जेतुम्, यज्—यष्टुम्, सृज्—स्रष्टुम्, श्रु—श्रोतुम्, स्तु—स्तोतुम्, सह्—सोढुम्, गम्—गन्तुम्, हन्—हन्तुम्, वृत्—वर्तितुम्, नृत्—नर्तितुम्।

क्त्वा (त्वा)

१३. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१—दो क्रियाओं का एक कर्त्ता हो तो पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए धातु से आगे क्त्वा प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा

ज्ञा + क्त्वा = ज्ञात्वा, ध्यै—ध्यात्वा, स्ना—स्नात्वा, पा—पीत्वा, स्था—स्थित्वा, दा—दत्वा, धा—हित्वा, चि—चित्वा, जि—जित्वा, श्रि—श्रित्वा, क्री—क्रीत्वा, श्रु—श्रुत्वा, हु हुत्वा, भू—भूत्वा, कृ—कृत्वा, धृ—धृत्वा, स्मृ—स्मृत्वा, मुच्—मुक्त्वा, त्यज्—त्यक्त्वा, भुज्—भुक्त्वा, सृज्—सृष्ट्वा, छिद्—छित्वा, भिद्—भित्वा, बुध—बुद्ध्वा, क्षिप्—क्षिप्त्वा, लभ—लब्ध्वा, दृश्—दृष्ट्वा, पठ्—पठित्वा, यज्—इष्ट्वा, ग्रह—ग्रहीत्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा।

ल्यप् (य)

१४. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७—नञ् भिन्न अव्यय के साथ समास होने पर धातु के परे क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होता है। यथा—

आ + घ्रा + ल्यप् (य) = आघ्राय, आ + दा—आदाय, वि + धा—विधाय, अपि + धा—अपिधाय, प्र + स्था—प्रस्थाय, विहाय, व्याख्याय, विज्ञाय, सन्त्यज्य, विभज्य, प्रणिपत्य, प्राप्य, प्रकम्प्य, आरभ्य, निशम्य, विश्रम्य, आसेव्य, विजित्य, संचित्य, अधीत्य, विधृत्य, आवृत्य, प्रकृत्य, विसृज्य, प्रविश्य, आकृष्य।

१५. ल्यप् परे रहने से हन्, मन्, तन् धातुओं के न का त; यम्, रम्, गम् धातुओं के म के स्थान पर विकल्प से त् एवं स्वप्, वस्, वप्, वच्, वह् और वद् धातु के व के स्थान पर उ होता है। यथा—आ—हन्—आहत्य, सम्मत्—सम्मत्य, वितत्—वितत्य, सं - यम—संयत्य, संयम्य, विरम्य, विरत्य, प्रगम्य, प्रगत्य, आगम्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगत्य, आ—सञ्ज—आसज्य, प्र—शंस्—प्रशस्य, सम्—दंश्—सन्दश्य, प्र—मन्थ्—प्रमथ्य, अधि—शी—अधिशय्य, आपृच्छ्य, संगृह्य, विगृह्य, निगृह्य, वि—कृ—विकीर्यं, उद्गीर्यं, वितीर्य, प्रोह्य, अनु—वद्—अनुद्य, प्र—वच्—प्रोच्य।

णमुल् (अम्)

१६. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२—पौनः पुन्य अर्थ समझा जाय तो पूर्वकालिक क्रियावाचक धातु के परे णमुल् होता है। यथा—

स्मृ + णमुल् = स्मारम्, श्रु—श्रावम्, स्तु—स्तावम्, नम्—नामम्, ग्रह्—ग्राहम्, भुज्—भोजम्, भिद्—भेदम्, स्पृश्—स्पर्शम्, हस्—हासम्, सेव्—सेवम्, हन्—घातम्, अन्यथा—कृ—अन्यथाकारम्, एवं—कृ—एवंकारम्, इत्थंकारम्, कथंकारम्। णमुल् प्रत्यय से बने शब्द प्रयोगकाल में द्वित्व होते हैं।

भावार्थं कृत् प्रत्यय

१७. स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४—धातुओं से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए क्तिन् प्रत्यय लगता है और इससे शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—

गम् + क्तिन् (ति) = गति, कृ + क्तिन् (ति) = कृति, स्तुति, स्थिति; पा + क्तिन् = पीति, श्रु + क्तिन् = श्रुति, पच् + ति = पक्ति, रम् + ति = रति, नम् + क्तिन् = नति, गै + क्तिन् = गीति, प्री + क्तिन् = प्रीति, मन् + क्तिन् = मति।

१८. ल्युट् च ३।३।११५—धातुओं से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए ल्युट् प्रत्यय होता है। ल्युट् में अनुबन्ध का लोप होने पर केवल यु शेष रहता है और यु के स्थान पर अन होता है। यथा—हस् + ल्युट् = हस् + अन = हसन, या + अन = यान, दृश् + ल्युट् = दृश् + अन = दर्शन, श्रु—श्रवण, शी—शयन, साध् + अन = साधन, भज्—भजन, पठ्—पठन, पत्—पतन, मन्—मनन, भज्—भजन, छिद्—छेदन, वद्—वदन।

१९. भावे ३।३।१८—धातुओं से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए घञ् (अ) प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा—पच् + घञ् = पाकः, त्यज् + घञ् = त्यागः, रुज् + घञ् = रोगः, भज् + घञ् = भागः, सृ—सारः, हृ—हारः, पद्—पादः, भू—भावः, स्पृश्—स्पर्शः, क्रुध् + घञ् = क्रोधः।

२०. एरच् ३।३।५६—इकारान्त धातुओं में अच् (अ) प्रत्यय लगता है। यथा—जि + अच् = जयः, नी + अच् = नयः, भि + अच् = भयम्।

२१. ऋदोरप् ३।३।५७—ऋकारान्त और उकारान्त धातुओं में अप् प्रत्यय जोड़ कर भाववाचक बनाते हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृ + अप् (अ) = करः, गृ + अप् = गरः— विष, यु— यवः—जोड़ना, लू— लवः— काटना, स्तु— स्तवः, पूञ्—पवः ।

२२ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९० - यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ् और रक्ष् धातुओं में भावार्थक नङ् (न) प्रत्यय होता है। यथा—

यज् + नङ् (न) = यज्ञः, याच् - याच्ञा, यत्— यत्नः, विच्छ् - विश्नः, प्रच्छ— प्रश्नः, रक्ष्— रक्ष्णः ।

२३. णिजन्त— प्रेरणार्थक धातुओं में तथा आस्, श्रन्थ, घट्ट, वन्द और विद् धातुओं से भाववाचक बनाने के लिए युच् (अन) प्रत्यय होता है। और इससे बने शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—

कृ + णिच् + युच् + टाप् = हारणा, दारणा, आस्—आसना, श्रन्थ— श्रन्थना, घट्ट— घट्टना, वन्द—वन्दना, वेद— वेदना ।

कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

ण्वुल्, तृच्

२४. ण्वुल्तृचौ ३।१।१३३ – धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ण्वुल् (वु) और तृच् (तृ) प्रत्यय होते हैं। यथा— करोतीति कारकः—कृ + ण्वुल् (वु) = कारकः, नायकः, पावकः, हन्— घातकः, दा—दायकः, जन्— जनकः, दृश् – दर्शकः, यज्— याजकः, अधीङ्—अध्यापकः ग्रह् -- ग्राहकः, भुज्—भोजकः ।

करोतीति—कृ + तृच् = कर्ता, भृ = भर्ता, नी—नेता, या—याता, दृश् - द्रष्टा वच्— वक्ता, श्रु—श्रोता, हन्— हन्ता, लभ् - लब्धा; यज्—यष्टा, वह्वोढा ।

२५. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४—प्रेरणार्थक नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि धातुओं के अन्तर ल्यु (अन); ग्रहि, स्था, मन्थि अयाचि, अवादी, विषयि आदि शब्दों के अन्तर णिनि (इन्) और पच्, वद्, चक्ष्, पत् आदि धातुओं के अनन्तर अच् प्रत्यय होता है। यथा—

ग्रहणातीति—ग्रह् + णिन् (इन्) = ग्राही, नन्दयतीति—नन्द + ल्यु = (अन) = नन्दनः, शोभनः, रोचनः, पचतीति पच् + अच् (अ) = पचः । —

अच् – प्लवतीति प्लवः – जलावन, चोरः, श्वायं पचतीति श्वपचः – चाण्डाल, अंशं हरति = अंशहरः—दायाद, भागहराः भ्रातरः, पूजामर्हतिपूजार्हः – विद्वान्, विद्यार्हः, दण्डार्हः, कूपशयः—मण्डूक, गिरौ शेते—गिरिशः-शिव, गृह्णन्ति धारयन्ति आकर्षणादिना सर्वान् पदार्थानिति = ग्रहः ।

ष्वुन् - नृत्यतीति = नर्तकः, खनतीति = खनकः, रञ्जतीति = रजकः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क—क्षिपतीति = क्षिपः, लिखः, बुधः, कृशः; प्रीणातीति = प्रियः, प्रकर्षेण जानाति = प्रज्ञः, विज्ञः, गाः ददातीति = गोदः, धनदः ।

अण्—ग्रन्थं करोति = ग्रन्थकारः, वृत्तिकारः, भाष्यकारः, तन्तून् वयति = तन्तुवायः

ट—दिवा करोति = दिवाकरः, विभां करोति = विभाकरः, प्रभाकरः, भास्करः, निशाकरः, वनेचरः, पुरःसरः, पूर्वसरः ।

टक्—क्षीरं पिबति = क्षीरपः, मद्यपः, शत्रुं हन्ति = शत्रुघ्नः, कृतघ्नः ।

ड—अध्वानं गच्छति = अध्वगः, पूरगः, सर्वगः, पत्रं गच्छतीति = पत्रगः, विहायसा गच्छति = विहगः, न गच्छति = नगः, पङ्के जातम् = पङ्कजम्, सरसि जातम् = सरोजम्, बुद्धेः जातः = बुद्धिजः, आत्मनो जातः = आत्मजः, अनु—पश्चाज्जातः = अनुजः, अग्रे जातः = अग्रजः, क्लेशं हन्ति = क्लेशापहः ।

खश् जनानेजयति = जनमेजयः, विधुं तुदति = विधुन्तुदः = राहुः ।

खच्—प्रियं वदतीति = प्रियंवदा—भार्या, वशंवदः—पुत्रः, परान् तापयति = परन्तपः—शूर, वाचं यच्छतीति—वाचंयमः—मितभाषी, पुरं दारयति = पुरंदरः, मेघं करोति = मेघंकरः भयङ्करः, विश्वं बिभर्ति = विश्वम्भरः, पतिंवरा—कन्या, शत्रुञ्जयः, शत्रुन्तपः, अरिन्दमः ।

क्विप्—वेदं वेत्ति = वेदवित्, मित्रं द्वेष्टि = मित्र द्विट्, वीरं सूते = वीरसूः, ब्रह्म हतवान् = ब्रह्महा, भ्रूणहा, वृत्रहा, सुष्ठु कृतवान् = सुकृत्, पुण्यकृत्, शास्त्रकृत्, अग्निं चितवान् - अग्निचित्, विशेषेण राजति = विराट्, सम्राट्, प्रविभूः ।

क्विन्—मर्म स्पृशतीति = मर्मस्पृक्, ऋतौ यजति = ऋत्विक् ।

क्वनिप्—पारं दृष्टवान् = पारदृश्वा, मेरुदृश्वा, राजानं योधितवान् = राजयुध्वा, राजकृत्वा ।

शीलधर्मवाचक-प्रत्यय

२६. आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४; तृन् ३।२।१३५—शील, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन, इन तीनों में से किसी एक अर्थ को व्यक्त करने के लिए धातुओं से तृन् (तृ) प्रत्यय होता है। यथा—

कृ + तृन् = कर्तृ—कर्त्ता कटम्—चटाई बनाया करता है या चटाई बनाना जिसका धर्म है।

२७. अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचरइष्णुच् ३।२।१३६—अलंकृ, निराकृ, प्रजन्, उत्पत्, उन्मद्, रुच्, अप्, त्रप्, वृत्, वृध्, सह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चर् धातुओं से शील, धर्म और भली प्रकार सम्पादन, इन तीनों में से किसी भी भाव को व्यक्त करने के लिए इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय होता है। यथा—

अलं करणं शीलमस्य = अलंकरिष्णुः—अलंकृत करनेवाला, निराकरिष्णुः—अपमान करनेवाला, प्रजनिष्णुः—पैदा करनेवाला, उत्पचिष्णुः—पकानेवाला, उत्पतिष्णुः—ऊपर उठानेवाला, उन्मदिष्णुः—उन्मत्त होनेवाला, रोचिष्णुः—अच्छा लगनेवाला, अपत्रपिष्णुः—लज्जा करनेवाला, वर्तिष्णुः—विद्यमान रहनेवाला, वर्धिष्णुः—बढ़नेवाला, सहिष्णुः—सहनशील, चरिष्णुः—भ्रमणशील।

२८. निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूञो वुञ् ३।२।१४६—निन्द, हिंस, क्लिश्, खाद्, विनश्, परिक्षिप्, प्ररिरट्, परिवाद्; व्ये; भाष्; असूय—इन धातुओं से शील; धर्म और भली प्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने के लिए वुञ् (अक्) प्रत्यय होता है। यथा—

निन्दितुं शीलमस्य = निन्दकः, हिंसकः, क्लेशकः, खादकः, विनाशकः, परिक्षेपकः, परिवादकः, असूचकः, भाषकः, असूयकः।

२९. चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच ३।२।१४८—चलना; शब्द करना अर्थवाले अकर्मक धातुओं के अनन्तर शीलाद्यर्थ में युच् (अन्) प्रत्यय होता है तथा क्रोध करना; आभूषित करना अर्थोंवाले धातुओं से भी युच् प्रत्यय होता है। यथा—

चलितुं शीलमस्य सः चलनः (चल्+युच्), शब्दं कर्तुं शीलमस्य सः = शब्दनः; क्रोधनः, रोषणः, मण्डनः, भूषणः।

३० जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३।२।१५५—जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट्, लुण्ट् और वृ धातुओं से शीलाद्यर्थ में षाकन् प्रत्यय होता है। यथा—

जल्पितुं शीलमस्य = जल्पाकः, भिक्षाकः, कुट्टाकः, वराकः।

३१. स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्राश्रद्धाभ्य आलुच् ३।२।१५८—स्पृह्, ग्रह्, पत्, दय् और शी धातुओं के अनन्तर आलुच् प्रत्यय होता है तथा निद्रा, तन्द्रा और श्रद्धा के अनन्तर भी आलुच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

स्पृहयितुं शीलमस्य = स्पृहयालुः, निद्रालुः, गृहालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः शयालुः।

३२. सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८—सन्नन्त—इच्छावाची धातुओं तथा आशंस् और भिक्ष् धातु के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है। यथा—

चिकर्षितुं शीलमस्य = चिकीर्षुः, जिज्ञासुः, जिगमिषुः, पिपासुः, जहासुः, मुमुक्षुः, आशंसितुं शीलमस्य = आशंसुः, भिक्षुः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रु दातुं शीमलस्य = दारुः, धारुः सेद्रुः, शद्रुः, रुद्रुः ।

घुरच् – भङ्क्तुं शीलमस्य = भङ्गुरः, भासुरः, मेदुरः ।

कुरच् वेत्तुं शीलमस्य = विदुरः, भिदुरः, छिदुरः ।

करप् – एतुं शीलमस्य = इत्वरः, नश्वरः, जित्वरः, गत्वरः ।

ऊक – जागरितुं शीलमस्य = जागरूकः, वावदूकः ।

र नमितुं शीलमस्य = नम्रः, कम्प्रः, स्मेरः, हिंस्रः, दीप्रः ।

खलर्थं कृत् प्रत्यय

३३. ईषद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषुखल् ३।३।१२६—कठिन और सरल के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं से खल् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है । उक्त भाव का बोध कराने के लिए सु और ईषत् शब्द सुखार्थं तथा दुर् दुःखार्थं धातु के पूर्व जुड़े रहते हैं । यथा –सुखेन कर्तुं योग्यः सुकरः = सुकृ + खल् (अ) = सुकरः, दुःखेन कर्तुं योग्यः = दुष्कृ + खल् (अ) = दुष्करः ।

३४. आतो युच् ३।३।१५८—आकारान्त धातुओं के अननन्तर खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय होता है, खल् नहीं । यथा—

सुखेन पातुं योग्यः = सुपानः, ईषत्पानः, दुष्पानः ।

उणादि प्रत्यय

उणादि प्रत्यय वे कहलाते हैं, जिनका पहला प्रत्यय उण् है । उणादि प्रत्ययों से ऐसे शब्द निष्पन्न होते हैं, जो अन्य प्रत्ययों से सम्भव नहीं हैं । इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों का अर्थ भी प्रकरणानुसार बदलता रहता है । यथा—

करोतीति कारुः (कृ + उण्) शिल्पी और करने वाला; वातीति वायुः पिबत्यनेनेति पायुः ; जयति रोगान् इति जायुः—औषधम्, स्वदते रोचते इति स्वादुः, साध्नोति परकार्यमिति साधुः ।

परुषम् (पृ + उषच्), नह् + उषच् = नहुषः, कल् + उषच् = कलुषम्; तण्ड + उलच् = तण्डुलः, तन् + कयन् = तनयः, तन् + तुन् = तन्तुः, तम् + कालन् = तमालः ; पत् + आलञ् = पातालः, चण्ड् + आलञ् = चाण्डालः, शम् + ख = शङ्खः ; कण् + ठ = कण्ठः, शम् + ढ = शण्ढः, कम् + अठ = कमठः, रम् + अठ = रामठं-हिङ्गुः; रम् + ड = रण्डा, गम् + गन् = गङ्गा, खन् + ड = खण्डः, मन् + ड = मण्डः, अद् + गन् = अद्गः, भृञ् + गन् = भृङ्गा, शृ + गन् = शृङ्गम्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अव् + मन् = ओम् , ग्रस् + मन् = ग्रामः , षि + मन् = सिमः , पा + थक् = पीथः, तृ + थक् = तीर्थः , तु + थक् = तुत्थः , वच् + थक् = उक्थम् , रिच् + थक् = रिक्थम् , सिच् + थक् = सिक्थम् , स्तु + मन् = स्तोमः , षु + मन् = सोमः, हु + मन् = होमः , घृ + मन् = धर्मः , क्षि + मन् = क्षेमः , क्षु + मन् = क्षौमम् , भा + मन् = भामः , या + मन् = यामः , वा + मन् = वामः , पद् + मन् = पद्मम् , यक्ष् + मन् = यक्ष्मः , नी + मन् = नेमः , अशू × क्वन् = अश्व , प्रुष् + क्वन् = प्रुष्वः , लट् + क्वन् = लट्वा, खट् + क्वन् = खट्वा, पंश् + कु – पांशु , पिशित् + अण् – पिशाचः भा + नु – भानुः , शु + कक् – शुकः ; सू = नु – सूनुः, शंक् + उ – शंकु , पा + प – पापम् , पा + त्रम – पात्रम् , नी + रक् = नीरम् , इष् + तक्न् = इष्टका ।

उपयोगी मूल ग्रन्थभाग

लकारार्थ प्रक्रिया

१. अभिज्ञावचनेलृट् ३।२।११२ स्मृतिबोधक पद उपपद रहने पर भूत–अनद्यतन अर्थ में धातु से 'लृट्' लकार होता है। यथा—स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः इस प्रयोग में स्मरसि उपपद पूर्वक 'वस्' धातु से अनद्यतन अर्थ में लङ् लकार प्राप्त हुआ, उसे बाध कर "अभिज्ञावचने लृट्" इस सूत्र से लृट् लकार किया, उसके स्थान पर उत्तम पुरुष बहुवचन में 'मस्' प्रत्यय "स्यतासि लृलुटोः" सूत्र से 'स्य' प्रत्यय किया और "सः स्यार्द्धधातुके" सूत्र से सकार के स्थान पर तकार "अतो दीर्घोयञि" सूत्र से दीर्घ किया, सकार के स्थान पर रुत्व और विसर्ग करने पर "वत्स्यामः" प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'बुध्यसे–चेतयसे' इत्यादि प्रयोग भी सिद्ध होते हैं।

२. न यदि ३।२।११३—स्मृतिबोधक पद के उपपद रहने पर भी अनद्यतन अर्थ में 'यत्' के योग में 'लृट्' लकार नहीं होता। यथा—अभिजानासि कृष्ण ! यद्वने अभुञ्ज्महि' प्रयोग में 'यत्' का योग रहने से 'लृट्' लकार का प्रयोग नहीं हुआ।

३. लट् स्मे ३।२।११८—'स्म' के योग में धातु से परोक्ष अर्थ में 'लिट्' का अपवाद कर 'लट्' लकार होता है। यथा 'यजतिस्म युधिष्ठिरः'—प्रयोग में 'स्म' भूतकाल द्योतक है। अतः 'यज्' धातु से लिट् लकार प्राप्त हुआ, इसको बाधकर "लट्स्मे" सूत्रसे 'स्म' योग होने से 'लट्' लकार, तिप् प्रत्यय, शप् और अन्य कार्य करने पर 'यजतिस्म' प्रयोग सिद्ध हुआ।

४. वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा ३।३।१३१—वर्तमान काल में जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे वर्तमान के समीप भूत और वर्तमान के समीपवर्ती भविष्यत् काल में भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्प से होते हैं। यथा—कदाऽगतोसि? इस प्रश्न के उत्तर में 'अयमागच्छामि अयमागमं वा' प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ 'गम्' धातु से भूत अर्थ में 'लुङ्' लकार प्राप्त है। इसको बाधकर "वर्त्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा" सूत्र से भूत अर्थ में वर्तमान 'लट्' लकार हुआ। अतएव 'गम्' के स्थान पर 'गच्छ' और उत्तम पुरुष के एकवचन में 'मिप्' प्रत्यय करने पर 'आगच्छामि' यह प्रयोग सिद्ध हुआ। वर्तमान के अभाव में 'लुङ्' लकार होने से 'आगमं' रूप बना है। 'आगच्छामि' का अर्थ है—आगतवानस्मि। इसी प्रकार 'कदा गमिष्यसि'? इस प्रश्न के होने पर एष गच्छामि उत्तर हुआ। यहाँ 'गम्' धातु से भविष्यत् अर्थ में 'लृट्' लकार प्राप्त था, इसको बाधकर "वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा" सूत्र से 'लट्' लकार 'मिप्' प्रत्यय शप् "इषुगमियमांछः" इस सूत्र से छत्व, तुक् का आगम, श्चुत्व और "अतोदीर्घो यञि" सूत्र से दीर्घ करने पर 'गच्छामि' प्रयोग सिद्ध हुआ।

५. हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३।३।१५६—हेतुहेतुमद्भाव—कार्यकारणभाव गम्यमान हो तो भविष्यत्काल में विकल्प से लिङ् लकार होता है। यथा—कृष्णं नमेत् चेत्सुखं यायात्। 'कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति'। उक्त प्रयोग में हेतुहेतुमद्भाव होने से 'लिङ्' लकार हुआ है और विकल्पाभाव पक्ष में 'लृट्' लकार का व्यवहार किया गया है।

६ विधिनिमन्त्रणेति लिङ्—विधि और निमन्त्रण अर्थ में 'लिङ्' लकार का प्रयोग होता है। यथा—यजेत, इह भुञ्जीत।

७ आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा—आमन्त्रण का अर्थ इच्छानुसार कार्य कराना है। यथा—इहासीत मत्पुत्रोत्सवे भवान् आगच्छतु, आगच्छेद्वा।

८ अधीष्टः—सत्कारपूर्वक कार्य कराना है। यथा—पुत्रमध्यापयेद्भवान्।

९ सम्प्रश्नः—सम्प्रधारण अर्थ में 'लिङ्' लकार होता है। यथा—किं भोवेदमधीयीयत उत तर्कम्?

१० प्रार्थनम्—याच्ञा अर्थ में 'लिङ्' लकार होता है। यथा—भो भोजनं लभेय।

कृत्यप्रकरण

१ धातोः ३।१।९१—यह अधिकार सूत्र है; तृतीय अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वक्ष्यमाण तव्यादि प्रत्यय धातु से होते हैं। धातु से होनेवाले प्रत्यय कृत् कहलाते हैं।

२. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४—इस धात्वधिकार में असरूप जो अपवाद प्रत्यय हैं, वे स्त्र्यधिकारोक्त प्रत्ययों को छोड़ विकल्प से उत्सर्ग के बाधक होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. कृत्याः ३।१।९५ – "ण्वुल्तृचौ" सूत्र से पूर्व उक्त प्रत्यय कृत्संज्ञक होते हैं।

४. कर्तरि कृत् ३।४।६७—कृत्प्रत्यय कर्त्ता में ही होते हैं।

५. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०—कृत्य प्रत्यय, क्त प्रत्यय और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं।

६. तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६—भाव और कर्म में 'तव्यत्', 'तव्य' और 'अनीयर्' प्रत्यय धातु से होते हैं। यथा—एधितव्यम् में 'एध्' धातु से "कर्तरि कृत्" सूत्र से कर्त्ता में प्रत्यय प्राप्त था, पर इसे बाध कर "तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः" इस सूत्र से भाव में अनुवृत्ति लेकर "तव्यत्तव्यानीयरः" सूत्र से तव्य प्रत्यय किया "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इडागम किया तब "एधितव्य" इस स्थिति में "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा 'सु' प्रत्यय "भावे औत्सर्गिकं क्लीबत्वम्" सूत्र से नपुंसकलिङ्ग और 'सु' के स्थान पर 'अम्' अकार का पूर्वरूप करने पर 'एधितव्यम्" सिद्ध हुआ। इसी प्रकार चेतव्यम्, चयनीयम् और एधनीयम् की सिद्धि होती है।

७. केलिमर उपसंख्यानम् — भाव-कर्म में धातु से 'केलिमर' प्रत्यय होता है। यथा—पचेलिमा–इत्यत्र 'पच्' धातु से "तयोरेवकृत्यक्तखलर्थाः" इससे 'कर्म' की अनुवृत्ति लेकर 'केलिमर उपसंख्यानम्" वार्तिक से केलिमर प्रत्यय किया, अनुबन्ध का लोप, तब पच् + एलिम यहाँ कृदन्त होने से "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा की और विभक्ति कार्य करने पर पचेलिमा माषाः प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'भिद्' + केलिमर = भिद् + एलिम विभक्ति कार्य करने पर 'भिदेलिमाः सरलाः' रूप बना है।

८. कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३ —कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल प्रकार से होते हैं। बहुल का अर्थ निम्न प्रकार है: —

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

कहीं अप्राप्त में भी प्राप्त हो जाना; कहीं प्राप्त में भी अप्राप्त होना; कहीं विकल्प से प्राप्त होना और कहीं इन तीनों से भी भिन्न अर्थात् विकल्प में भी नित्य ही प्राप्त हो जाना। इस प्रकार बहुल विधान चार प्रकार का होता है।

यथा—स्नानीयम् चूर्णम्। स्नाति अनेनेति स्नानीयम् चूर्णम्। 'स्ना' धातु से 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से बहुल की अनुवृत्ति लेकर "तव्यत्तव्यानीयरः" सूत्र से करण अर्थ में अनीयर् प्रत्यय किया, अनुबन्ध का लोप और विभक्ति कार्य करने पर 'स्नानीयम्' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'दीयते ऽस्मा इति दानीयो विप्रः' प्रयोग भी सम्प्रदान अर्थ में अनीयर प्रत्यय करने पर बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९. अचोयत् ३।१।९७–अजन्त धातु से 'यत्' प्रत्यय होता है। यथा – चेयम्। 'चेतुं योग्य चेयम्' इस विग्रह में 'चि' धातु से "अचोयत्" सूत्र से 'यत्' प्रत्यय किया; "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक होने से गुण किया। कृदन्त होने से प्रातिपदिक सँज्ञा 'सु' प्रत्यय. 'सु' को अम् और अकार का पूर्वरूप होने से 'चेयम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

देयम्–'दातुं योग्यं देयम्' इस विग्रह में 'दा' धातु से "अचोयत्" से यत्प्रत्यय "ईद्यति" सूत्र से धातु के आकार को ईकार, गुण और कृदन्त होने से प्रातिपदिक, विभक्ति कार्य, अतः 'देयम्' यह प्रयोग सिद्ध हुआ।

ग्लेयम्—'ग्लै' धातु से "अचोयत्" से यत्प्रत्यय "आदेच उपदेशेऽशिति" इस सूत्र से 'ग्लै' के ऐकार को आकारादेश किया। पश्चात् "ईद्यति" से आकार के स्थान पर ईत्व; आर्धधातुक होने से गुण. प्रातिपदिक, विभक्ति कार्य करने पर 'ग्लेयम्' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार गेयम्, पेयम्, जेयम्. वध्यम घात्यम् आदि प्रयोग भी बनते हैं।

१० ईद्यति ६।४।३५—'आत्' को 'ईत्' होता है. यत् के परे। यथा – 'देयम्' और 'ग्लेयम्' में आकार को ईकार किया गया है। साधनिका पूर्व में लिखी जा चुकी है।

११ पोरदुपधात ३।१।९८—आकार उपधावाले पवर्गान्त धातुओं से 'यत्' प्रत्यय होता है। यथा—शप्यम् शप्तुं योग्यं इस विग्रह में 'शप्' धातु से "पोरदुपधात्" सूत्र से यत्प्रत्यय किया। "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपादिक संज्ञा की, "स्वौजस्" इत्यादि सूत्र से 'सु' प्रत्यय नपुंसक लिंग होने से 'सु' के स्थान में 'अम्" तथा अकार का पूर्वरूप कर देने पर 'शप्यम्' यह रूप सिद्ध हुआ। लभ्यम्—'लभ्' धातु से "पोरदुपधात्" सूत्र से यत् प्रत्यय और विभक्ति कार्य करने पर उक्त रूप बना है।

१२ एतिस्तुशास्वृदृ जुषः क्यप् ३।१।१०९–इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् इन छः धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है।

१३ ह्रस्वस्य पितिकृतितुक् ६।१।७१–पित् और कृत् प्रत्यय के परे ह्रस्व को तुक होता है। यथा–इत्यः 'इण्' धातु से "एतिस्तुशास्वृदृ जुषः क्यप्" सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय किया, अनुबन्ध का लोप और "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" नियम से तुगागम होने पर तथा विभक्ति कार्य करने पर "इत्यः" रूप बना। इसी प्रकार 'ष्टुञ्' धातु से "धात्वादेः षः सः" सूत्र से षकार का सत्व किया तो ष्टु–'स्तु' रूप हुआ। स्तु + क्यप्, अनुबन्ध-लोप स्तु + य, तुक् का आगम स्तु + त् + य–विभक्ति कार्य करने पर "स्तुत्यः" रूप बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४ शास् इदङ्हलोः ६।४।३४—अङ् और हलादि कित्-ङित् के परे 'शास्' धातु की उपधा को इत्व होता है। यथा—शासितुं योग्यः—शिष्यः इस विग्रह में शास् धातु से "एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्" सूत्र से कर्मणि 'क्यप्' किया, शासइदङ्हलोः" से उपधा को इत्व किया। पश्चात् "शासिवसिघसीनां च" सूत्र से सकार को षत्व किया. प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'शिष्यः' यह रूप बना।

वरितुं योग्य :—वृत्य इस विग्रह में 'वृञ्' धातु से 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय किया। क् और प् का अनुबन्ध किया, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' सूत्र से तुक् का आगम और उक् का अनुबन्ध किया, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'वृत्यः' यह रूप सिद्ध हुआ।

आदर्तुं योग्यः —आदृत्यः विग्रह में आङ्पूर्वक 'दृ' धातु से "एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' सूत्र से क्यप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' नियम से तुक् का आगम और उक् का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'आदृत्यः' रूप सिद्ध हुआ।

'जुष्' धातु से एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् सूत्र से क्यप् प्रत्यय किया, अनुबन्ध लोप, क्त्वाद् गुणाभाव, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य करने पर "जुष्यः" यह रूप बना।

१५ मृजेर्विभाषा ६।१।११३—'मृज्' धातु से विकल्प से 'क्यप्' प्रत्यय होता है। यथा—

मृज्यः—मार्जितुं योग्यः—इस विग्रह में मृज् धातु से मृजेर्विभाषा, सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय, क्त्वाद् गुणाभाव और विभक्ति कार्य करने पर "मृज्यः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

१६ ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४—ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है। यथा—कार्यम्—कर्तुं योग्यं कार्यम्—इस विग्रह में कृञ् धातु में "ऋहलोर्ण्यत्" सूत्र से ण्यत् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, कृ + य इस स्थिति में "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से 'ण्यत्' के यकार की आर्धधातुक संज्ञा को "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण प्राप्त हुआ, इस गुण को बाध कर" अचोञ्णिति' सूत्र से वृद्धि और "उरण्-रपरः" सूत्र से रपरत्व, कृदन्तत्व होने से प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'कार्यम्' यह रूप बना।

हर्तुं योग्यं हार्य्यम्—इस विग्रह में 'हृञ्' धातु से "ऋहलोर्ण्यत्" सूत्र से ण्यत् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप करने पर 'हृ + य' इस स्थिति में "अचोञ्णिति" सूत्र से वृद्धि और 'उरण्रपरः' सूत्र से रपरत्व करने पर 'हार्य' इस स्थिति में "अचो रहाभ्यां द्वे"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्र से यकार को द्वित्व किया। प्रातिपादिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'हार्य्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

घर्त्तुं योग्यं घार्यम्—विग्रह में 'घृञ्' धातु से अनुबन्ध लोप करने पर 'घृ' इत्यत्र "ऋहलोर्ण्यत्" सूत्र से ण्यत् प्रत्यय किया, ण्—त् का अनुबन्ध किया "अचो-ञ्णिति" सूत्र से वृद्धि, "उरण्रपरः" सूत्र से रपरत्व, द्वित्व और विभक्ति कार्य करने पर 'घार्य्यम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

१७. चजोः कुघिण्ण्यतो ७।३।५२—घित् और ण्यत् प्रत्यय के परे चकार-जकार को कुत्व होता है।

१८. मृजेर्वृद्धि ७।२।११४—सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे 'मृज्' धातु के इक् की वृद्धि होती है। यथा—'मृज्' धातु से 'मृजेर्विभाषा' सूत्र से क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है, अतः विकल्पाभाव पक्ष में 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय किया—मृज् + य (अनुबन्ध का लोप होने से) इस स्थिति में 'आर्धधातुकं शेषः' इस सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा की 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण प्राप्त हुआ इसे बाधकर 'मृजेर्वृद्धिः' सूत्र से 'मृज्' धातु की उपधा के रकार को वृद्धि की, पश्चात् "उरण् रपरः" सूत्र से रपरत्व किया तो 'मार्ज् + य' इस स्थिति में "चजोः कुघिण्ण्यतोः" सूत्र से जकार के स्थान पर कुत्व, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने से "मार्ग्यः" यह रूप निष्पन्न हुआ।

१९. भोज्यंभक्ष्ये ७।३।६९—भक्ष्य अर्थ में 'भोज्य' का निपातन होता है। यथा—'भुज्' धातु से "ऋहलोर्ण्यत्" सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय किया, ण—त का लोप किया तो 'भुज् + य' इस स्थिति में आर्धधातुक होने से "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से उपधा को गुण किया तो 'भोज् + य' इस स्थिति में "चजोः कु घिण्ण्यतोः" से कुत्व किया और विभक्ति कार्य करने पर 'भोग्यम्' रूप बना। निपातन से 'भोज्यम्' सिद्ध होता है।

पूर्वकृदन्त प्रकरणम्

१. ण्वुलतृचौ ३।१।१३३—कर्त्ता में धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं।

२. युवोरनाकौ ७।१।१—अनुनासिक 'यु' और 'वु' को क्रमशः 'अन' और 'अक' आदेश होते हैं। यथा—करोतीति कारकः—इस विग्रह में 'कृञ्' धातु से अनु-बन्ध का लोप कर 'कृ' से "कर्तरि कृत्" सूत्र से कर्त्रर्थ में "ण्वुलतृचौ" सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय किया "चुटू" सूत्र से णकार की इत्संज्ञा की "हलन्त्यम्" सूत्र से इत्संज्ञक ण्—ल का "तस्यलोपः" इस सूत्र से ण—ल का लोप किया तो 'कृ + वु' इत्यत्र "युवोरनाकौ"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्र से 'वु' के स्थान पर अकादेश किया; "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातु संज्ञा की "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण प्राप्त था, इसे बाध कर "अचोञ्णिति" सूत्र से वृद्धि की और "उरण्रपरः" से रपरत्व किया तो 'कार+अक' इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा विभक्ति कार्य और संयोग करने पर "कारकः" यह रूप निष्पन्न हुआ।

कर्त्ता—करोतीति विग्रह में 'कृ' धातु से "ण्वुल्तृचौ" सूत्र से तृच् प्रत्यय किया तो 'कृ+तृच्' इत्यत्र 'च्' का अनुबंध, आर्धधातुक होने से "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण "उरण्रपरः" से रपरत्व करने पर 'कर्तृ' इस स्थिति में 'सु' प्रत्यय और विभक्ति कार्य करने पर 'कर्त्ता' रूप निष्पन्न हुआ।

३. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४—नन्दि, ग्रहि और पच् धातुओं से क्रमशः 'ल्यु', 'णिनि' और 'अच्' प्रत्यय होते हैं। अर्थात् नन्द्यादि से ल्यु, ग्रह्यादि से 'णिनि' और पचादि से 'अच्' प्रत्यय होता है। यथा—

नन्दयतीति नन्दनः—इस विग्रह में टुनदि—नन्द् धातु से "कर्तरि कृत्" सूत्र से कर्त्रर्थ में "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" सूत्र से 'ल्यु' प्रत्यय किया और ल का अनुबन्ध करने पर 'नन्द्+यु' इस स्थिति में 'युवोरनाकौ" सूत्र से 'यु' के स्थान पर अनादेश करने से 'नन्द्+अन' इत्यत्र विभक्ति कार्य और संयोग करने पर "नन्दनः" यह रूप सिद्ध हुआ।

जनमर्दयतीति जनार्दनः—इस विग्रह में जन उपपद पूर्वक 'अर्द' धातु से 'कर्त्रर्थ' में "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" सूत्र से ल्यु, इत्यत्र "युवोरनाकौ" से 'यु' के स्थान पर अनादेश, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर "जनार्दनः यह रूप निष्पन्न हुआ।

लुनातीति लवणः—प्रत्यय 'लूञ्' धातु से अनुबन्ध का लोप कर लू से "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" सूत्र से 'ल्यु' प्रत्यय, लकार का लोप 'लू+यु' इस स्थिति में "युवोरनाकौ" सूत्र से 'यु' के स्थान पर अनादेश, आर्धधातुकत्वात् गुण, अवादेश और विभक्ति कार्य करने पर लवणः" यह रूप निष्पन्न हुआ।

ग्राही—ग्रह्+णिनि—णकार की इत्संज्ञा और लोप करने पर ग्रह्+इन् इत्यत्र "अत उपधायाः" सूत्र से उपधा को वृद्धि करने पर 'ग्राहिन्' इत्यत्र विभक्ति कार्य करने से "ग्राही" यह रूप निष्पन्न हुआ।

स्थायी—तिष्ठतीति स्थायी–'ष्ठा' धातु से नन्दिग्राहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" सूत्र से णिनि प्रत्यय, णकार और इकार का अनुबन्ध करने पर 'ष्ठा+इन्'प्रत्यय 'धात्वादेः षः सः" सूत्र से षकार को सत्व करने से ष्टुत्व की निवृत्ति होने से 'स्था+इन्' इस स्थिति में "आतो युक् चिण्कृतोः" सूत्र से युगागम और अनुबन्ध का लोप करने पर 'स्था+ +य्+इन्' इस अवस्था में प्रातिपदिकसंज्ञा और 'सु' प्रत्यय "हल्ङ्याब्भ्यो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्" इससे 'सु' का लोप; "सौच" सूत्र से इन्नन्त की उपधा को दीर्घ किया। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इस सूत्र से नकार का लोप करने से "स्थायी" यह रूप सिद्ध हुआ।

मन्त्री—मंत्रि+णिनि इदित्वात् नुमागम, विभक्ति कार्य और संयोग करने पर मन्त्री रूप निष्पन्न हुआ।

४ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३।१।१३५—इगुपधधातु तथा ज्ञा, प्री और कृ धातुओं से 'क' प्रत्यय होता है। यथा—

बोधतीति बुधः—इस विग्रह में 'बुध' धातु से "कर्त्तरिकृत्" सूत्र से कर्त्रर्थ में" इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" सूत्र से 'क' प्रत्यय "लशक्वतद्धिते" सूत्र से ककार की इत्संज्ञा "तस्य लोपः" से इत्संज्ञ का लोप "आर्धधातुकं शेषः" इससे आर्धधातुकत्व में "पुगन्तलघूपधस्यच" सूत्र से गुण प्राप्त होने पर "क्ङिति च" से निषेध कर संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'बुध' रूप सिद्ध हुआ।

कृशः—कृश्+क=कृश्+अ, विभक्ति कार्य करने पर 'कृशः' रूप सिद्ध हुआ।

जानातीति—ज्ञः='ज्ञा' धातु से "इगुपधाज्ञाप्रीकिरः कः" सूत्र से क प्रत्यय, ककार का लोप—'ज्ञा+अ, इत्यत्र "आतो लोप इटिच" सूत्र से आकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'ज्ञः' यह रूप सिद्ध हुआ। प्रीणातीति प्रियः इत्यत्र 'प्री' धातु से "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" सूत्र से क प्रत्यय, ककार का अनुबन्ध करने पर 'प्री+अ' इत्यत्र "अचि श्नुधा तुभ्रु वाम्" सूत्र से इयङ् आदेश, अङ का लोप "प्र+इय+अ" इस अवस्था में संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'प्रियः' यह रूप निष्पन्न हुआ। "किरतीति किरः" इत्यत्र 'कृ' धातु से "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इस सूत्र से 'क' प्रत्यय किया, क का लोप, कित्वाद्गुणाभाव "ॠतइद्धातोः" इससे इत्व "उरणरपरः" सूत्र से रपरत्व,' संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'किरः' यह प्रयोग सिद्ध हुआ।

५ आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६—उपसर्ग उपपदक आदन्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है यथा—

प्रकर्षेण जानतीति प्रज्ञः—इस विग्रह में प्र उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' धातु से "आतश्चपोसर्गे" इस सूत्र से क प्रत्यय, ककार का लोप होने पर 'प्र+ज्ञा+अ' इस स्थिति में, आर्धधातुक होने से "अतो लोप इटिच" सूत्र से आकार का लोप होने पर "प्र+ज्ञ+अ' इस अवस्था में संयोग और विभक्ति कार्य करने से 'प्रज्ञः' यह रूप निष्पन्न हुआ।

सुष्ठु ग्लायतीति—सुग्लः—इस विग्रह में सु पूर्वक 'ग्लै' धातु से "आतश्चोपसर्गे" सूत्र से क प्रत्यय, ककार का लोप "आदेच उपदेशे ऽशिति" सूत्र से एकार के स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर आत्व किया तो 'सु + ग्ला + अ' यह स्थिति निष्पन्न हुई। "आतो लोप इटि च" सूत्र से अकार का लोप और विभक्ति कार्य करने पर "सुग्लः" यह रूप निष्पन्न हुआ (जल्दीघबड़ाने वाला)।

६ गेहे कः ३।१।१४४—गेह कर्त्ता रहने पर 'धातु से 'अण्' प्रत्यय होता है। यथा—

गृह्णाति धान्यादिकम्—इति गृहम् इस विग्रह में—'ग्रह्' धातु से "गेहे कः" सूत्र से 'क' प्रत्यय किया; ककार का लोप करने पर 'ग्रह् + अ' यह अवस्था हुई। "ग्रहिज्यावयि" इत्यादि सूत्र से सम्प्रसारण "सम्प्रसारणञ्च" से पूर्वरूप "पुगन्तलघूपधस्यच" से गुण प्राप्त हुआ, पर "क्ङितिच" सूत्र से गुण का निषेध-संयोग और विभक्ति कार्य करने पर "गेहम्" रूप निष्पन्न हुआ।

७ कर्मण्यण् ३।२।१—कर्म उपपद रहने पर धातु से 'अण्' प्रत्यय होता है। यथा—'कुम्भं करोतीति कुम्भकारः' विग्रह में "तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्" से कुम्भ पद की उपपद संज्ञा करने पर 'कुम्भ + कृ' इत्यत्र "कर्मण्यण् सूत्र से अण् प्रत्यय "अचोञ्णिति सूत्र से वृद्धि "उरण रपरः से रपरत्व "कर्तृ कर्मणोः कृति से कर्मणि षष्ठी में "गातिकारकोपपदानाम्" इत्यादि परिभाषा से सुबुत्पत्ति के पूर्व कुम्भ + अस् + कार इस अवस्था में "उपपदमतिङ्' समास और सुप का लोप एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय सकार का सत्व और विसर्ग करने पर "कुम्भकारः यह रूप सिद्ध हुआ।

८ आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३—कर्म उपपद रहने पर अनुपसर्गक आदन्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है। यथा—

गां ददातीति गोदः—इस विग्रह में गो कर्मणि उपपद पूर्वक 'दा' धातु से "कर्मण्यण्" सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त था। इसको बाध कर "आतोऽनुपसर्गे कः" सूत्र से 'क' प्रत्यय किया 'क' का लोप करने पर 'गो + दा + अ' यह अवस्था हुई। अनन्तर "आतो लोप इटि च" इस सूत्र से आकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'गोदः' यह रूप बना।

धनं ददातीति धनदः—धन + दा + क (अ) = धन + दा + अ (आकार का लोप करने पर) धन + द + अ = धनद + सु (विभक्ति कार्य) = धनदः।

कम्बलं ददातीति कम्बलदः—कम्बल दा + क (अ) = कम्बल + दा + अ (आकार का लोप) = कम्बल + द + अ = सु (विभक्ति कार्य) = कम्बलदः।

उक्त सूत्र में अनुपसर्ग कहा गया है, रतः "गोसन्दायः" में अनुपसर्गत्वात् क प्रत्यय नहीं हुआ; किन्तु "कर्मण्यण्" सूत्र से 'अण्' प्रत्यय णकार का लोप "आतो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक् चिणक्कृतो:" सूत्र से युगागम, उपपदसमास, अनन्तर समुदाय से 'सु' विभक्ति और सकार को विसर्ग करने पर 'गोसन्दाय:' रूप सिद्ध हुआ (गो देनेवाला) ।

९. मूलविभुजादिभ्य: क: —मूलविभुजादि से 'क' प्रत्यय होता है । यथा— मूलानि विभुजति = मूलविभुजो रथ:–मूल + वि + भुज ("मूलविभुजादिभ्य: क: नियम से 'क' प्रत्यय किया, ककार का लोप) मूल + वि + भुज् + अ + सु (विभक्ति कार्य करने से)–मूलविभुजो रथ: (जड़ को उखाड़नेवाला रथ) ।

यह आकृति गण है, अत: 'महीध्र:', 'कुध्र:' आदि रूप भी बनते हैं ।

मही + धृ + अ ('क' प्रत्यय)–"इको यणचि" से यण् अर्थात् ऋ के स्थान पर 'र' किया और विभक्ति कार्य करने पर 'महीध्र:' यह रूप बना (पर्वत) ।

कु + ध्र + अ (यण्, विभक्ति कार्य) = कुध्र: (पर्वत) ।

१०. चरेष्ट: ३।२।१६—अधिकरण उपपदक 'चर' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है । यथा—

कुरुषु चरतीति = कुरुचर:—इत्यत्र कुरु + 'च ' धातु से "चरेष्ट:" सूत्र से 'ट' प्रत्यय किया; "चुटू" सूत्र से टकार का लोप करने पर कुरु + चर् + अ (ट)—उपपद समास से समुदाय से 'सु' प्रत्यय, रुत्व और विसर्ग करने पर "कुरुचर:" यह रूप सिद्ध हुआ ।

११. भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७—भिक्षा, सेना और आदाय कर्मोपपदक 'चर्' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है । यथा—

भिक्षां चरतीति = भिक्षाचर: इत्यत्र भिक्षा + चर धातु से "भिक्षासेनादायेषुच" सूत्र से 'ट' प्रत्यय "चुटू" सूत्र से टकार का लोप करने पर भिक्षा + चर् + अ (ट) उपपद समास में समुदाय से 'सु' विभक्ति, सत्व और विसर्ग करने पर "भिक्षाचर:" यह रूप बना ।

सेनां चरतीति = सेनाचर: (सेनां प्रापयति)—सेना + चर् + ट (अ) सेना + चर् + अ + सु = सेनाचर: ।

आदाय—लब्धं द्रव्यं गृहीत्वा चरतीति = आदायचर:—आदाय + चर् + ट (अ) = आदाय + चर् + अ + सु = (विभक्ति प्रत्यय) = आदायचर: ।

१२. कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०—हेत्वादि अर्थ गम्यमान होने पर कर्मोपपदक 'कृ' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ।

१३. अत: कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६—समास में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अत्' से पर अनव्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में सत्व होता है; कृ, कमि, कंसादि उत्तरपद के परे। यथा—

'यशः करोतीति' विग्रह में यशस् उपपदपूर्वक कृ धातु से "कृञोहेतुताच्छील्यानुलोम्येषु" सूत्र से 'ट' प्रत्यय किया, टकार का लोप और "उरण् रपरः" सूत्र से रपर किया तो यशस् + कर + अ यह स्थिति हुई। "कर्तृकर्मणोः कृति" सूत्र से कर्मणि षष्ठी में "गतिकारके" ति सुबुत्पत्ति के पूर्व यशस्+अस+कर अ इस स्थिति में उपपदमतिङ्' समास विभक्ति का लोप सकार को सत्व और विसर्ग करने पर "यशः+कर इत्यत्र "अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य" सूत्र से विसर्ग का सत्व, स्त्रीत्व विवक्षा होने से ङीप् "यस्येति च" सूत्र से 'अ' लोप ङ्यन्तत्व होने से सु का लोप होने से "यशस्करी विद्या" रूप सिद्ध हुआ।

श्राद्धं करोतीति = श्राद्धकरः विग्रह में श्राद्ध + कृ + ट (अ), आर्धधातुकत्वात् गुण रपरत्व, उपपद समास, विभक्ति लोप, समुदाय से 'सु' प्रत्यय, सत्व और विसर्ग करने पर श्राद्धकरः रूप बना है।

वचनं करोतीति = वचनकरः—वचन + कृ + ट (अ), आर्धधातुकत्वात् गुण, रपरत्व, उपपद समास, विभक्ति लोप, समुदाय से सु प्रत्यय, सत्व, विसर्ग।

१४. एजेः खश् ३।२।२८—कर्मोपपदक ण्यन्त 'एज्' धातु से 'खश्' प्रत्यय होता है।

१५. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७—अव्यय को छोड़कर खिदन्त के परे अरुष्, द्विषत् और अजन्त को मुगागम होता है। यथा—

'जनमेजतीति' विग्रह में 'जन' कर्मणि उपपद एजि ण्यन्त धातु से "एजेः खश्" सूत्र से 'खश्' प्रत्यय किया और ख् तथा श् का लोप किया तो "जन + एजि + अ" इस स्थिति में "तिङ् शित्सार्वधातुकम्" सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा "कर्त्तरि शप्" से शप् प्रत्यय, शप् का सर्वोपहारी लोप, गुण, अयादेश, उपपद समास, विभक्ति का लोप करने पर 'जन + एजय" इत्यत्र "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" सूत्र से मुमागम करने और विभक्ति कार्य करने पर "जनमेजयः" यह रूप सिद्ध हुआ।

१६. प्रियवशेवदः खच् ३।२।३८—प्रिय और वश कर्मोपपद पूर्वक 'वद्' धातु से 'खच्' प्रत्यय होता है। यथा—

प्रियं वदतीति = प्रियंवदः—इस विग्रह में प्रिय उपपदपूर्वक 'वद्' धातु से "प्रियवशे वदः खच्" सूत्र से 'खच्' प्रत्यय, ख और च् का लोप, उपपद समास, विभक्ति का लोप "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" सूत्र से मुमागम करने और विभक्ति कार्य करने पर "प्रियंवदः' यह रूप बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशं वदतीति = वशंवदः—वश + वद् + खच् (अ) = वश + वद् + अ = वश + मुम् + वद् + अ (मुमागम) = वशंवदः।

१७. आत्मनं खश्च ३।२।८३—आत्मा के मनन—मान्य अहंभाव अर्थ में खश् प्रत्यय होता है और चकार से 'णिनि' प्रत्यय भी होता है। यथा—

पण्डितमात्मानं मन्यते, इति पण्डितम्मन्यः इत्यत्र पण्डित कर्मणि उपपद पूर्वक मन् धातु से "आत्ममानेखश्च" इस सूत्र से खश् प्रत्यय किया और ख तथा श् का लोप, "तिङ् शित्सार्वधातुकम्" इस सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा "दिवादिभ्यःश्यन्" सूत्र से श्यन् प्रत्यय, शकार-नकार का लोप "अतोगुणे" सूत्र से पररूप करने पर 'पण्डित + मन्य' यह रूप हुआ। "उपपदमतिङ्" उपपद समास "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" पूर्वपद को मुमागम, उम् का लोप, मकार का अनुस्वार और परसवर्ण करने पर 'पण्डितम्मन्य' इस स्थिति में समुदाय से विभक्ति कार्य करने पर "पण्डितम्मन्यः" रूप सिद्ध हुआ।

आत्मानं पण्डितं मन्यते, इति पण्डितमानी – इत्यत्र पण्डित उपपद पूर्वक 'मन्' धातु से "आत्ममाने खश्च" सूत्र से णिनि प्रत्यय, णकार का अनुबन्ध "अत-उपधायाः" से मन के अकार की वृद्धि, उपपद समास, सुप् का लोप, समुदाय से विभक्ति कार्य करने पर 'पण्डितमानी' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कालीमात्मानं मन्यते, इति कालिम्मन्या रूप बनता है।

१८. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५—आकारान्त धातु से भिन्न धातुओं से मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं।

१९. नेड्वशिकृति ७।२।८— वशादि कृत्प्रत्यय को इट् नहीं होता। यथा—सुष्ठु शृणोतीति = सुशर्मा इत्यत्र सुपूर्वक शॄ धातु से "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" इस सूत्र से मनिन् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, गुण, रपरत्व "नेड्वशि कृति" इस सूत्र से इण् का निषेध, कृदन्तत्व होने से 'सु, प्रत्यय, दीर्घ, 'सु' का लोप और नलोप करने पर 'सुशर्मा' यह रूप सिद्ध हुआ।

प्रातर् उपपद पूर्वक 'इण्' धातु से "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय किया, क् और प् की इत्संज्ञा तथा इत्संज्ञक का लोप, इकार की प्राप्ति होने से 'प्रातर × इ + वन्' इस स्थिति में "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" सूत्र से तुगागम, उकार का अनुबन्ध, कित्वादन्त्यावयव, उपपदसमास, सुप् का लोप, "प्रातरित्वन्" इत्यत्र 'सु' प्रत्यय, अत् की उपधा को दीर्घ, सकार और नकार का लोप करने पर "प्रातरित्वा" रूप सिद्ध हुआ।

२०. विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१— विट् और वन् के परे अनुनासिक को आत् प्रत्यय होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजायते, इति विजावा इत्यत्र विपूर्वक 'जन्' धातु से "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" इस सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय,—इप् का लोप, वि + जन् + वन् इत्यत्र "विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्" सूत्र से अनुनासिक अन् के नकार को आत्व, सवर्ण दीर्घ करने पर 'विजावन्' इस अवस्था में 'सु' प्रत्यय "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" सूत्र से दीर्घ, सकार का लोप होने पर 'विजावा' रूप बना।

'ओणृ' धातु से "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय, धातु के ऋकार और 'वनिप्' के इप् का लोप करने पर 'ओण्+वन्' यह स्थिति हुई। "विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्" सूत्र से 'ओण्' के णकार को आत्व होने पर 'ओ+आ+वत् इस स्थिति में "एचोऽयवायावः" सूत्र से अवादेश, संयोग करने पर 'अवावन्' इत्यत्र "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपादिक संज्ञा की, सु प्रत्यय किया. अनुबन्ध का लोप "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" सूत्र से दीर्घ "हल्ङ्याब्भ्यः" सूत्र से सलोप, "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" सूत्र से नकार का लोप 'अवावा' रूप सिद्ध हुआ।

राट्—रुष् धातु से "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" सूत्र से विचि प्रत्यय, इचिका लोप "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा में 'अपृक्त एकाल् प्रत्ययः' सूत्र से व की अपृक्त संज्ञा "वेरपृक्तस्य" सूत्र से वकार का लोप "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुण "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा, सु प्रत्यय, अनुबन्धलोप, "हल्ङ्याब्भ्यः" सूत्र से सकार का लोप "झलां जशोऽन्ते" सूत्र से षकार के स्थान में डकारादेश "वावसाने" सूत्र से टत्व करने पर 'रोट्' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार रिष् धातु से 'रिट्' रूप बनता है। सुपूर्वक गण् धातु से 'विचि' प्रत्यय करने पर 'सुगण्' रूप सिद्ध होता है।

२१. क्विप् च३।२।७६—सामान्यतया सभी धातुओं से 'क्विप्' प्रत्यय होता है। यथा—उखास्रत्।

'उखायाः स्रंसते' इस विग्रह में उखा उपपद पूर्वक स्रंस् धातु से "क्विप् च" सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय किया, क्विप् का सर्वापहारीलोप "अनिदितां हल उपधायाःक्ङिति" सूत्र से न लोप, उपपद समास होने पर "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय "हल्ङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से स लोप, "वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः" सूत्र से स्रस् के सकार को दकार "वावसाने" सूत्र से दकार के स्थान पर तकार आदेश करने पर 'उखास्रत्' रूप निष्पन्न हुआ।

पर्णध्वत् 'पर्णात् ध्वंसते' इस विग्रह में "क्विप् च" सूत्र से क्विप् प्रत्यय और क्विप् का सर्वापहारी लोप "अनिदितां हल उपाधायाःक्ङिति" सूत्र से न लोप उपपद समास होने से प्रातिपादिक संज्ञा, सु प्रत्यय, सकार का लोप "वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्र से सकार के स्थान पर दकार "वावसाने" सूत्र से दकार को तकार करने पर पर्णध्वत् रूप सिद्ध हुआ।

वाहभ्राट् 'वाहात् भ्रश्यते' इस विग्रह में वाह उपपद पूर्वक भ्रंश् धातु से "क्विप् च" सूत्र से क्विप् प्रत्यय किया, क्विप् का सर्वापहारी लोप "अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति" सूत्र से न का लोप "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, अनुवन्ध का लोप "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से सकार का लोप "व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः" सूत्र से शकार को षत्व "झलांजशोऽन्ते" सूत्र से षकार के स्थान पर डत्व और "वावसाने" से टत्व करने पर 'वाहभ्राट्' रूप सिद्ध हुआ।

२२. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८—ताच्छील्य अर्थ में अजात्यर्थक सुवन्त उपपद रहने पर धातु से 'णिनि' प्रत्यय होता है। यथा—उष्णभोजी।

'उष्णं भोक्तुं शीलमस्यास्तीति' इस विग्रह में उष्ण उपपद पूर्वक भुज् धातु से "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय किया, णकार का अनुवन्ध आर्धधातुक संज्ञा करने पर "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुण किया "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा की, सु विभक्ति, उकार का अनुवन्ध, "सर्वनाम स्थाने चासम्बुद्धौ" सूत्र से उपधा को दीर्घ किया "हल्ङ्याब्भ्यः" सूत्र से सकार का लोप "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" सूत्र से नकार का लोप करने पर 'उष्णभोजी' रूप सिद्ध हुआ।

२३. मनः ३।२।८२—सुवंत उपपदक मन् धातु से 'णिनि' प्रत्यय होता है। यथा—दर्शनीयमानी।

'दर्शनीयमात्मानं मन्यते' इस विग्रह में दर्शन कर्मण्युपपद पूर्वक 'मन्' धातु से "मनः" सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय, णकार का अनुबन्ध "अत उपधायाः" सूत्र से उपधा की वृद्धि, उपपद समास सुपलोप, संयोग करने पर 'दर्शनीयमानिन्' इत्यत्र 'सु' प्रत्यय, उकार का लोप, "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ किया "हल्ङ्याब्भ्यः" सूत्र से नकार का लोप, "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" सूत्र से नकार का लोप करने पर 'दर्शनीयमानी' रूप सिद्ध हुआ।

२४. आत्ममाने खश्च ३।२।८३ – सुवन्त उपपदक स्वकर्मक मनन अर्थ में वर्त्तमान 'मन्' धातु से 'खश्' प्रत्यय और चकारात् 'णिनि' प्रत्यय भी होता है। यथा—पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी।

'पंडितमात्मानं मन्यते' इस विग्रह में पण्डित उपपदपूर्वक 'मन्' धातु से "आत्ममाने खश्च" इस सूत्र से खश् प्रत्यय, शित्वात् सार्वधातुक संज्ञा प्राप्त की, इसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाध कर "दिवादिभ्यः श्यन्" सूत्र से 'श्यन्' प्रत्यय किया। कर्मषष्ठी में उपपद समास होने पर "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" सूत्र से मकार का आगम और विभक्ति कार्य करने पर "पण्डितम्मन्य." रूप सिद्ध हुआ। विकल्पाभाव पक्ष में 'णिनि' प्रत्यय होने से 'पंडित-मानी' रूप बना है।

२५. खित्यनव्ययस्य ६।३।६६—खिदन्त उत्तरपद के परे अव्यय से भिन्न पूर्व पद को ह्रस्व होता है। यथा—कालिम्मन्या।

'कालीमात्मानं मन्यते' इस विग्रह में काली उपपदपूर्वक मन् धातु से "आत्म-माने खश्च" सूत्र से खश् प्रत्यय किया, ख् और श् की इत्संज्ञा की "तिङ्शित्सार्वधातु-कम्" खश् के अकार की सार्वधातुक संज्ञा की "दिवादिभ्यः श्यन्" सूत्र से श्यन् प्रत्यय, श और न की इत्संज्ञा करने पर "अतो गुणे" सूत्र से पररूपत्व और 'सु' का लोप करने पर "खित्यनव्ययस्य" सूत्र से पूर्वपद काली को ह्रस्व किया "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" सूत्र से मुम् का आगम, मकार का अनुस्वार और परसवर्ण करने पर 'कालिम्मन्य' इत्यत्र स्त्रीत्व विवक्षा में "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र से, टाप् से अनुबन्ध का लोप "अकः सवर्णे दीर्घः" सूत्र से दीर्घ, सु प्रत्यय करने पर "हल्ङ्याब्भ्यः" सूत्र से सकार का लोप करने पर "कालिम्मन्या" रूप सिद्ध हुआ।

२६. करणे यजः ३।२।८५—करण सुबन्त उपपदक यज् धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय कर्त्ता में होता है। यथा – सोमयाजी।

सोमेन इष्टवानिति विग्रहे सोम उपपद पूर्वक यज् धातु से "करणे यजः" इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय किया, णकार का अनुबन्ध "अत उपधायाः" सूत्र से वृद्धि करने पर 'सोमयाजिन्' इत्यत्र "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा सु विभक्ति "सौ च" सूत्र से नान्त की उपधा को दीर्घ किया "हल्ङ्याब्भ्यः" सूत्र से सकार का लोप "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" सूत्र से नकार का लोप करने पर "सोमयाजी" रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'अग्निष्टोमेन इष्टवानिति 'अग्निष्टोमयाजी' रूप सिद्ध होता है।

२७. दृशे क्वनिप् ३।२।९४—कर्मोपपदक 'दृश्' धातु से भूतकाल में 'क्वनिप्' प्रत्यय होता है। यथा—पारदृश्वा।

पारं दृष्टवान् इस विग्रह में पार उपपद पूर्वक दृश् धातु से "दृशेः क्वनिप्" इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय किया, ककार-पकार-इकार का अनुबन्ध, कित्वाद् गुणाभाव 'दृश्वन्' प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" सूत्र से उपधा को दीर्घ किया; सकार और नकार का लोप करने पर 'पारदृश्वा' रूप सिद्ध हुआ।

२८. राजनि युधिकृञः ३।२।९५ - कर्मसंज्ञक 'राजन्' उपपदक 'युध्' तथा कृञ् धातु से 'क्वनिप्' प्रत्यय होता है। यथा—राजयुध्वा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'राजानं योधितवान् इति राजयुध्वा' इस विग्रह में राज + युध् इत्यत्र 'राजनि-युधिकृञः" इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, कित्वाद्गुणाभाव, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" नकार का लोप, विभक्ति कार्य करने पर 'राजयुध्वा' यह रूप सिद्ध हुआ।

राजानं कृतवान् इति राजकृत्वा - इस विग्रह में राज + कृ इस स्थिति में "राज-नि युधिकृञः" सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय किया, अनुबन्ध का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सु विभक्ति और विभक्ति कार्य करने पर 'राजकृत्वा' रूप सिद्ध हुआ।

२९. सहे च ३।२।९६-–'सह' शब्दोपपदक 'युध्' और 'कृञ्' धातु से 'क्वनिप्' प्रत्यय होता है। यथा—सहयुध्वा, सहकृत्वा।

सह + युध् इस स्थिति में "सहे च" सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, कित्वाद्गुणाभाव, उपपद समास, प्रातिपदिक संज्ञा, समुदाय से 'सु' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इस सूत्र से उपधा को दीर्घ "हलङ्याब्भ्यः" सूत्र से स् लोप "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" सूत्र से न लोप करने पर 'सहयुध्वा' रूप सिद्ध हुआ।

सह कृतवान् – सह + कृ इत्यत्र "सहे च" सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" सूत्र से तुगागम, उक् का लोप "सह + कृत्वन्" इस स्थिति में, प्रातिपदिक संज्ञा, सु विभक्ति, उपधा को दीर्घ, सकार और नकार का लोप करने पर "सहकृत्वा" यह रूप सिद्ध हुआ।

३०. सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७—सप्तम्यन्त उपपदक 'जन्' धातु से 'ड' प्रत्यय होता है।

३१. तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४—तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तर पद परक 'ङि' विभक्ति की बहुलता—विकल्प से अलुक् होता है। यथा—सरसिजम्, सरोजम्' सरसि जातम् सरसिजम् इत्यत्र सप्तम्यन्तर सरसिशब्द उपपदक जन् धातु से" सप्तम्यां जनेर्डः" सूत्र से 'ड' प्रत्यय किया, डकार की इत्संज्ञा और लोप करने पर 'सरसि + जन् + अ' इस स्थिति में डित्व होने से भसंज्ञक टी का लोप करने पर "कृत्तद्धित समा-साश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा "सुपो धातु प्रातिपदिकयोः" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञक सप्तमी "ङि, विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ। "तत्पुरुषेकृति बहुलम्" सूत्र से विभक्ति का अलुक् किया और समुदाय से प्रातिपदिक संज्ञा, सुविभक्ति, सु के स्थान पर 'अम्' अकार का पूर्वरूप करने पर 'सरसिजम्' यह रूप सिद्ध हुआ। सप्तमी विभक्ति 'ङि' का लोप करने पर 'सरोजम् रूप बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२. उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९—उपसर्ग उपपदक 'जन्' धातु से संज्ञा में धातु से 'ड' प्रत्यय होता है। यथा—प्रजा।

प्र + जन् धातु से "उपसर्गे च संज्ञायाम" सूत्र से 'ड' डकार का अनुवन्ध करने पर प्र + जन् + अ' इस स्थिति में डित्व होने से टि संज्ञक 'अन्' का लोप किया तो प्र + ज् + अ इत्यत्र प्रातिपदिक संज्ञा, सूप्रत्यय स्त्रीत्व विवक्षा होने से "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र टाप् प्रत्यय, टकार-पकार का लोप और विभक्ति कार्य करने से 'प्रजा' यह रूप सिद्ध हुआ।

३३ क्त क्तवतू निष्ठा १।१।२६—क्त और क्तवतु की निष्ठा संज्ञा होती है।

३४ निष्ठा ३।२।१०२—भूतार्थवृत्ति धातु से निष्ठा संज्ञक—'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय होते हैं। भाव और कर्म में क्त प्रत्यय और कर्त्तरि में क्तवतु प्रत्यय होता है।

स्ना धातु से "क्त क्तवतू निष्ठा" सूत्र से निष्ठा संज्ञा की, "निष्ठा" इस सूत्र से क्त और क्तवतु दोनों ही प्रत्यय प्राप्त हुए, तब "तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः" इस सूत्र से भाव अर्थ में प्रत्यय विधान हुआ, अतः क्त प्रत्यय किया, तो स्ना + त इत्यत्र प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, नपुंसक लिङ्ग और विभक्ति कार्य करने पर "स्नातं मया" पद सिद्ध हुआ।

स्तुतस्त्वया विष्णुः इत्यत्र 'स्तु' धातु से "तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः" इस सूत्र से कर्मणि "निष्ठा" इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय, कित्वाद्गुणाभाव, प्रातिपदिक संज्ञा, सु-विभक्ति और विभक्ति कार्य करने पर 'स्तुतः' यह रूप सिद्ध हुआ।

'विश्वं कृतवान् विष्णुः' इत्यत्र 'कृ' धातु से "कर्तरि कृत्" सूत्र से कर्त्तरि "निष्ठा" सूत्र से 'क्तवतु' प्रत्यय किया, अनुबन्ध का लोप करने पर "कृ + त + वत् इस स्थिति में "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार को लोप "उगिदचां सर्वनाम स्थाने धातोः" सूत्र से नुम् का आगम, उम् का लोप "अत्वसन्तस्य चाधातोः" सूत्र से उपधा को दीर्घ "हलङ्याब्भ्यः" सूत्र से सकार का लोप "संयोगान्तस्य लोपः" इस सूत्र से तकार का लोप करने पर 'कृतवान्' यह निष्पन्न हुआ।

३५. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२—रेफ-दकार से पर निष्ठा सम्बन्धी तकार को नकार आदेश होता है और निष्ठा से पूर्व जो धातु सम्बन्धी दकार उसको भी नकार आदेश होता है।

'स्तृ' धातु से "तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः" सूत्र से कर्मणि "निष्ठा" सूत्र से क्त प्रत्यय, कलोप, कित्वाद्गुणाभाव "ऋृत इद्धातोः" सूत्र से मकार, इत्व 'उरणरपरः"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्र से रपरत्व 'हलिच" सूत्र से दीर्घ करने पर शीर्त, इस स्थिति में "रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः" इस सूत्र से तकार के स्थान पर नकार "अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि" सूत्र से नकार को णत्व, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'शीर्णः' यह रूप सिद्ध हुआ।

अभेदि इति भिन्नः भिद् धातु से "निष्ठा" सूत्र से 'क्त प्रत्यय कलोप, रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' सूत्र से निष्ठा के तकार का और भिद् के दकार के स्थान पर नकारादेश किया, क्त्वाद्गुणाभाव, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय और विभक्ति कार्य करने पर 'भिन्नः' यह रूप सिद्ध हुआ।

'छिन्नः' रूप की सिद्धि भी 'भिन्नः' के समान ही होती है।

३६ संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः ८।२।४३ यण्वान् जो संयोगादि आकारान्त धातु, उससे पर निष्ठा सम्बन्धी तकार को नकारादेश होता है। यथा—द्राणः, ग्लानः। 'द्रा' धातु से "निष्ठा" सूत्र से क्त प्रत्यय, ककार का लोप "संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः" सूत्र से तकार के स्थान पर नकार किया, णत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय और विभक्ति कार्य करने पर 'द्राणः' यह रूप सिद्ध हुआ।

ग्लै धातु से "निष्ठा" सूत्र से क्त प्रत्यय, ककार का लोप "आदेच उपदेशेऽशिति" सूत्र से ऐकार के स्थान पर आत्व किया "संयोगादरातो धातोर्यण्वतः" सूत्र से तकार को नत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय और विभक्ति कार्य करने से 'ग्लानः' यह रूप सिद्ध हुआ।

३७. ल्वादिभ्यः ८।२।४४— लू आदि इक्कीस धातुओं से पर निष्ठा सम्बन्धी तकार को नकार आदेश होता है। यथा—लूनः, जीनः।

'लूञ्' धातु से अनुबन्ध का लोप या लू इत्यत्र "निष्ठा" इस सूत्र से क्त प्रत्यय, ककार का लोप 'ल्वादिभ्यः" इस सूत्र से तकार को नकारादेश, प्रातिपदिक संज्ञा, सुविभक्ति और विभक्ति कार्य करने से 'लूनः' यह रूप निष्पन्न हुआ।

३८. हलः ६।४।२—अंगावयव हल् से पर जो सम्प्रसारण, तदन्त जो अंग, उसको दीर्घ होता है।

'ज्या' धातु से "निष्ठा" सूत्र से क्त प्रत्यय किया, ककार का लोप 'ग्रहिज्यावयिव्यधि" इत्यादि सूत्र से सम्प्रसारण "सम्प्रसारणाच्च" सूत्र से पूर्वरूप "हलः" सूत्र से सम्प्रसारण से उत्पन्न इकार को दीर्घ किया। "ल्वादिभ्यः" सूत्र से निष्ठा के तकार को नकार किया, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार को रुत्व और विसर्ग करने पर "जीनः" यह रूप सिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९. ओदितश्च ८।२।४५— ओदित धातु से पर निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। यथा—भुग्नः।

'भुज्' धातु से "निष्ठा" सूत्र से कर्मणि में क्त प्रत्यय किया, ककार का लोप "ओदितश्च" सूत्र से निष्ठा के तकार को नत्व "पूर्वत्रासिद्धम्" इस सूत्र से उसके असिद्ध होने के कारण "चोःकुः" सूत्र से जकार के स्थान गकार, कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय, उकार का लोप, सकार का रेफ और विसर्ग करने पर 'भुग्नः' यह रूप सिद्ध हुआ।

उत् + टु ओश्वि धातु से "निष्ठा" इस सूत्र से क्त प्रत्यय किया, ककार का अनुबन्ध "आदिर्ञिटुडवः" सूत्र से टकार की इत्संज्ञा और लोप "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से ओकार की इत्संज्ञा और लोप करने पर 'उत् श्वि + त' इत्यत्र "ओदितश्च" सूत्र से तकार का नत्व "पूर्वत्रासिद्धम्" सूत्र से उसके असिद्ध होने के कारण "वचिस्वपियजादीनां किति" सूत्र से सम्प्रसारण "सम्प्रसारणाच्च" इस सूत्र से पूर्वरूप करने पर 'उत् + शु + त' इस स्थिति में "हलः" इस सूत्र से सम्प्रसारण को दीर्घ "स्वीदितः" सूत्र से इडागमाभाव, "शश्छोटि" सूत्र से छत्व, 'उत् के तकार को श्चुत्व करने से चकारादेश, कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय, उकार का लोप, सकार को रेफ और विसर्ग करने से 'उच्छूनः' यह रूप सिद्ध हुआ।

४०. शुषः कः ८।२।५१ — 'शुष्' धातु से पर निष्ठा के तकार को ककार आदेश होता है। अशुषत् इति शुष्कः—शुष् धातु से "निष्ठा" इस सूत्र से तकार के स्थान पर ककारादेश किया, तो शुष् + क' इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय और विभक्ति कार्य करने से 'शुष्कः' यह रूप सिद्ध हुआ।

४१. पचो वः ८।२।५२— 'पच्' धातु से पर निष्ठा के तकार को वकार आदेश होता है। 'पच्' धातु से "निष्ठा" सूत्र से क्त प्रत्यय किया, ककार का लोप "पचोवः" सूत्र से 'पच्' धातु के परे निष्ठा के तकार को वकारादेश "पूर्वत्रासिद्धम्" सूत्र से वादेश असिद्ध होने तथा झल्परत्व होने से "चोः कुः" सूत्र से चकार के स्थान में ककारादेश प्रातिपादिक संज्ञा, सु प्रत्यय, विभक्ति कार्य करने पर "पक्वः" यह रूप सिद्ध हुआ।

४२. क्षायो मः ८।२।५३ - "क्षै" धातु से पर निष्ठा सम्बन्धी तकार को मकार आदेश होता है। 'क्षै' धातु से "निष्ठा" सूत्र से 'क्त' प्रत्यय किया, ककार का अनुबन्ध और लोप "आदेश उपदेशेऽशिति" इस सूत्र से ऐकार को आत्व "क्षायोमः" सूत्र से निष्ठा सम्बन्धी तकार को मकारादेश, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय और विभक्ति कार्य करने पर 'क्षामः' यह रूप सिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३ निष्ठायां सेटि ६।४।५२—सेट् निष्ठा के परे 'णि' का लोप होता है।

देवदत्तः यज्ञदत्तमवीभवत्, देवदत्तेन यज्ञदत्तः अभावि, इस अर्थ में भावित रूप बनता है।

'भू' धातु से "हेतुमति च" सूत्र से 'णि' प्रत्यय, णकार का लोप, "अचोञ्णिति" सूत्र से भू धातु की वृद्धि "एचोऽयवायावः" इस सूत्र से अवादेश करने पर 'भावि' रूप बना; अनन्तर "सनाद्यन्ता धातवः" सूत्र से धातु संज्ञा "निष्ठा" सूत्र से कर्मणि 'क्त' तथा कर्त्तरि 'क्तवतु' प्रत्यय, ककार का लोप "आर्धधातुकं शेषः" आर्धधातुक संज्ञा "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इडागम, टकार का लोप, "निष्ठायां सेटि" सूत्र से णिलोप, कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, विभक्ति कार्य करने पर 'भावितः' और 'भावितवान्' रूप सिद्ध होते हैं।

४४. दृढः स्थूलबलयोः ७।२।२०—स्थूल और बलवान् अर्थ में 'दढ' का निपातन होता है।

४५. दधातेर्हिः ७।४।४२—'धा' धातु को 'हि' आदेश होता है, तादि कित् प्रत्यय के परे।

दढः—'दृह्' धातु से "निष्ठा" सूत्र से 'क्त' प्रत्यय, ककार का लोप, इडाभाव, निष्ठा के तकार को ढत्व और हकार का लोप, निपातन करने से 'दृढ' इत्यत्र प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय और विभक्ति कार्य करने पर 'दृढः' यह रूप सिद्ध हुआ।

'धा' धातु से "निष्ठा" सूत्र से प्रत्यय किया, ककार का लोप, 'धा + त' इस स्थिति में "दधातेर्हिः" इस सूत्र से 'धा' के स्थान में 'हि' आदेश करने पर 'हि + त' इत्यत्र "कृत्तद्धितसमासाश्च" इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, सु के स्थान में नपुंसकलिङ्ग होने से "अतोऽम्" सूत्र से 'अम्' आदेश, अकार का पूर्वरूप करने पर 'हितम्' यह रूप निष्पन्न हुआ।

४६. दो दद्घोः ७।४।४२—घुसंज्ञक 'दा' धातु को 'दध्' आदेश होता है, तादि कित् प्रत्यय के परे।

दत्तः—'दा' धातु से "निष्ठा" सूत्र से 'क्त' प्रत्यय, ककार का लोप, "दो दद्घोः" सूत्र से 'दा' धातु के स्थान में दध् आदेश किया, "खरि च" सूत्र से थकार के स्थान पर तकार, "कृत्तद्धितसमासाश्च," सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार, का रुत्व और रेफ का विसर्ग करने पर 'दत्तः' यह रूप निष्पन्न हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७. लिटः कानज्वा ३।२।१०६—लिट् के स्थान में विकल्प से 'कानच्' प्रत्यय होता है।

४८. क्वसुश्च ३।२।१०७—लिट् के स्थान में विकल्प से 'क्वसु' प्रत्यय होता है। तात्पर्य यह है कि भूतकाल में धातुओं के आगे परस्मैपद में 'क्वसु' और आत्मनेपद में 'कानच्' प्रत्यय होते हैं। 'क्वसु' प्रत्यय में क्, उ का लोप होने से वस् और 'कानच्' में क्, च् का लोप होने से आन शेष रहता है।

'चक्राणः' इत्यत्र 'कृ' धातु से "लिटः कानज्वा" सूत्र से लिट् के स्थान में कानच् 'प्रत्यय, क्, च् का लोप होने से 'कृ + आन' इस स्थिति में "लिटि धातोरनभ्यासस्य" सूत्र से द्वित्व "पूर्वोऽभ्यासः" सूत्र से अभ्यास संज्ञा "उरत्" सूत्र से अभ्यास के ऋवर्ण को अत्व "उरण् रपरः" सूत्र से रपरत्व करने पर 'कर + कृ + आन' इस अवस्था में "हलादिः शेषः" सूत्र से रलोप "कुहोश्चुः" सूत्र से अभ्यास संज्ञक क के स्थान पर चकार, "इको यणचि" सूत्र से यणादेश "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार का रुत्व और विसर्ग करने पर 'चक्राणः रूप बना।

४९. म्वोश्च ८।२।६५—मान्त धातु के मकार को न होता है मकार और वकार के परे। जगन्वान्—गम् धातु से लिट लकार ',क्वसुश्च" सूत्र से लिट् के स्थान में 'क्वसु' प्रत्यय, ककार और उकार का लोप करने पर 'गम् + वस्' इस स्थिति में "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इस सूत्र से द्वित्व "पूर्वोऽभ्यासः" सूत्र से अभ्यास संज्ञा "हलादिः शेषः" सूत्र से नलोप करने पर "कुहोश्चुः सूत्र से गकार के स्थान पर जकार करने से 'जगम् + वस्' इस स्थिति में "म्वोश्च" सूत्र से मकार के स्थान में नत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप "उगिदचां सर्वनाम स्थानेऽधातोः" सूत्र से नुम् का आगम, उम् का लोप करने पर 'जगन्वन्स्' इत्यत्र "सान्तमहतः संयोगस्य" सूत्र से उपधा को दीर्घ किया "हल्ङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से विभक्ति सम्बन्धी 'स्' का लोप "संयोगान्तस्य लोपः" सूत्र से स्लोप और न लोप असिद्ध होने से 'जगन्वान्' यह रूप निष्पन्न हुआ।

५०. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४—अप्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं। अभिप्राय यह है कि कर्त्तवाच्य में परस्मैपदी धातुओं के आगे वर्त्तमान काल में शतृ प्रत्यय और आत्मनेपदी धातुओं में शानच् प्रत्यय होते हैं। अनुबन्ध लोप होने पर 'शतृ' में से अत् और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शानच् में से 'आन' शेष रहता है। 'पचन्तं चैत्रं पश्य' इत्यत्र 'पच्' धातु से "वर्तमाने लट्" सूत्र से लट् लकार "लटःशतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" शतृ प्रत्यय किया, शकार और ऋकार का लोप करने से 'पच् + अत्' इत्यत्र "तिङ् शित्सार्वधातु कम्" सूत्र शित्वात् सार्व सातुक संज्ञा, "कर्त्तरि शप्" सूत्र से 'शप्' प्रत्यय किया, श् और प् का लोप करने पर अ शेष रहा, अतः 'पच् + अ + अत्' इस स्थिति में "अतो-गुणे" सूत्र से पररूप "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, द्वितीया विभक्ति एक वचन विवक्षा में 'अम्' प्रत्यय "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः" सूत्र से नुम् का आगम, उम् का अनुबन्ध और संयोग करने पर 'पचन्तम् रूप सिद्ध हुआ।

५१. आनेमुक् ७।१।८२—अंगावयव 'अत्' को मुक् का आगम होता है 'आन' के परे। पचमानं चैत्रं पश्य—इत्यत्र 'पच्' धातु "वर्त्तमाने लट्" सूत्र से लिट् लकार हुआ "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस सूत्र से लट्लकार के स्थान में शानच् प्रत्यय किया। "तिङ् शित्सार्वधातुकम्" इस सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा, "कर्त्तरि शप्" सूत्र से शप् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप 'पच् + अ + आन' इस स्थिति में "आने मुक्" सूत्र से मुगागम, उक् का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय नपुंसक लिङ्ग होने से सु के स्थान में अम्, अकार का पूर्वरूप और संयोग करने से 'पचमानम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

५२. विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६—विद् धातु से पर 'शतृ' के स्थान में विकल्प से वसु आदेश होता है।

विद्वान्,विद्वन्—वेत्तीति विग्रह में विद् धातु से "विदेः शतुर्वसुः" सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय के स्थान में वसु आदेश, उकार का लोप, 'विद्वस्, इत्यत्र "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय उकार का लोप, "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः" सूत्र से नुम् आगम, उम् का लोप "अत्वसन्तस्य चाऽधातोः" सूत्र से उपधा को दीर्घ किया "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से सु का लोप, "संयोगान्तस्यः लोपः" सूत्र से सकार का लोप किया तो 'विद्वान्' रूप वना।

विद् धातु से लट्, शतृ प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, शप्, शप् का लोप करने पर विद् + अत् = विदत् इस स्थिति में "उगिदचां सर्वनाम स्थानेऽ धातोः" इस सूत्र से नुम् का अगम, उम् का लोप, "हलङ्याब्भ्यः" सूत्र से स का लोप "संयोगान्तस्य लोपः" इस सूत्र से द्वितीय सकार का लोप करने पर 'विद्वन्' रूप सिद्ध हुआ।

सन् द्विजः, इत्यत्र अस् धातु से "वर्त्तमाने लट्" सूत्र से लट्लकार, "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" सूत्र से लट् के स्थान में शतृ प्रत्यय, "कर्त्तरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शप्" सूत्र से शप् प्रत्यय 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लोप करने से अस् + अत् इस स्थिति में सार्वधातुक को ङित्व होने से "श्नसोरल्लोपः" सूत्र से अस् के अकार का लोप किया "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप "उगिदचां सर्वनाम स्थानेऽ धातोः" सूत्र से नुम् का आगम् उम् का लोप करने पर "सन्तस्" इस स्थिति में "हलङ्याब्भ्यः" सूत्र से सकार का लोप, "संयोगान्तस्य लोपः" सूत्र से 'त्' का लोप करने पर 'सन्' यह रूप सिद्ध हुआ।

५३ तौ सत् ३।२।१२७—शतृ और शानच् प्रत्यय 'सत्' संज्ञक होते हैं।

५४ लृटः सद्वा ३।३।१४– लृट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं। करिष्यन्तम्—इत्यत्र कृ धातु से "लृट् शेषे च" सूत्र से लृट् लकार, "लृटः सद्वा" सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय किया और अनुबन्ध का लोप करने से 'कृ + अत्' इस स्थिति में "स्यतासी लृलुटोः" सूत्र से 'स्य' का आगम "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्ध धातुक संज्ञा, "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इडागम, कृ का गुण और रपरत्व, षत्व करके "अतो गुणे" सूत्र से पर रूप करने पर "करिष्यत्" इत्यत्र "कृत्तद्धित-समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा द्वितीया विभक्ति एक वचन में अम् प्रत्यय, नुमागम, अनुबन्ध का लोप, अनुस्वार और परसवर्ण करने पर 'करिष्यन्तम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

करिष्यमाणम्—कृ धातु से लृट् लकार, "तौ सत्" से सत्संज्ञा और "लृटः सद्वा" सूत्र से शानच् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, "स्यतासी लृलुटोः" सूत्र से स्य, इट् आगम' गुण, रपरत्व, षत्व करने पर 'करिष्य + आन' इस स्थिति में "आने मुक्" सूत्र से मुक् का आगम और संयोग करने पर 'करिष्यमान' इत्यत्र प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने से 'करिष्यमाणम्' रूप सिद्ध हुआ।

५५ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४—वक्ष्यमाण 'भ्राजभास' सूत्र से विहित क्विप् पर्यन्त जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे तच्छीलादि कर्त्ता अर्थ में होते हैं।

५६ तृन् ३।२।१३५—तच्छीलादि अर्थ में धातु से 'तृन्' प्रत्यय होता है। यथा— कर्त्ता कटान् करोति तच्छील इत्यस्मिन्नर्थे 'कृ' धातु से "तृन्" सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय, नकार का लोप, "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण "उरण् रपरः" सूत्र से रपरत्व करने पर 'कर्तृ' इस स्थिति में "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा सु प्रत्यय, उकार लोप "सुडनपुंसकस्य"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्र से 'स' की सर्वनामस्थान संज्ञा की "ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च" सूत्र से अनङ् किया, अङ का लोप, "सर्वनामस्थाने चाऽसाम्बुद्धौ" सूत्र से उपधा को दीर्घ किया "हलङ्याब्भ्यः इत्यादि सूत्र से स लोप "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इस सूत्र से न लोप करने पर 'कर्त्ता' यह रूप बना।

५७ जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन् ३।२।१५५—तच्छीलादि अर्थ में जल्पादि धातुओं से षाकन् प्रत्यय होता है।

५८ षः प्रत्ययस्य १।३।६—प्रत्यय के आदि षकार की इत्संज्ञा होती है।

जल्पति तच्छीलः, इत्यस्मिन्नर्थे जल्प धातु से "जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्" सूत्र से 'षाकन्' प्रत्यय किया "षः प्रत्ययस्य" सूत्र से प्रत्यय के षकार की इत्संज्ञा की "तस्य लोप" सूत्र से षकार-नकार का लोप करने पर 'जल्पाक' यह स्थिति हुई। "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, स का रुत्व और विसर्ग करने पर 'जल्पाकः' रूप सिद्ध हुआ।

भिक्ष् धातु से "जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्" इस सूत्र से 'षाकन्' प्रत्यय, "षः प्रत्ययस्य" सूत्र से प्रत्यय के षकार का लोप' "हलन्त्यम्" सूत्र से नकार का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर "भिक्षाकः" रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कुट्ट + षाकन् = कुट्टाकः, लुण्ठ + षाकन् = लुण्ठाकः।

वृ धातु से "जल्पभिक्षकुट्ट लुण्ठवृङः षाकन्" सूत्र से षाकन् प्रत्यय किया "षः प्रत्ययस्य" सूत्र से प्रत्यय के षकार की इत्संज्ञा और लोप, "हलन्त्यम्" सूत्र से नकार का लोप करने पर "वराक" इस स्थिति में "षिद्गौरादिभ्यश्च" सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय ङ् ष्का लोप "यचिभम्" सूत्र से भसंज्ञा, "यस्येति च" सूत्र से अकार का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से स् का लोप करने पर 'वराकी' यह रूप सिद्ध हुआ।

५९ सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८—सन्, आशंस् और भिक्ष् धातु से 'उ' प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थ में।

कर्तुमिच्छतीति विग्रह में 'कृ' धातु से "धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा" सूत्र से सन्, नकार का लोप "इको झल्" सूत्र से सन् के कित्वाद् होने के कारण गुणाभाव "अज्झन् गमां सनि" सूत्र से दीर्घ "ऋत इद्धातोः" सूत्र से इत्व और रपरत्व "हलिच" सूत्र से दीर्घ करने पर 'कीर्स' इस स्थिति में "सन्यङोः" सूत्र से द्वित्व, अभ्यासकार्य, सकार को षत्व करने पर चिकीर्ष इस अवस्था में "सनाशंसभिक्षउः" सूत्र से उ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यय, आर्धधातुक होने से "अतो लोपः" सूत्र से अकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर "चिकीर्षुः" रूप सिद्ध हुआ ।

आङ् + शस् + उ (सनाशंसभिक्षउः से उ प्रत्यय) = आशंसुः ।

भिक्ष् + उ = भिक्षुः ।

६० भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७ — भ्राज्, भास्, धुर्वि, द्युत्, ऊर्जि, पृ, जु, ग्रावस्तु इन धातुओं से तच्छीलादि अर्थ में "क्विप्" प्रत्यय होता है। 'विशेषण भ्राजते तच्छीलः, इस अर्थ में वि + भ्राज् धातु से "भ्राजभासधुर्विद्युतो" इत्यादि सूत्र से क्विप्' प्रत्यय किया, क्विप् का सर्वापहारी लोप करने पर 'विभ्राज्' इत्यत्र "कृत्तद्धितसमासाश्च" इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय, उकार का लोप "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से 'स' का लोप "व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयज-राजभ्राजश्छशां षः" सूत्र से जकार के स्थान में षत्व किया "झलांजशोऽन्ते" सूत्र से षकार के स्थान पर डकार "वावसाने" सूत्र से डकार के स्थान पर टकार करने पर विभ्राट्' यह रूप भाः इत्यत्र भास् धातु से "भ्राजभास–इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप, प्रातिपादिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार लोप, "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से सकार का लोप, भास् धातु के सकार का रुत्व, रेफ का विसर्ग करने पर 'भाः' यह रूप सिद्ध हुआ।

६१ राल्लोपः ६।४।२१ – झलादि कित्–ङित् और क्विप् के परे रेफ से पर छकार तथा वकार का लोप होता है। यथा—धूः, विद्युत्, ऊर्क्, पूः, जूः ।

धूः—इत्यत्र धुर्व धातु से क्विप् प्रत्यय किया, क्विप् का सर्वापहारी लोप, "राल्लोपः" सूत्र से व् लोप, 'धुर' इस स्थिति में "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, 'सु' प्रत्यय, उकार का लोप, हल्ङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से स् लोप, र्वोरुप धाया दीर्घ इकः" इस सूत्र से दीर्घ, रेफ का विसर्ग करने पर 'धूः' यह रूप सिद्ध हुआ। विद्युत् इत्यत्र विपूर्वक द्युत् धातु से "भ्राज्भास धुर्विद्युत" इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय, क्विप् का सर्वपहारी लोप, "कृत्तद्धित समासाश्च" प्रातिपदिक संज्ञा, सुविभक्ति, उकार का लोप "हल्ङ्या" इत्यादि सूत्र से स् का लोप "रात्सस्य" इस नियम से ज् के लोप का अभाव सिद्ध हुआ "चोः कु." इस सूत्र से जकार के स्थान में कवर्ग और चरत्व करने पर 'ऊर्क्' रूप सिद्ध हुआ।

पूः इत्यत्र पृ धातु से "भ्राजभास" इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप "उदोष्ठ्य पूर्वस्य" इस सूत्र से उत्व "उरण्रपरः" सूत्र से रपरत्व "कृत्तद्धितसमासाश्च" इस सूत्र से प्रतिपदिक संज्ञा, सु प्रत्य, उकार का लोप "हल्ङ्या"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि सूत्र से सकार का लोप "वोरुपधाया दीर्घं इकः" सूत्र से दीर्घ किया और रेफ का विसर्ग करने पर 'पूः' यह रूप सिद्ध हुआ।

जूः—इत्यत्र 'जु धातु से "भ्राजभास" इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप, "दृशिग्रहणास्यापकर्षाज्जवते दीर्घः" नियम से दीर्घ किया, प्रातिपदिक संज्ञा सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार को रुत्व, रेफ का विसर्ग करने पर 'जूः' यह रूप सिद्ध हुआ।

६२ क्विब्वचि प्रच्छ्यायतस्तुकट प्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणंच—वच् आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है अच् को दीर्घ और सम्प्रसारण का अभाव होता है।

वाक्—वच् धातु से क्वि प् प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप, "क्विब्वचि-प्रच्छ्यायतस्तुकट" इत्यादि वार्त्तिक से दीर्घ असम्प्रसारण, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय उकार लोप, "हल्ङ्या" इत्यादि सूत्र से स् लोप, "चोः कुः" सूत्र से कुत्व करने पर 'वाक्' यह रूप वना।

६३ च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।४।१९—तुक् विशिष्ट छकार तथा वकार को क्रम से श् तथा ऊठ् आदेश होता है, क्विप् और झलादि कित्–ङित के परे। पृच्छतीती प्राट्— इत्यत्र प्रच्छ् धातु से क्विप् प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप, "क्विब्वचि प्रच्छि" इत्यादि सूत्र से प्रच्छ् धातु के प्र को दीर्घ, असम्प्रसारण करने पर "च्छ्वोः शूडनुनासिके च" इस सूत्र से छकार को शत्व करने पर "कृत्तद्धित समासाश्च" सूत्र से प्रातपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, "हलङ्या" इत्यादि सूत्र से स् का लोप, "व्रश्चभ्रस्जसृजमृज" इत्यादि सूत्र से शकार के स्थान पर षत्व "झलांजशोऽन्ते" सूत्र से षकार के स्थान पर डकारादेश "वावसाने" सूत्र से डकार के स्थान पर टकारादेश करने पर 'प्राट्' यह रूप सिद्ध हुआ।

आयतं स्तौति--इति आयतस्तूः' इत्यत्र 'स्तु' धातु से "क्विब्वचि प्रच्छ्ययतास्तु" इत्यादि वार्तिक से क्विप्, क्विप् का सर्वापहारी लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, उक्त वार्तिक से ही दीर्घ, 'सकार का रुत्व, रेफ विसर्ग और विभक्ति कार्य करने पर 'स्तूः' यह रूप सिद्ध हुआ।

कटं प्रवते कटप्रूः—इत्यत्र 'कट+प्रु धातु से "क्विब्वचिप्रच्छयायस्तु" इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय और दीर्घ, क्विप् का सर्वापहारी लोप, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर "कटप्रू" यह रूप वना।

इसी प्रकार जूरुक्तः में जु + क्विप् दीर्घ और विभक्ति कार्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रयति हरिं श्रीः इत्यत्र श्रिञ् + क्विप्, दीर्घ और विभक्ति कार्य।

६४ दाम्नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि, सिच-मिह-पत-दश-नहः करणे ३।२।१८२ दाप, नी, शस्, यु, युज् स्तु, तुद, सि, सिच्, मिह्, पत्, दश् और नह् धातुओं से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।

'दात्य नेन दात्रम् 'इत्यत्र दाप् धातु से "दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपत-दशनहः करणे सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय किया, नकार का लोप "षः प्रत्ययस्य" सूत्र से षकार की इत्संज्ञा "तस्य लोपः" सूत्र से षकार का लोप 'दात्र' इस स्थिति में प्रातिपादिक संज्ञा, सु विभक्ति नपुंसक लिंग 'सु' के स्थान में अम् अकार का पूर्वरूप और संयोग करने पर "दात्रम्" यह रूप सिद्ध हुआ।

नयति अनेन इति नेत्रम् इत्यत्र, नि धातु से "दाम्नीशसयुयुजस्तुस्तुद" इत्यादि सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय, नकार का लोप, ष्टुत्वकी निवृत्ति 'त्र' अवशिष्ट रहने पर आर्धधातुक संज्ञा करने पर "सार्वधातुकार्ध धातुकयोः" सूत्र से गुण किया, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु प्रत्यय, 'सु' के स्थान पर 'अम्' अकार का पूर्वरूप और संयोग करने पर 'नेत्रम्' यह रूप बना।

६५ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७।२।९—ति, तु, त्र, थ, सि, सु, सर, क और स इन दशों कृत्प्रत्ययों को इट् नही होता।

शस्त्रम् इत्यत्र शस् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, 'शस् + त्र' इस स्थिति में "आर्धधातु कं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इडागम प्राप्त था, पर "तितुतत्रथसिसु सरकसेषु" सूत्र से निषेध किया, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यत, सु के स्थान पर 'अम्' अकार का पूर्वरूप और संयोग करने पर शस्त्रम् यह रूप सिद्ध हुआ।

योक्त्रम्' युज् धातु से "दाम्नीशसयुयुज" इत्यादि सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय अनुबन्ध का लोप, आर्ध धातुक होने से "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुण "त्रितुत्रतथसिसुसरक" सेषु सूत्र से इडागम का निषेध, "चोः कुः" सूत्र से कुत्व और विभक्ति कार्य करने पर 'योक्त्रम्' यह रूप बना है।

स्तोत्रम् इत्यत्र 'सु' धातु से "दाम्नीशसयुयुज" इत्यादि सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप "तितुत्रतथसिसुसरकसेषु" सूत्र से इडागमाभाव, आर्ध धातुक होने से "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुण, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर "स्तोत्रम् रूप बना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तोत्त्रम् – तुद् + ष्ट्रन् (इडागमाभाव), गुण, विभिन्न कार्य, चरत्व ।

सेत्रम् – सि ष्ट्रन् (इडागमाभाव), गुण, विभक्ति कार्य ।

सेक्त्रम् – सिच् + ष्ट्रन् + गुण, इडागमाभाव, कुत्व, विभक्ति कार्य ।

मेढ्रम् – मिह + ष्ट्रन् गुण, "होढः" सूत्र से हकार के स्थान् पर ढ, "झषस्तथोर्धोऽधः" सूत्र से तकार के स्थान पर धकार, "ष्टुना ष्टुः" सूत्र से धकार के स्थान पर ढकार । "ढोढे लोपः" सूत्र से पूर्व ढ का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य ।

पत्रम् – पद् + ष्ट्रन्, ("खरिच" सूत्र से दकार का तकार), प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति काय । दंष्ट्रा – दंश् + ष्ट्रन् ङित्व होने से न् लोपाभाव, "व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः" सूत्र से शकार के स्थान षत्व, ष्टुत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, स्त्रीत्व विवक्षा होने में टाप्, विभक्ति कार्य ।

नध्री – नह् + ष्ट्रन् "नहो धः" सूत्र से हकार के स्थान पर धकार "झषस्तथोर्धोऽधः" तकार के स्थान कर धकार षित्व होने से "षिद्गौरादिभ्यश्च" सूत्र से ङीष् प्रत्यय विभक्ति कार्य ।

६६. अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः—३।२।१८४–ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर धातुओं से करण में 'इत्र' प्रत्यय होता है ।

अरित्रम् ऋ धातु से "अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः" सूत्र से इत्र प्रत्यय "आर्धधातुकशेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा "सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से गुण, "उरण् रपरः" सूत्र से रपरत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य करने पर अरित्रम् यह रूप सिद्ध हुआ ।

लवित्रम् – लू धातु से "अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः" सूत्र से इत्र प्रत्यय, "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण, अवादेश, संयोग, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'लवित्रम्' यह रूप सिद्ध हुआ ।

धवित्रम् – धू + इत्र + गुण + अव् + विभक्ति कार्य ।

सवित्रम् – सू + इत्र + गुण + अव् + विभक्ति कार्य ।

खनित्रम् – खन् + इत्र + विभक्ति कार्य ।

सहित्रम् – सह् + इत्र + विभक्ति कार्य ।

चरित्रम् – चर् + इत्र + विभक्ति कार्य ।

पवित्रम् – पू + इत्र + गुण + अवादेश + विभक्ति कार्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७. कृ-पा-या-जि-मि-स्वदि-साध्य-शूभ्य उण्—कृ, वा, पा, जि, मि स्वद्, साध् और अश् धातुओं से उण् प्रत्यय होता है।

करोतीति कारुः'—'कृ' धातु से "कृवापाजिमिस्वदिसाध्य शूभ्य उण्" सूत्र से उण् प्रत्यय व् का लोप, 'कृ+उ' "अचो ञ्णिति" सूत्र से ऋकार की वृद्धि "उरण्रपरः" सूत्र से रपरत्व 'क् अर्+ उ इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा संयोग, विभक्ति कार्य करने पर कारुः' यह रूप सिद्ध हुआ।

वातीति वायुः—'वा' धातु से "कृवापाजिमि स्वदिसाध्यशूभ्यउण्" उण् प्रत्यय, णकार का लोप, "आतो युक् चिण्कृतोः" सूत्र से युगागम, क् का लोप, संयोग, प्रातिपदिक संज्ञा, सु विभक्ति, उकार का लोप, सकार का रुत्व, रेफ का विसर्ग करने पर 'वायुः, यह रूप सिद्ध हुआ।

पायुः – 'पा' धातु से "कृवापाजिमिस्वदि साध्यशूभ्यउण्" सूत्र से उण् प्रत्यय अनुबन्ध का लोप वा + उ इस स्थिति में "आतो युक् चिण् कृतोः" सूत्र से युगागम, 'क' का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार का रुत्व रेफ का विसर्ग करने पर पायुः यह रूप सिद्ध हुआ।

मायु :—मिञ् + उण् "मीनातिमिनोती दीङां ल्यपि च्" सूत्र से आत्व" "आतो युक् चिणकृतोः" सूत्र से युगागम, अनुबन्ध का लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य।

स्वादु :—स्वदते इति स्वादु : स्वद् + उण् "अत उपधायाः" सूत्र से स्वद् की उपधा की वृद्धि की, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य।

साध्नोति पर कार्यमिति साधुः—साध् + उण् "अत उपधायाः" सूत्र से उपधा की वृद्धि, विभक्ति कार्य।

आशुः—अश् धातु से "कृवापाजिमिस्वदिसाध्य शूभ्य उण्" उण् प्रत्यय किया, णकार को लोप "अत उपधायाः" सूत्र से उपधा की वृद्धि, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्ययः विभक्ति कार्य करने पर 'आशुः' यह रूप सिद्ध हुआ।

६८. उणादयो बहुलम्—३।३।१ धातु से वर्तमान काल और संज्ञा में उणादि प्रत्यय बहुल प्रकार से होते हैं। आशय यह है कि संज्ञा में धातु की कल्पना करनी होती है और फिर उससे प्रत्यय की कल्पना की जाती है तथा प्रयोग में गुणाभाव अथवा वृद्धि आदि कार्यों को देखकर प्रत्ययों में अनुबन्ध—कित् ङित्, णित्,, ञित आदि की कल्पना भी करनी पड़ती है। ये सब विशेषताएँ उणादि के कारण उत्पन्न होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरकृदन्तम्

१. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०—क्रियार्थक क्रिया उपपद रहने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से 'तुमुन्' और 'ण्वुल्' प्रत्यय होते हैं। यदि दो क्रियाओं में एक कर्त्ता हो तो दोनों क्रियाओं के मध्य में निमित्त अर्थ बोधक धातु के परे 'तुमुन्' प्रत्यय होता है।

कृष्णं द्रष्टुं याति—इत्यत्र 'दृश्' धातु से "तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्" सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, "सृजिदृशोर्झल्यमकिति" सूत्र से अम्, मकार का लोप, मित्वात् "मिदचोऽन्त्यात्परः" इस सूत्र से अन्त्य अच् से पर करने पर 'दृ+अ+श्+तुम इस स्थिति में "इको यणचि" सूत्र से यण्, "व्रश्चभ्रस्जसृज" इत्यादि सूत्र से शकार का षत्व, "ष्टुनाष्टुः" सूत्र से ष्टुत्व करने पर 'द्रष्टुम्' इस स्थिति में "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय "कृन्मेजन्तः" इस सूत्र से मान्तत्व होने से अव्ययत्व होने के कारण "अव्ययादाप् सुपः" सूत्र से सुप् का लोप करने पर 'द्रष्टुं याति—कृष्णं द्रष्टुं याति' रूप सिद्ध हुआ। कृष्णं च दर्शको याति—इत्यत्र 'दृश्' धातु से "तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्" सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय, ण् और ल् का लोप करने पर 'दृश्+वु' इस अवस्था में 'युवोरनाकौ" सूत्र से 'वु' के स्थान पर अकादेश "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुण और रपरत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य करने पर 'दर्शकः—कृष्णं दर्शको याति' यह प्रयोग सिद्ध हुआ।

२. कालसमयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७—काल, समय और वेला उपपद पर रहने पर धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय होता है।

कालः समयो वेला वा भोक्तुम्—इत्यत्र 'भुज्' धातु से "कालसमयवेलासु तुमुन्" सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, आर्धधातुक होने से "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुणादेश, "चोः कुः" सूत्र से जकार के स्थान गकार "खरिच" सूत्र से ग् के स्थान पर क् 'कृन्मेजन्तः' सूत्र से अव्यय होने के कारण, प्रतिपदिक संज्ञा' सु प्रत्यय और "अव्ययादाप् सुपः" सूत्र से सु का लोप करने पर 'भोक्तुम्' रूप बना।

३. भावे ३।३ १८—सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थं वाच्य हो तो धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है।

पाकः—इत्यत्र 'पच्' धातु से "भावे" सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप 'पच्+अ' इस स्थिति में "अत उपधायाः" सूत्र से उपधा की वृद्धि "चजोः कुघिण्यतोः" सूत्र से चकार के स्थान पर कुत्व "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रतिपदिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार का रुत्व और रेफ का विसर्ग करने पर 'पाकः' यह रूप सिद्ध हुआ।

४. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९—कर्त्तृभिन्न कारक अर्थ में धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है, संज्ञा में।

५. घञि च भावकरणयोः ६।४।२७—भाव और करण में 'रञ्ज्' धातु के नकार का लोप होता है, घञ् प्रत्यय के परे।

रागः-इत्यत्र 'रञ्ज्' धातु से "अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्" सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय, अनुबंध का लोप, "घञि च भावकरणयोः" सूत्र से जकर के स्थान पर कुत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य करने पर 'रागः, यह रूप बना।

नकार का लोप न होने पर 'रङ्गः, रूप बनता है।

६. निवास-चितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्चकः ३।३।४१—निवासादि अर्थ में 'चिञ्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है और धातु के आदि चकार का ककार भी होता है।' निकायः, इत्यत्र निपूर्वक चि धातु से "निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्चकः" सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय, चकार का कुत्व, अनुबन्ध लोप नि+कि+अ इस स्थिति में "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा करने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण "एचोऽयवायावः" सूत्र से अयादेश नि+काय्+अ इस अवस्था में "अत उपधायाः सूत्र से वृद्धि "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, सकार का रेफ और विसर्ग करने पर "निकायः" यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कायः और गोमयनिकायः प्रयोगों की सिद्धि होती है।

७ एरच् ३।३।५६—इवर्णान्त धातु से 'अच्' प्रत्यय होता है। 'चयः, इत्यत्र 'चि' धातु से "एरच्" सूत्र से अच् प्रत्यय, चकार का लोप "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण, अयादेश और विभक्ति कार्य करने पर 'चयः' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'जि' धातु से 'जयः' रूप बनता है।

८. ऋदोरप् ३।३।५७—ऋवर्णान्त और उवर्णान्त धातुओं से 'अप्' प्रत्यय होता है। 'करः' इत्यत्र 'कृ' धातु से "ऋदोरप्" सूत्र से 'अप्' प्रत्यय, पकार का लोप, आर्धधातुक संज्ञा होने से "सार्वधातुकार्धधातुकायोः" सूत्र से गुण, "उरण रपरः" सूत्र से रपरत्व, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर "करः" यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'गृ' धातु से 'गरः, रूप बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'यवः' इत्यत्र—'यु' धातु से "ऋदोरप्" सूत्र से में 'अप्' प्रत्यय, पकार का लोप, आर्धधातुक संज्ञा "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" सूत्र से गुण, "एचोऽयवायावः" सूत्र से अवादेश, संयोग और विभक्ति कार्य करने से 'यवः' यह रूप सिद्ध हुआ।

लवः—लू+अप्+गुण+अवादेश+विभक्तिकार्य।

स्तवः—स्तू+अप्+गुण+अवादेश+विभक्तिकार्य।

पवः—पू+अप्+गुण+अवादेश+विभक्तिकार्य।

९. घञर्थे कविधानम्—घञ् अर्थ में 'क' प्रत्यय होता है।

प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन् धान्यानि—इति प्रस्थः प्रउपसर्गपूर्वक 'स्था' धातु से "घञर्थे कविधानम्" इस वार्तिक से अधिकरण अर्थ में 'क' प्रत्यय, ककार का लोप, "आर्धधातुकं शेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा "आतो लोप इटि च" सूत्र से आकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'प्रस्थः' यह रूप सिद्ध हुआ।

'विघ्नः' इत्यत्र वि पूर्वक 'हन्' धातु से "घञर्थे कविधानम्" वार्त्तिक से 'क' प्रत्यय किया, ककार का लोप, आर्धधातुक संज्ञा "गमहनजनखनघसांलोपः क्ङिति" सूत्र से उपधा के अकार का लोप किया, "हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु" सूत्र से हकार के स्थान पर कुत्व घत्व, और विभक्ति कार्य करने पर 'विघ्नः' यह रूप सिद्ध हुआ।

१०. ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८—'डु' इत्संज्ञक धातु से 'क्त्रि' प्रत्यय भाव अर्थ में होता है।

११. क्त्रेर्मम् नित्यम् ४।४।२०—'क्त्रि' प्रत्ययान्त से निर्वृत्त अर्थ में 'मप्' प्रत्यय होता है।

उप्त्रिमम्—वापेन निर्वृत्तम् उप्त्रिमम् 'इत्यत्र' डुवप्' बीजसन्तान धातु से "ड्वितः क्त्रिः" सूत्र से 'क्त्रि' प्रत्यय "क्त्रेर्मम्नित्यम्" सूत्र से निर्वृत्त अर्थ में मप् किया तो 'वप्+त्रि+मप् अनुबन्ध का लोप करने पर वप्+त्रि+म इस स्थिति में "वचिस्वपियजादीनां क्रिति" सूत्र से सम्प्रसारण 'उ+प्+त्रि+म इत्यत्र 'प्रातिपादिक संज्ञा, सुप्रत्यय, नपुंसक लिङ्ग होने से 'सु' के स्थान पर अम्, अकार का पूर्व रूप करने पर उप्त्रिमम् यह रूप सिद्ध हुआ।

'पाकेन निवृत्तं पक्त्रिमम्' इत्यत्र 'पच्' धातु से "ड्वितः क्त्रिः" सूत्र से 'क्त्रि प्रत्यय, ककार का लोप, "चोः कुः" सूत्र से पच् धातु के चकार को कुत्व किया तो पक्+त्रि यह स्थिति हुई। अनन्तर "क्त्रेर्मम् नित्यम्" सूत्र से 'मप्' प्रत्यय, पकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'पाक्त्रिमम् यह रूप बना।

१२. ट्वितोऽथुच् ३।३।८९—भाव में ट्वित् धातु से अथुच् प्रत्यय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'वेपथुः' इत्यत्र—टुवेप् धातु इत्संज्ञक का लोप करने पर 'वे' इस स्थिति में "ट्वितोऽथुच्" सूत्र से 'अथुच्' प्रत्यय किया, चकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'वेपथुः' यह रूप बना।

१३. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ् ३।३।९०—यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ्, और रक्ष् धातु से 'नङ्' प्रत्यय होता है।

यज्ञः—यज् धातु से "यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्" सूत्र से नङ् प्रत्यय, ङकार का लोप "स्तोः श्चुनाश्चुः" से श्चुत्व होने से न के स्थान में ञ्, ज् और ञ् का संयोग होने पर विभक्ति कार्य करने से 'यजतीति यज्ञः' रूप सिद्ध हुआ।

याच्+नङ् (श्चुत्व और टाप् करने से)=यञ्चा।

यत्+नङ्+विभक्ति कार्य=यत्नः।

विच्छ—विश्+नङ्+विभक्ति कार्य=विश्नः।

प्रच्छ्—प्रश्+नङ्+विभक्ति कार्य=प्रश्नः।

रक्ष्+नङ्=रक्ष्णः

१४. स्वपो नन् ३।३।९१—स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है।

स्वप्नः—स्वप् धातु से "स्वपो नन्" सूत्र से नन् प्रत्यय, नकार का लोप, प्रतिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य करने पर "स्वप्नः" यह रूप सिद्ध हुआ।

१५. उपसर्गे घोः किः ३।३।९२—उपसर्ग उपपदक घुसंज्ञक धातु से 'कि' प्रत्यय होता है।

प्रधिः—प्र उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से "दाधाघ्वदाप्" इति सूत्र से घुसंज्ञा में "उपसर्गे घोः किः" सूत्र से कि प्रत्यय, ककार का लोप, आर्धधातुक संज्ञा "आतो लोप इटि च" सूत्र से धा के आकार का लोप, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'प्रधिः' यह रूप बना।

उपाधिः—उप+धा+कि=उपाधिः।

१६ स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४—भाव और कर्तृ भिन्न कारक अर्थ में धातु से क्तिन् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में होता है।

करणं-कृतिः—'कृ' धातु से "स्त्रियां क्तिन्" सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय, ककार और नकार का लोप, कित्वात् गुणाभाव, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'कृतिः' यह रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार स्तु+क्तिन् (गुणाभाव और विभक्तिकार्य)=स्तुतिः।

नी+क्तिन=नीतिः।

ख्या+क्तिन्=ख्यातिः। मा+क्तिन्=मितिः (मा के आकार को इत्व)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्था + क्तिन् = स्थितिः, प्री + क्तिन् = प्रीतिः, भी + क्तिन् + भीतिः। च्यु + क्तिन् = च्युतिः, द्रु + क्तिन् = द्रुतिः, नु + क्तिन्, नुतिः, श्रु + क्तिन् = श्रुतिः, धृ + क्तिन् = धृतिः, मृ + क्तिन् = मृतिः, भृ + क्तिन् = भृति, स्मृ + क्तिन् = स्मृतिः, शक् + क्तिन् = शक्तिः, मुच् + क्तिन् = मुक्तिः, वच् + क्तिन् = वक्तिः, भज् + क्तिन् = भक्तिः, भुज् + क्तिन् = भुक्तिः, सृज् + क्तिन् = सृष्टिः, कृत् + क्तिन् = कृतिः, विद् + क्तिन् = वित्तिः, ऋध् + क्तिन् = ऋद्धिः, बुध् + क्तिन् = बुद्धिः, वृध् + क्तिन् = वृद्धिः। शुध् + क्तिन् = शुद्धिः, क्षण् + क्तिन् = क्षतिः, तन् + क्तिन् = ततिः, मन् + क्तिन् = मतिः, आप् + क्तिन् = आप्तिः, गुप् + क्तिन् = गुप्तिः, लभ् + क्तिन् = लब्धिः, कम् + क्तिन् = कान्तिः, क्लम् + क्तिन् = क्लान्तिः, क्षम् + क्तिन् = क्षान्तिः, गम् + क्तिन् = गतिः, श्रम् + क्तिन् = श्रान्तिः, दृश् + क्तिन् = दृष्टिः, तुष् + क्तिन् = तुष्टिः। रुह् + क्तिन् = रूढ़िः।

१७. ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः—'ॠ' धातु तथा ल्वादि धातुओं से पर क्तिन्, निष्ठावद् होता है।

कीर्णिः—'कॄ' धातु से "स्त्रियां क्तिन्" से क्तिन् प्रत्यय, क् और न् का लोप, कित्वात् गुणाभाव "ॠत इद्धातोः" सूत्र से इत्व, "उरण् रपरः" सूत्रसे रपरत्व, "हलिच" सूत्र से दीर्घ करने पर "कीर्त्ति" यह रूप हुआ "ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः" सूत्र से निष्ठावत् भाव, "रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः" सूत्र से तकार के स्थान पर नत्व "रषाभ्यां णो नः समानपदे" सूत्र से नकार को णत्व और विभक्ति कार्य करने पर 'कीर्णिः' यह रूप बना। इसी प्रकार 'गीर्णिः, रूप भी बनता है। लू + क्तिन् = लूति (निष्ठवद्भाव करने पर "ल्वादिभ्यश्च" सूत्र से तकार को नत्व, विभक्ति कार्य) = लूनिः।

पूनिः—पू + क्तिन् = पूति (तकार के स्थान पर नकार, विभक्ति कार्य) = पूनिः।

धू + क्तिन् = धूनिः।

१८ सम्पदादिभ्यः क्विप्—सम्पदादि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग और भाव में 'क्विप्' प्रत्यय होता है।

सम्पत्—सम् पूर्वक पद् धातु से "सम्पदादिभ्यः क्विप्" वार्तिक से क्विप् प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप, प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य करने पर 'सम्पत्' रूप बना। इसी प्रकार आपत् और विपत् रूप भी बनते हैं।

सम् + पद् + क्तिन् = सम्पत्तिः, वि + पद् + क्तिन् = विपत्तिः, आ + पद् + क्तिन् = आपत्तिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ३।३।९७—ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्त्ति शब्दों का निपातन होता है।

२० ज्वरत्वरास्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२१—ज्वर्, त्वर्, स्रिव्, अव् और भव् धातुओं की उपधा और वकार को ऊठ् हो, क्विप् प्रत्यय के परे तथा झलादि अनुनासिकादि प्रत्यय के परे।

जूः—ज्वर् धातु से 'क्विप्' प्रत्यय, क्विप् का सर्वापहारी लोप "ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च" सूत्र से उपधा और वकार को ऊकार करने पर ज्+ऊ+र् इस स्थिति में "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, उकार का लोप, "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से सकार का लोप, रकार का विसर्ग करने पर 'जूः' यह रूप सिद्ध हुआ।

त्वर्+क्विप्=तूः; स्रिव्+क्विप्=स्रूः; अव्+क्विप्=ऊः; भव्+क्विप्=भूः। साधनिका उक्त रूपों की 'जूः' के समान है।

२१ इच्छा ३।३।१०१—इष् धातु से 'इच्छा' निपातन द्वारा सिद्ध होता है।

२२ अ प्रत्ययात् ३।६।१०२—प्रत्ययान्त से स्त्रिङ्ग में 'अ' प्रत्यय होता है। चिकीर्षा—इत्यत्र 'कृ' धातु से सन् प्रत्यय, नकार का लोप, "इको झल्" सूत्र से सन को कित्व "अज्झनगमां सनि" सूत्र से दीर्घ "ऋत इद्धातोः" सूत्र से इत्व, "उरणरपरः" सूत्र से रपरत्व, "हलिच" सूत्र से दीर्घ, "सन्यङोः" सूत्र से द्वित्व, अभ्यास, अभ्यास कार्य करने पर सन् के सकार को षत्व करने पर 'चिकीर्ष' इस स्थिति में "सनाद्यन्ताधातवः" सूत्र से धातु संज्ञा "अप्रत्ययात्" सूत्र से 'अ' प्रत्यय 'अतो लोपः' सूत्र से सन् के अकार का लोप, प्रातिपादिक संज्ञा, विभक्ति कार्य, स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् "हलङ्याब्भ्यः" इत्यादि सूत्र से 'सु' प्रत्ययसु का लोप करने पर 'चिकीर्षा' यह रूप बना है।

आत्मानं पुत्रमिच्छति—इत्यत्र पुत्रकाम्य पद से धातुसंज्ञा करने पर "अप्रत्ययात्" सूत्र से अ प्रत्यय किया "अतोलोपः" सूत्र से काम्यगताकार का लोप, अप्रत्यय का संयोग, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, सु का लोप, टाप् और विभक्ति कार्य करने से 'पुत्रकाम्या' यह रूप बना।

२३ गुरोश्च हलः ३।३।१०३—गुरुमान् हलन्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय होता है।

ईहा—ईह् धातु से "गुरोश्च हलः" सूत्र से अ प्रत्यय किया, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, सु का लोप, स्त्रीत्व विवक्षा में टाप्, सवर्ण दीर्घ करने पर 'ईहा' यहरूप बना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४ ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७—स्त्रीलिङ्ग और भाव में ण्यन्त धातु, आस् धातु और श्रन्थ धातु से युच् प्रत्यय होता है।

'कृ' धातु से "हेतुमति च "सूत्र से णिच् प्रत्यय, णकार और चकार कालोप, 'अचोञ्णिति" सूत्र से वृद्धि और रपरत्व करने पर 'कारि' इत्यत्र "ण्यासश्रन्थो युच्," सूत्र से युच् प्रत्यय, चकार का लोप, "युवोरनाको" सूत्र से 'यु' के स्थान पर अन् किया तो 'कारि+अन्' इस स्थिति में "णेरनिटि" सूत्र से णि लोप, 'कार्+अन्' संयोग, णत्व, टाप् और विभक्ति कार्य करने पर 'कारणा यह रूप बना। इसी प्रकार 'हारणा' भी बनता है।

२५ नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४—नपुंसक और भाव में धातुओं से 'क्त' प्रत्यय होता है।

२६ ल्युट् च ३।३।११५—धातुओं से नपुंसक और भाव धातुओं से 'ल्युट्' प्रत्यय भी होता है।

हसितम्—हस् धातु से "नपुंसके भावे क्तः" सूत्र से 'क्त' प्रत्यय, ककार का लोप, "आर्धं धातुकं शेषः" सूत्र से आर्धं धातुक संज्ञा "आर्धं धातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इडागम, प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, सु के स्थान पर अम्, अकार का पूर्व रूप और संयोग करने पर 'हसितम्' रूप बना। हस् धातु से क्त प्रत्यय के अभाव में ल्युट् करने पर हसनम् रूप बनता है।

२७ पुंसिसंज्ञायां घः प्रायेण ३।३।११८—पुंल्लिङ्ग संज्ञाओं में धातु से करण और अधिकरण अर्थ में 'घ' प्रत्यय होता है।

२८ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६।४।९६—द्विप्रभृति उपसर्गहीन अङ्गावयव 'छाद्' की उपधा को ह्रस्व होता है 'घ' के परे।

दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः इत्यत्र छद् धातु से णिच्, अनुबन्धलोप, उपधा की वृद्धि करने पर 'छादि' "सनाद्यन्ता धातवः" सूत्र से धातु संज्ञा "पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण" सूत्र से "घ" प्रत्यय, इत्संज्ञा और लोप, "णेरनिटि" सूत्र से णिलोप "छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य" सूत्र से उपधा को ह्रस्व, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'दन्तच्छदः" यह रूप सिद्ध हुआ।

आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः—आ+कृ+अ (घ) गुण, रपरत्व, संयोग और विभक्ति कार्य करने पर 'आकरः' यह रूप सिद्ध हुआ।

अवतारः—अव+तृ धातु से "अवेतृस्त्रोर्घञ्" सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय, "आर्धधातुकं शेषः' सूत्र स आर्धधातुक संज्ञा "सार्वधातु कार्धधातुकयोः" सूत्र से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण और रपरत्व 'अत उपधायाः" सूत्र से वृद्धि, विभक्ति कार्य और संयोग करने पर 'अवतारः' यह रूप सिद्ध हुआ।

अवस्तारः—अव + स्तृ + घञ् "अतउपधायाः" सूत्र से वृद्धि, संयोग और विभक्ति कार्य।

२९ हलश्च ३।३।१२१—करण और अधिकरण अर्थ में हलन्त धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है, पुंल्लिङ्ग संज्ञा में।

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः—इत्यत्र रम् धातु से "हलश्च" सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय, अनुबन्धलोप, रम् + अ इस स्थिति में "अत उपधायाः" सूत्र से उपधा की वृद्धि, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप्रत्यय, उकार का लोप, सकार का रेफ और रेफ का विसर्ग करने से 'रामः' यह रूप सिद्ध हुआ।

अपामार्ग :—इत्यत्र अप् + मृज् "हलश्च" सूत्र से घञ् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप "मृजेर्वृद्धिः" इस सूत्र से वृद्धि, "चजोः कुघिण्यतोः" सूत्र से कुत्व, बहुलं दीर्घ करने पर 'अपामार्गः' यह रूप बना।

३०—ईषद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६—दुःखार्थक तथा सुखार्थक ईषदादि उपपद रहने पर धातु से 'खल्' प्रत्यय भाव और कर्म में होता है।

दुष्करः—दुस् + कृ धातु से "ईषद्दुस्सुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषुखल्" सूत्र से खल्, अनुबन्धलोप, गुण, रपरत्व, "इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य" सूत्र से षत्व, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य करने पर 'दुष्करः' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार ईषत्करः, सुकरः आदि रूप सिद्ध होते हैं।

३१ आतोयुच् ३।३।१२८—दुःखार्थक और सुखर्थक ईषदादि उपपद रहने पर आदन्त धातु से युच् प्रत्यय होता है।

सुपानः—सुष्ठु पीयते इति सुपानः; सुपूर्वक पा धातु से "ईषद्दुःसुषु" इत्यादि सूत्र से खल् प्रत्यय इसको बाधकर "आतो युच्" सूत्र से युच् प्रत्यय, चकार का अनुबन्ध, "युवोरनाकौ" सूत्र से यु के स्थान में 'अन्' आदेश किया तो सु + प + अन् दीर्घ, विभक्ति कार्य और संयोग करने पर 'सुपानः' यह रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार दुष्पा + युच् (अन्) = दुष्पानः।

३२ अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८—प्रतिषेधार्थक अलम् तथा 'खलु' उपपदक धातु से भाव में क्त्वा प्रत्यय होता है। इस सूत्र में 'प्राचां' ग्रहण विकल्पार्थक नहीं है, प्रत्युत पूजार्थक है।

अलं + दा "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" सूत्र से क्त्वा प्रत्यय' ककार का लोप "दो दद्घोः" सूत्र से 'दा' के स्थान पर 'दद्' आदेश, "खरिच" सूत्र से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दकार के स्थान पर तकार, संयोग करने पर 'दत्त्वा' इत्यत्र प्रातिपदिक संज्ञा, सु प्रत्यय, "क्त्वातोसुन्कसुनः" सूत्र से अव्यय संज्ञा "अव्ययादाप्सुपः" सूत्र से 'सु' का लोप करने पर 'असंदत्वा' यह रूप सिद्ध हुआ।

पा+क्त्वा ('घुमस्था' इत्यादि सूत्र से आकार को ईकार)=पीत्वा।

३३ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१—समानकर्तृक धात्वर्थों में पूर्वकालिक क्रियावाची धातु से भाव में 'क्त्वा' प्रत्यय होता है।

'भुक्त्वा व्रजति' इत्यत्र भुज् धातु से "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" सूत्र से क्त्वा प्रत्यय, ककार का लोप "चोः कुः" सूत्र से जकार के स्थान पर गकार 'खरि च' सूत्र से गकार को ककार आदेश करने और विभक्ति कार्य करने पर 'भुक्त्वा' यह रूप सिद्ध हुआ।

स्ना+क्त्वा=स्नात्वा।

न क्त्वा सेट।१।२।१८—इट् सहित 'क्त्वा' कित् नहीं होता।

शयित्वा—शीङ्, अनुबन्ध लोप 'शी' धातु से "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" सूत्र से क्त्वा प्रत्यय, ककार का अनुबन्ध लोप, "न क्त्वा सेट्" सूत्र से कित् का निषेध होने से गुण हो गया, आयादेश और विभक्ति कार्य करने पर 'शयित्वा' यह रूप सिद्ध हुआ।

३५ रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६—इवर्ण, उवर्णोपधावाले हलादिरलन्त धातुओं से पर सेट् 'क्त्वा' और 'सन्' विकल्प से होता है।

द्युतित्वा, द्योतित्वा, इत्यत्र 'द्युत्' धातु से "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" सूत्र से क्त्वा' प्रत्यय, ककार का लोप "आर्धधातुकंशेषः" सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा, "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इडागम "रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च" सूत्र से वैकल्पिक कित् होने के कारण, गुण निषेध होने पर द्युतित्वा और "पुगन्तलघूपधस्य च" सूत्र से गुण करने पर 'द्योतित्वा' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार लिखित्वा, लेखित्वा रूप भी बनते हैं।

उदितो वा ७।२।५६—उदित् धातु से परे 'क्त्वा' को विकल्प से इट् होता है।

३६ शमित्वा, शान्त्वा—इत्यत्र शम् धातु से "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" सूत्र से क्त्वा प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप "उदितो वा" सूत्र से वैकल्पात् इडागम "क्त्वातोसुन्" इत्यादि सूत्र से अव्यय संज्ञा और विभक्ति का लोप करने पर शमित्वा और इडागमाभाव में 'शान्त्वा' रूप सिद्ध होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार दिव्+क्त्वा—दिव्+इ+त्वा, गुण करने से देवित्वा, इडागमाभाव में द्यूत्वा।

हित्वा—धा धातु से "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप करने से 'धा+त्वा' इस स्थिति में "दधातेर्हिः" सूत्र से 'धा' के स्थान में 'हि' करने पर, अव्यय होने से, विभक्ति का लोप होने से "हित्वा" रूप बना।

३७ जहातेश्च क्त्वा ७।४।४३—'हा' धातु को 'हि' आदेश होता है, क्त्वा प्रत्यय के परे।

'ओहाक्' धातु के अनुबन्ध का लोप करने पर 'हा' इत्यत्र "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप 'हा+त्वा इस स्थिति में "जहातेश्च क्त्वा" सूत्र से 'हा' के स्थान पर विकल्प से 'हि' करने और अव्यय होने से, विभक्ति का लोप करने पर 'हित्वा' और विकल्पाभाव पक्ष में 'हत्वा' रूप निष्पन्न होते हैं।

३८ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३६—अव्यय पूर्वपदक 'अनञ्' समास में 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' होता है।

३९ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२—पौनः पुन्य अर्थ द्योत्य हो, तो धातु से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं।

४० नित्यवीप्सयोः ८।१।४—पौनः पुन्य और वीप्सा अर्थ द्योत्य होने पर पद को द्वित्व होता है

स्मारं स्मारम्—इत्ययं 'स्मृ' धातु से "आभीक्ष्ण्ये णमुल् च" सूत्र णमुल् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप करने पर 'स्मृ+अम्' इस स्थिति में "अचोञ्णिति" सूत्र से वृद्धि "उरण्रपरः" से रपरत्व करने पर स्मारम्' "नित्यवीप्सयोः" सूत्र से द्वित्व करने पर स्मारं स्मारम् 'पद बना; यहाँ अव्ययत्व होने से विभक्ति का लोप किया गया है। क्त्वा प्रत्यय करने पर 'स्मृत्वा' रूप बनता है और 'नित्य वीप्सयोः' से द्वित्व हो जाता है।

पायं पायम्—पा+णमुल्—पा+अम् ("आतोयुक् चिण्कृतोः" से युक् का आगम, अनुबन्ध लोप, पा+य्+अम्=पायम्—अव्ययत्व विभक्ति लोप करने 'पायं पायम्' द्वित्व होने से बना है। इसी प्रकार भोजम् भोजम्, श्रावम्, श्रावम्, रूप भी णमुल् प्रत्यय के जोड़ने से बनते हैं।

४१ अन्यथैवं कथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७—अन्यथा, कथ एवं इत्थं, उपपद रहते 'कृञ्' धातु से णमुल् प्रत्यय होता है कृञ् के प्रयोग होने पर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यथा+कृ धातु से "अन्यथैवं कथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्" सूत्र से णमुल् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, "अचो ञ्णिति" सूत्र से वृद्धि, अव्यय होने से सु का लोप करने पर 'अन्यथाकारम्' रूप सिद्ध हुआ।

एवं+कृ धातु से "अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्" सूत्र से 'णमुल्, प्रत्यय, अनुबंध का लोप 'एवं+कृ+अम्' इत्यत्र "अचो ञ्णिति" सूत्र से वृद्धि करने और रपरत्व करने पर एवं+कार्+अम्' इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा 'सु' प्रत्यय, अव्यय होने से 'सु' प्रत्यय का लोप करने पर 'एवं कारम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

इत्थं+कृ+णमुल्=इत्थंकारम्।

४२. समासेऽनञ् पूर्वोक्त्वो ल्यप् ७।१।३७—नञ् भिन्न अव्यय-पद के साथ समास होने से पूर्वकालिक क्रियावाचक धातु के आगे ल्यप् होता है। ल् और प् की इत्संज्ञा होती है और 'य' शेष रहता है।

आ+घ्रा+ल्यप्=आघ्राय, आ+दा+ल्यप्=आदाय, वि+धा+ल्यप्=विधाय अपि+धा+ल्यप्=अपिधाय, प्र+स्था=ल्यप्=प्रस्थाय, वि+हा+ल्यप्=विहाय; वि+आ+ख्या+ल्यप्=व्याख्याय; वि+ज्ञा+ल्यप्=विज्ञाय; सम्+त्यज्+ल्यप्=सन्त्यज्य; प्रनि+पत्+ल्यप्=प्रणिपत्य; प्र+आप्+ल्यप्=प्राप्य; प्र+कम्प्+ल्यप्=प्रकम्प्य; आ+रभ्+ल्यप्=आरभ्य; नि+शम्+ल्यप्=निशम्य; वि+श्रम्+ल्यप्=विश्रम्य; आ+सेव्+ल्यप्=आसेव्य; अभि+अस्+ल्यप्=अभ्यस्य; वि+जि+ल्यप्=(ह्रस्वस्य पितिकृति तुक् सूत्र" से तुक् का आगम)=विजित्य; अधि+ई+ल्यप्=अधीत्य (तुक् का आगम); प्र+इ+ल्यप्=प्रेत्य; आ+हन्+ल्यप्=आहत्य (तुक् का आगम); वि+रम्+ल्यप्=विरम्य; प्र+नम्+ल्यप्=प्रणम्य; आ+गम्+ल्यप्=आगम्य, आगत्य; वि+कृ+ल्यप्=विकीर्य्य; वि+तृ+ल्यप्=वितीर्य; वि+चारि+ल्यप्=विचार्य्य; सम्+प्र+धारि+ल्यप्=सम्प्रधार्य; सम्+स्थापि+ल्यप्=संस्थाप्य; उत्+सारि+ल्यप्=उत्सार्य्य; सम्+ग्रह्+ल्यप्=संगृह्य; सम्+र्अपि+ल्यप्=समर्प्य; वि+दारि+ल्यप्=विदार्य; आ+लोचि+ल्यप्=आलोच्य।

संज्ञा शब्दों के अन्तिम वर्ण हैं जिनके आगे कारक लगे रहते हैं (जैसे—भ्याम्, भिस्, भ्यस् आदि)।

—o—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक संस्कृत-व्याकरण

स्वर-सन्धि

स्वर-संधि का तात्पर्य है स्वर सम्बन्धी विकार और उससे उत्पन्न होने वाला मेल। स्वर-संन्धि के बाह्य और अन्तः की दृष्टि से दो भेद हैं। बाह्य सन्धि शब्द और विभक्ति में होती है; —हर+ए=हरे

बाह्य संधि के पाँच भेद निम्न प्रकार हैं—

१. दीर्घ-सन्धि २. गुण-सन्धि ३. वृद्धि-सन्धि
४. पररूप-सन्धि ५. पूर्वरूप-सन्धि

दीर्घ-सन्धि—'अकः सवर्णे दीर्घः' अर्थात् सवर्ण परे रहने पर 'अच्' दीर्घ होते हैं। यथा—

इह	+	अस्ति	=	इहास्ति
त्वा	+	अग्रे	=	त्वाग्रे
वि	+	इदम्	=	वीदम्
सु	+	उक्तम्	=	सूक्तम्

नोट—वेद में 'बहुलं छन्दसि' सूत्र के अनुसार कहां-कहीं दीर्घ-सन्धि नहीं होती और प्रयोग ज्यों के त्यों रह जाते हैं। जैसे—

मनीषा	+	अग्नि	=	मनीषा अग्नि
सु	+	ऊर्ध्वम्	=	सु ऊर्ध्वम्
सु	+	उक्तः	=	सुउक्तः

गुण-सन्धि—लौकिक संस्कृत में 'अदेङ्गुणः' सूत्र से गुण संज्ञा की जाती है और 'आद्गुणः' सूत्र से गुण कर देते हैं, अर्थात् आ+इ मिलकर ए का रूप धारण कर लेते हैं।

वैदिक संस्कृत में भी गुण सन्धि के उदाहरण लौकिक संस्कृत के समान ही हैं, पर 'बहुलं छन्दसि' के अनुसार कहीं-कहीं यह सन्धि भी नहीं होती है। इस सन्धि के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

पिता	+	इव	=	पितेव
गंगा	+	उदकम्	=	गङ्गोदकम्
इह	+	इहा	=	इहेहा
आ	+	इम	=	एम
आ	+	उमा	=	ओमा
सप्त	+	ऋषयः	=	सप्तर्षयः

नोट—वेद में कभी-कभी यह गुण-सन्धि वृद्धि के रूप में भी परिवर्तित हो जाती है—

आ	+	इभिः	=	ऐभिः

वृद्धि-सन्धि—लौकिक संस्कृत में 'वृद्धिरादैच' सूत्र से वृद्धि संज्ञा होकर 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि होती है, अर्थात् आ+ए=ऐ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक संस्कृत में वृद्धि-सन्धि कहीं-कहीं गुण सन्धि में भी परिवर्तित हो जाती है, यथा—

वृद्धि—गङ्गा	+	ओयः	=	गङ्गोयः
तस्मा	+	इक्षि	=	तस्मैक्षि
गुण—सुजीव	+	ओवा	=	सुजीवोवा
उप	+	ऋचति	=	उपर्चति
अ	+	ऋचतु	=	अर्चतु

पररूप सन्धि—'एङि: पररूपम्' सूत्र से आ का पररूप हो जाता है । अपर स्वर के रूप में परिवर्तित हो जाता है—

प्र	+	एजते	=	प्रेजते
उप	+	ओषति	=	उपोषति

'अजभीनं वर्णम् परेण संयोज्यम्' अर्थात् इस संधि में अच् रहित वर्णों का दूसरे वर्ण के साथ संयोग होता है ।

पूर्वरूप सन्धि—'एङ पदान्तादति' अर्थात् पद के अन्त में रहनेवाला अ वर्ण पूर्व स्वर के रूप में परिणत हो जाता है, अर्थात् 'अ' खण्डाकार ऽ हो जाता है, जैसे—

हरे	+	अव	=	हरेऽव

परन्तु वेद में कभी-कभी इस सन्धि का अकार भी देखा जाता है । "प्रकृत्यानिवादमप्यरे" इस नियम के अनुसार यह सन्धि वैदिक प्रयोगों में कहीं-कहीं नहीं होती है ।

जैसे—ते+अवदन्

एवं नियमानुसार तेऽवदन् होना चाहिए था, पर वेद में ते अवदन् प्रयोग ही मिलता है । कहीं-कहीं यह सन्धि अनियमिति भी पाई जाती है ।

व्यंजन-सन्धि

व्यंजन सन्धि के भी बाह्य और अन्तः दो भेद हैं । पूर्वपद में सन्धि के योग्य निम्न वर्ण बताए जाते हैं :—

क, ङ्, ट, त, ञ, प, म और विसर्ग,

इन आठ वर्णों में से ङ् और ट का प्रयोग तो वेद में बहुत कम पाया जाता है, अवशेष छः वर्णों का प्रयोग बहुलता से मिलता है ।

१. Change of quality वर्ण-परिवर्त्तन—इसके अन्तर्गत क, ट, त और प इन चारों का क्रमशः अपने ही वर्ग के तीसरे वर्ण में अर्थात् ग ड द और ब के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में परिवर्त्तन होता है, जबकि पर पद का प्रथम अक्षर कोई स्वर या मृदु व्यंजन सामने हो, यथा—

अर्वाक्	+	राधः	=	अर्वाग्राधः
वाक्	+	ईशः	=	वागीशः
तत्	+	वा	=	तद्वा
जगत्	+	वाजेभिः	=	जगद् वाजेभिः
अप्	+	जः	=	अब्जः
जगत्	+	ईशः	=	जगदीशः

यदि क, ट, त और प के सामने न या म हों, तो वे अपने ही वर्ण में बदल जाते हैं। जैसे—

आसीत्	+	नो	=	आसीन्नो
षट्	+	नवति	=	षण्णवति

२. Change of the position स्थिति-परिवर्त्तन—इस नियम के अनुसार त, न और विसर्ग का परिवर्त्तन होता है। त और न के सामने अगर चवर्ग हो तो ये चवर्गीय हो जाते हैं। जैसे—

तत्	+	चक्षु	=	तच्चक्षु
दातयत्	+	जनः	=	दातयज्जनः
रोहित्	+	श्यावः	=	रोहिच्छ्यावः

३. पूर्वपद के अन्त का न अनुस्वार में बदल जाता है जबकि दूसरे पद का पहला अक्षर स्वर हो और पूर्वपद से पहले दीर्घ आ हो।

महान्	+	इन्द्रः	=	महाँ इन्द्रः
देवान्	+	अच्छा	=	देवाँ अच्छा

'दार्घादति समानपदे' और 'आतो इटि नित्यम्' इन दो सूत्रों से उक्त पद सिद्ध होते हैं।

(२) यदि सामने चवर्ग हो तो अन्तिम 'न' को ञ और अनुस्वार हो जाता है।

जैसे—उद्धवा।+चरथाय=उद्धवाँचरथाय

(३) अन्तिम (न्) बदलता नहीं है, अगर सामने त हो तो।

जैसे—त्वावान्+तमन्न=त्वावान्तमन्न

(४) अन्तिम 'न्' का अनुस्वार हो जाना है यदि सामने 'ल' हो।

जसे—जिगीवान्+लक्षम्=जिगीवाँलक्षम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिम 'म' (१) पहले पद का अन्तिम 'म' सामने स्वर आने पर नहीं बदलता है और स्वर-सन्धि हो जाती है।

जैसे—अग्निम्+ईले=अग्निमीले

(२) अन्तिम 'म' को अनुस्वार हो जाता है सामने 'य र ल व' और श ष स ह हो तो; जैसे—होतारम्+रत्नधातमम्=होतारं रत्नधातमम्।

(४) पहले पद के अन्तिम 'म्' का यदि अगले पद का कोई स्वर हो तो उसी वर्ग का अन्तिम वर्ण हो जाता है तथा उस वर्ग का अक्षर सामने हो ता. भी; यथा--भद्रम्+करिष्यसि=भद्रङ्करिष्यसि

अन्तिम विसर्ग (:)—(१) क् ख् प् फ् यदि परे हो तो पूर्वपद के विसर्ग का क्रमशः विकल्प से जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय हो जाते हैं।

यथा—विष्णोः+कर्माणि=विष्णो⁀कर्माणि या विष्णोः कर्माणि

नॄन्+पाही=नॄँ पाही नॄँः पाही

(२) विसर्ग (:) के परे श रहने पर कभी तो विसर्ग ही बना रहता है और कभी-कभी सिवर्ग का श हो जाता है—हरिः+शेते=हरिश्शेते, हरिःशेते।

(२) स्वरों के सामने रहने पर विसर्ग का र हो जाता है। जैसे—ऋषिभिः+ईड्यः=ऋषिभिरीड्यः।

(४) 'अ' के अलावा दूसरे स्वरों के सामने रहने पर कहीं-कहीं विसर्ग का लोप भी हो जाता है। जैसे—सः+आगच्छति=स आगच्छति।

(५) एषः के परे यदि 'य' को छोड़ कर और कोई व्यंजन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

जैसे—एषः+बालः—एष बालः।

परन्तु 'य' के रहते हुए नहीं होता।

जैसे—एषः+युतते।

मुख्य रूप से संस्कृत के अधिकांश शब्द धातुअ से निष्पन्न हुए हैं। धातुओं में कृदन्त या तद्धित प्रत्यय लगाने पर वे शब्द बन जाते हैं। शब्द रूपों को प्रधानतः हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. Noun संज्ञा शब्द रूप।

२. Pronoun सर्वनाम शब्द रूप।

३. Numersl संख्यावाची शब्द रूप।

विशेषण शब्द रूप भी अलग से गिनाये जा सकते हैं, परन्तु संज्ञा शब्द रूपों में ही उनका अन्तर्भाव हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक व्याकरण में तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक होते हैं। पाणिनि ने अपने व्याकरण में छः कारक माने हैं—

1. Nominative—कर्त्ता
2. Vocative—सम्बोधन
3. Accusative—कर्मकारक
4. Intrumental—करण
5. Dative—सम्प्रदान
6 Ablative—अपादान
7. Genitive—सम्बन्ध
8. Locative—अधिकरण

वैदिक काल में संस्कृत बोलचाल का भाषा थी। अतः विभक्तियों के रूपों में एक ही विभक्ति के दो तीन रूप भी मिलते हैं।

जैसे—राम शब्द के प्रथमा के बहुवचन में - रामाः और और रामासः ये दो रूप उपलब्ध है।

इसी तरह तृतीया के एकवचन में—रामेण, रामा ये दो रूप और बहुवचन में—रामैः तथा रामेभिः इत्यादि।

इस प्रकार वैदिक शब्द रूपों में और लौकिक संस्कृत के शब्द रूपों में जो भेद उपलब्ध है वह निम्नलिखित सूत्रों से सिद्ध होता है—

१. 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेक वचनम्'
२. विशाखयोश्च
३. षष्ठी युक्तः छन्दसि वा
४. छन्दसि बहुलम्

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिनमें परिवर्त्तन किया जा सकता है, उन्हें स्त्रीलिंग, पुंल्लिग आदि में बदला जा सकता है और कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो सदा एक रूप रहते हैं। कुछ शब्दों के रूप नियमित होते हैं और शब्दों के रूपों में कहीं-कहीं अनियमितता आ जाती है।

अकारान्त शब्दों की विशेषताएँ

१. प्रथमा विभक्ति और द्वितीय विभक्ति के द्विवचन में—देवा, देवौ

'सुपाम्, सुलुक्' सूत्र से प्रत्यय औ, का लोप हो जाता है और लोप होने पर भी दीर्घ हो जाता है।

२. प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में देवा, और देवासः ये दो रूप बनते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. तृतीया विभक्ति के एकवचन में देवेन और देवा, अश्वेन और अश्वा, रामेण और रामा आदि।

४. तृतीया के बहुवचन में देवेभिः और देवैः ये दो रूप बनते हैं। (बहुलम् छन्दसि) सूत्र ही यहाँ प्रमाण है।

५. प्रथमा व द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में विश्व शब्द के विश्वे और विश्व ये दो रूप बनते हैं।

६. प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में विश्वानि, विश्वा और विश्व ये तीन रूप सिद्ध होते हैं।

विश्वानि और विश्व ये रूप तो "छन्दसि बहुलम्" सूत्र के अनुसार बनते हैं, तथा विश्व रूप 'व्यक्तयोर्बहुलम्' सूत्र के आधार पर निष्पन्न होता है।

अकारान्त प्रिय (पुंल्लिङ्ग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता—	प्रियः	प्रियौ, प्रिया	प्रियाः, प्रियासः
कर्म—	प्रियम्	प्रियौ, प्रिया	प्रियान्
करण—	प्रियेण	प्रियाभ्याम्	प्रियैः, प्रियेभिः
सम्प्रदान—	प्रियाय	,,	प्रियेभ्यः
अपादान—	प्रियात्	,,	,,
सम्बन्ध—	प्रियस्य	प्रियोः, प्रिययोः,	प्रियाणाम्
अधिकरण—	प्रिये	प्रियोः, प्रिययोः,	प्रियेषु
सम्बोधन—	हे प्रिय	हे प्रियौ	हे प्रियाः

आकारान्त प्रिया शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रिया	प्रिये	प्रियाः
द्वि०	प्रियाम्	प्रिये	प्रियासः
तृ०	प्रियया, प्रिया	प्रियाभ्याम्	प्रियाभिः
च०	प्रियायै	,,	प्रियाभ्यः
पं०	प्रियायाः	,,	प्रियाभ्यः
ष०	प्रियायाः	प्रिययोः	प्रियानाम्
स०	प्रियायाम्	प्रिययोः	प्रियासु
सम्बो०	हे प्रिये	हे प्रिये	हे प्रियाः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रियम् (नपुंसक लिंग)

प्रियम्	प्रिये	प्रियानि, प्रिया

ह्रस्व इकारान्त शब्दों की विशेषताएँ

अग्नि

१. अग्नि शब्द के प्रथमा के द्विवचन में अग्नि और अग्ना बनते हैं।

२. प्रथमा के बहुवचन मे, अग्नयः, अगनयः

३. तृतीया के एकवचन में अग्निना और अग्नना ये दो रूप बनेंगे।

४. सप्तमी के एकवचन में अग्नौ और अग्ना ये रूप बनते हैं।

इकारान्त अग्नि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अग्नि	अग्नी, अग्ना	अग्नयः, अगनयः
द्वि०	अग्निम्	अग्नी, अग्ना	अग्नयः
तृ०	अग्निना, अग्न्या	अग्निभ्याम्	अग्निभिः
च०	अग्नये	,,	अग्निभ्यः
पं०	अग्नेः, अग्नये	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः
ष०	अग्नेः, अग्नये	अग्नयोः	अग्निनाम्
स०	अग्नौ, अग्ना	अग्नयोः	अग्निषु

ईकारान्त देवी शब्द

१. प्रथमा के द्विवचन में देव्यौ और देवी ये दो रूप बनते हैं।

२. प्रथमा के बहुवचन में देव्यः और देवी दो रूप बनेंगे।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	देवी	देव्यौ, देवी	देव्यः, देवीः
द्वि०	देवीम्	देव्यौ, देवी	देवीः
तृ०	देव्या	देवीभ्याम्	देवीभिः
च०	देव्यै	देवीभ्याम्	देवीभ्यः
पं०	देव्याः	देवीभ्याम्	देवीभ्यः
ष०	देव्याः	देव्योः	देवीनाम्
स०	देव्याम्	देव्योः	देवीषु
सम्बो०	हे देवि	हे देव्यौ, देवी	हे देवीः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उकारान्त तनु-शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तनुः	तनू	तनवः, तन्वः
द्वि०	तनुम्	तनू	तन्वः
तृ०	तन्वा	तनुभ्याम्	तनुभिः
च०	तन्वे	तनुभ्याम्	तनुभ्यः
पं०	तन्वः	तनुभ्याम्	तनूभ्यः
ष०	तन्वः	तन्वोः	तनुनाम्
स०	तन्वी	तन्वोः	तनुषु

ऋकारान्त दातृ-शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दाता	दातारौ, दातारा,	दातारः
द्वि०	दातारम्	दातारौ, दातारा	दातृन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
च०	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
पं०	दातुः	,,	दातृभ्यः
ष०	दातुः	दात्रोः	दातृणाम्
स०	दातरि	दात्रोः	दातृषु
सम्बो०	हे दाता	हे दातारौ	हे दातारः

युष्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	त्वम्	युवाम्, वाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्	युवाम्, वाम्	युष्मान्
तृ०	त्वया, त्वा	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
पं०	त्वद्	,,	युवद्
ष०	तव	युवयोः युवोरुः,	युष्माकम्
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्, मह्या	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पं०	मद्	"	अस्मद्
ष०	मम	आवयोः	अस्माकम्
स०	मयि	आवयोः	अस्मे, अस्मासु

तत् (पुँल्लिंग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सः	तौ, ता	ते
द्वि०	तम्	तौ, ता	ताम्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तेभिः
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं०	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु

स्त्रीलिंग तत्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सा	ते	ता
द्वि०	ताम्	ते	ता
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	"	ताभ्यः
पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	तयाः	तासु

नपुंसक लिंग तत्

प्र०	तद्	ते	ता, तानि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाक्

प्र०	वाक्	वाचा, वाचौ	वाचः
द्वि०	वाचम्	" "	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	"	वक्षु

भू-धातु लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः, भवामसि

लङ् लकार (Imperfect)

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

लोट् लकार (Imperative)

इसमें केवल अन्य पुरुष और मध्यम पुरुष के रूप भिन्न हैं, वेद में उत्तम पुरुष (Subjunctive mood) के अनुसार होता है।

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव, भवतात्	भवतम्	भवत

लेट् लकार (Subjunctive mood)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवाति, भवात्	भवातः	भवान्ति
म० पु०	भवासि, भवास्	भवाथः	भवाथ
उ० पु०	भवानि, भवा	भवावः	भवामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इण् (गतौ) धातु

(Present) लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एति	इतः	यन्ति
म० पु०	एसि	इथः	इथन्, इथ
उ० पु०	एमि	इवः	एमसि, इमः

(Imperfect) लङ् लकार

प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन्, अयन्
म० पु०	ऐः	एतम्	एत
उ० पु०	आयम्	ऐव, ऐतम्	ऐम

(Imperative) लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	एतु	ईताम्	यन्तु
म० पु०	इहि	इतम्	इत

उत्तम पु० लेट् लकार के अनुसार

विधिलिङ् + लोट् लकार (Subjunctive Mood)

प्र० पु०	अयात्, अयाति	अयातः	अयान्
म० पु०	अयाः अयासद्	अयाथः	अयाथ
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम्

(Optative) विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	ईयुः
म० पु०	इयः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

ब्रूञ्–धातु

(Present) लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रूते, ब्रुवे	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूसे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(Imperfect) लङ् लकार

प्र० पु०	अब्रून्	अब्रुवताम्	अब्रुवन्
म० पु०	अब्रूथ	अब्रूवाथाम्	अब्रुध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

(Imperative) लोट् लकार

प्र० पु०	ब्रुवाम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूद्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्

(Subjunctive mood) लेट् लकार

प्र० पु०	ब्रुवते	ब्रूवैते	ब्रूवन्त
म० पु०	ब्रुवसे	ब्रुवैथे	ब्रुवैध्वे
उ० पु०	ब्रुवै	ब्रुवावहै	ब्रुवामहै

(Optative) विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथ	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

कृञ्-धातु—करना

(Present) लट् लकार

प्र० पु०	कृणोति	कृणुतः	कृण्वन्ति
म० पु०	कृणोसि	कृणुथः	कृणुथ
उ० पु०	कृणोमि	कृण्वः	कृण्मः, कृण्मसि

(Imperfect) लङ्

प्र० पु०	अकृणोत्	अकृणुताम्	अकृण्वन्
म० पु०	अकृणोः	अकृणुतम्	अकृणुत
उ० पु०	अकृण्वम्	अकृण्व:	अकृण्मः

(Imperative) लोट् लकार

प्र० पु०	कृणोतु	कृणुताम्	कृण्वन्तु, कृणोतन्
म० पु०	कृणु, कृणुतात्, कृणुहि, कृणुतम्		कृणुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(Subjunctive) mood लेट् लकार

प्र० पु०	कृणवत्	कृणवतः	कृणवन्
म० पु०	कृणवः	कृणवथः	कृणवथा
उ० पु०	कृणवानि, कृणवः	कृणवावः	कृणवामः

(Optative) विधिलिङ

प्र० पु०	कृणुयात्	कृणुयताम्	कृणुयुः
म० पु०	कृणुय	कृणुयतम्	कृणुयत
उ० पु०	कृणुयाम्	कृणुयाव	कृणुयाम

Injunctive mood

लौकिक व्याकरण में इच्छा, आदेश, प्रार्थना और विधि का भाव प्रदर्शित करने के लिए विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है। पर वेद में इन्हीं भावों के साथ क्रिया के मूल रूप को अभिव्यक्त करने के लिए Injunctive mood का प्रयोग होता है। वैदिक व्याकरण में Subjunctive mood और Injunctive mood के अर्थ भेद का पृथक्करण बहुत कठिन है; यद्यपि साधनिका काल में Subjunctive mood में अडागम होता है। कुछ वैयाकरणों का मत है कि Subjunctive mood रूपों के पूर्व अडागम कर देने से Injuctive mood के रूप बन जाते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि लङ् लकार के रूपों से अडागम हटा देने पर Injunctive mood के रूप होते हैं। पाणिनि ने यद्यपि Injunctive mood को पृथक् रूप से नहीं कहा है किन्तु विधिलिङ् द्वारा इस Mood के अर्थ को खींच लिया है। संक्षेप में हम इतना ही कह सकते हैं कि लङ्लकार के रूपों में से अडागम हटा देने पर जो रूप अवशेष रहे वह Injunctive mood है।

Infinative तुमुन्

पाणिनि के पश्चात् और पूर्ववर्त्ती सभी विद्वानों के अनुसार तुमुनन्त वे शब्द हैं, जिनके अब पूरे रूप सब विभक्तियों में नहीं मिलते हैं। एक समय था जब इनके रूप पूरी विभक्तियों और वचनों में मिलते थे।

पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों में तुमनन्त शब्दों के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। प्रथम हम पाणिनि के अनुसार तुमनन्त रूपों का विवेचन करेंगे, अनन्तर मेकडॉनल और विन्टरनिट्ज के अनुसार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाणिनि के अनुसार यह सर्वविदित है कि संस्कृत भाषा के सभी शब्द धातुओं से निष्पन्न होते हैं।

धातुओं में कृत् और तद्धित प्रत्यय जोड़ कर संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण वाचक शब्द बनाये जाते हैं।

जो शब्द कृत् प्रत्यय लगाकर बनते हैं वे दो प्रकार के हैं, प्रथम वे जिनके रूप चलते हैं अर्थात् (declinable) और दूसरे वे जिनके रूप नहीं चलते अर्थात् (Undeclinable) तुमुन् के लिए निम्नसूत्र स्मरणीय हैं—

१. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायाम् क्रियार्थायाम् समानकर्तृकेषु तुमुन्—

२. इच्छार्थेषु एककर्तृकेषु धातोस्तुमुन् स्यात्—इच्छार्थक जहाँ एक एक कर्ता हो वहाँ धातु से तुमुन् होता है। जैसे—इच्छसि भोक्तुम्।

३. शक्तिधृषज्ञानाघटरमलभक्रमकमसंहारहास्यतकेषु तुमुन्—

४. पर्याप्तिवचनेषु अलमर्थेषु तुमुन्—जैसे, अलम् भोक्तुम्।

५. कालसमयवेलासु तुमुन्—काल, समय और वेला शब्दों से तुमुन् प्रत्यय होता है।

लौकिक संस्कृत का तुमुन् प्रत्यय ही वेद में तुमुन् है। इस अर्थ में वेद में निम्न प्रत्यय भी आते हैं।

तुमुन् अर्थ में—से, सेन, असेन, कसे, कसेन, ध्यै, अध्यै, कध्यै, सध्यै, तवेङ्, तवेन आदि।

से	वक्षसे, दयसे
सेन	जीवसेन
ध्वै	मादयध्वै
ध्यै	पिबध्यै
तवेङ्	सूतवे
तवेन	कर्त्तवे

इसके अतिरिक्त और भी शब्द तुमुन् अर्थ में प्रयुक्त मिलते हैं—

प्रियै	प्रयातुम्
रोहिण्यै	रोढुम्
अव्यथिष्यै	अव्यथितुम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृशे विख्ये च—

दृशे	द्रष्टुम्
विख्ये	विख्यातुम्

पाश्चात्य विद्वान् मैकडॉनल के अनुसार तुमुन् उन प्राचीन शब्द रूपों का अवशेष है, जो शब्द सभी विभक्तियों और वाक्यों में मिलते थे, किन्तु समय की गति से आज केवल चतुर्थी के अर्थवाला ही रूप अवशेष रह गया है बाकी सब रूप लुप्त हो गये हैं।

वेद का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि तुमुनार्थक कई शब्द प्रचलित थे। मैकडॉनल ने पाँच प्राचीन रूपों को प्रस्तुत किया है।

द्वितीया तुमुन्	असदन् एमिध्यम्
तृतीया "	
चतुर्थी "	इधे, प्रच्छे
पंचमी तुमुन्	विलिखः, निमिषः, अतृदः
सप्तमी तुमुन्	समचक्षसि

हम पाश्चात्य विद्वानों के इस मत से सहमत हैं कि एक समय ऐसा अवश्य था जब सब विभक्तियों और सब वचनों में तुमुन् के रूप व्यवहृत होते थे। उदाहरण के लिए यष्टुम् शब्द को ले लीजिए इसकी रूपानली द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी में उपलब्ध होती है। पाणिनि ने ऐसे ही तुमुनन्त शब्दों को स्वीकार किया है, जिनकी रूपावली नहीं चलती।

भाषा-शास्त्र का यह नियम है कि व्याकरणाचार्य के हाथों में जाने पर भाषा बंध जाती है और वह रूढिग्रस्त हो जाती है।

(Gerund) क्त्वा प्रत्यय

मैकडॉनल ने क्त्वा प्रत्यय के लिए (gerund) शब्द का प्रयोग किया है। इसे पूर्वकालिक क्रिया कहा है।

वेद में क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर तीन प्रत्यय हैं।

क्त्य, कत्वा, क्त्वाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन तीनों प्रत्ययों का व्यवहार पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में होता है। मैकडॉनल ने वैदिक व्याकरण में विस्तार से इन तीन प्रत्ययों को छः कर दिया है।

१.	क्त्वा	गत्वा, भुक्त्वा
२.	त्वाय	गत्वाय
३.	त्वीनम्	इष्ट्वीनम्
४.	त्वी	स्नात्वी
५.	त्य	निहत्य
६.	य	आदाय

पाणिनि के अनुसार वैदिक व्याकरण में भी त्वा और ण्वुल् ये दो प्रत्यय होते हैं, पर मैकडॉनल ने अन्वेषण कर उपर्युक्त ६ प्रत्ययों का पता लगाया है।

शतृ और शानच्

वर्तमान काल का बोध कराने के लिए शतृ और शानच् प्रत्यय भी आते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं में और शानच् प्रत्यय आत्मनेपदी पदी धातुओं में लगता है। वेद में इन दोनों प्रत्ययों का व्यवहार लोक के समान ही हुआ है।

नोट—शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं में लगता है और शानच आत्मनेपदी धातुओं में। जैसे—गम्+शतृ=गच्छन्, पचन् आदि।

सेव्+शानच्=सेवमान, वर्धमान

इन दोनों प्रत्ययों के रूप सब विभक्तियों और सब वचनों में होते हैं।

लेट् लकार (Subjunctive mood)

लेट् लकार को हम तीन भागों में विभक्त करके अवगत कर सकते हैं।

1. प्रयोग (Usage)
2. बनावट (Formation)
3. स्वभाव (Nature of the Subject)

1. आधुनिक क्रियाओं के रूप समय और काल को स्पष्टतया व्यक्त करते हैं। जैसे-गच्छति, पचति आदि से वर्तमान का बोध होता है। अगच्छत्, अपचत् आदि से भूतकाल का बोध होता है। परन्तु वेद में समय को व्यक्त करने के लिए कोई विशेष नियम नहीं है। हम पाणिनि के निम्न सूत्र में पाते हैं—

छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्वकालेषु

अर्थात् लुङ्, लङ् और लिट् लकारों के रूपों को वर्तमान, भूत और विधि इन तीनों कालों में प्रयुक्त किया जाता था, इससे स्पष्ट है कि वेद में लकारों के विषय में समय को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेट् लकार का प्रयोग वेद में विधि के अर्थ में होता है। 'लिङर्थे लेट्' इस सूत्र से प्रमाणित होता है कि लेट् का प्रयोग लिङ् के अर्थ में भी होता है। विधिलिङ् से वह कर्त्ता की इच्छा को प्रकट करता था। जहाँ विधिलिङ् केवल संभावना व्यक्त करता है और कार्य केवल कर्त्ता की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है वहाँ लेट् लकार कर्त्ता की खास इच्छा कारक है।

जैसे—'यजेत् स्वर्गकामः' में यजेत् शब्द कर्त्ता के लिए यज्ञ की प्रेरणा करता है। यज्ञ न करने पर उसके लिए प्रत्यवाय का संकेत करता है। वैदिक लेट् लकार शंका और उपसंवाद के भी अर्थ में आता है।

बनावट (Formation)—लेट् लकार समस्त कालों के अर्थों का द्योतक है, अतः उसकी बनावट को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) वर्त्तमान आधार लट्
(ख) अनद्यतन भूत
(ग) लुङ् (Aorist)

वर्त्तमान आधार में बनावट निम्न प्रकार होती है।

जैसे—भू+शप्+ति=भवति

ग्रन्थ के सन्दर्भ के देखे बिना इस बात का पता लगाना कि यह भवति रूप लट् का है या लेट् का यह सम्भव नहीं।

(ख) अडागम लगाने से भी भवति रूप सिद्ध होता।

यथा—

भवति	भवतः	भवान्
भवासि	भवाथः	भवाथ
भवानि	भवाव	भवाम

इस लेट् लकार के रूपों का भी सम्यक् परिज्ञान बिना ग्रन्थ सन्दर्भ के नहीं हो सकता।

'इतश्चः लोपः' सूत्र के अनुसार इ का लाप कर देने पर लेट् लकार के रूप निम्न प्रकार होंगे—

(१) भवत्	(६) भवीषात्
(२) भवात्	(७) भाविषति
(३) भविषति	(८) भविषत्
(४) भविषाति	(९) भाविषत्
(५) भविषत्	(१०) भविषात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Aorist—लुङ् लकार के आधार पर

लुङ् लकार के आधार पर हम धातुओं को तीन प्रकार से अवगत कर सकते हैं।

कृ	=	किरति
दृश्	=	दर्शति
दा	=	दाति

(२) द्वित्व करने पर Subjunctitive mood के रूप बनते हैं। जैसे—तित्पास

जब कि वेद में उक्त दोनों ही अर्थों में लेट् लकार का प्रयोग देखा जाता है। वास्तव में लेट् लकार इच्छा और प्रेरणा को व्यक्त करता है।

वाच्य-परिवर्तन (Change of voice)

क्रिया के प्रयोग से वाच्य तीन प्रकार के होते हैं—

कर्तृवाच्य
कर्मवाच्य
भाववाच्य

जब क्रिया का संबंध कर्त्ता के साथ रहता है, तो वाक्य कर्तृवाच्य कहलाते हैं। जैसे—देवदत्तः धनम् अधिगच्छति, रामः ग्रामम् गच्छति, आदि।

यहाँ अधिगच्छति या गच्छति क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता के साथ है। क्योंकि एकवचन में है और क्रिया भी एकवचन है। यदि यहाँ कर्त्ता को द्विवचन कर दिया जाय या बहुवचन कर दिया जाय तो क्रिया को भी उसी प्रकार रखना होगा। कर्तृवाच्य में कर्त्ता को प्रथमान्त और कर्म को द्वितीयान्त रखा जाता है।

कर्मवाच्य—जब क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता के साथ न होकर कर्म के साथ हो, तो वाक्य कर्मवाच्य कहलाता है।

जैसे—रामेण राक्षसः हतः।

यहाँ राक्षस कर्म एक वचन है, अतः क्रिया भी एक वचन है। यदि राक्षस को द्विवचन या बहुवचन कर दिया जाय तो क्रिया को भी द्विवचन या बहुवचन कर दिया जायगा।

कर्मवाच्य प्रयोग में कर्त्ता तृतीया और कर्म प्रथमान्त होता है तथा क्रिया का वचन कर्म के अनुसार रहता है।

भाववाच्य (Impersonal voice) जब वाक्य में क्रिया का सम्बन्ध न तो कर्त्ता से हो न कर्म से तब क्रिया भाववाच्य कहलाती है। जैसे—'तेन गम्यते' (उससे जाया जाता है) यहाँ गम्यते का सम्बन्ध तेन कर्त्ता के साथ नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मवाच्य और भाववाच्य प्रयोगों में आत्मनेपद की क्रियाएँ लिखी जाती हैं। कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने के नियम –

१—सार्वधातुक धातु

२—असार्वधातुक धातु

१. धातु के सार्वधातुक होने पर कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने में प्रत्येक धातु से परे 'य' विकर्ण लगाया जाता है। जैसे—पठ् धातु में 'य' विकर्ण जोड़ देंगे तो बनेगा—पठ्यते

२. य परे रहने पर पूर्व इ हो जाता है।

३. कहीं-कहीं दीर्घ हो जाता है।

४. ह्रस्व ऋ को 'रि' में परिवर्तित किया जाता है, तथा ॠ के स्थान पर ईर आदेश रहता है। यथा—

जि = जीयते

श्रु = श्रूयते

कृ = क्रियते

स्तॄ=(ढकना)—स्तीर्यते

५. कुछ अकारान्त धातुओं के अंतिम अ का ई हो जाता है।

स्था+य+ते=स्थीयते

दा = दीयते

गा = गीयते

माङ् = मीयते

६. यदि धातु का संयुक्त वर्ण अनुनासिक हो तो अनुनासिक का लोप होता है, जैसे—

भज्	+	य	+	ते	=	भज्यते
बध्	+	य	+	ते	=	बध्यते
रज्.	+	य	+	ते	=	रज्यते

७. धातुओं में य का इ तथा व का उ हो जाता है। जैसे—

यज्	+	य	+	ते	=	इज्यते
वच्	+	य	+	ते	=	उच्यते
स्वप्	+	य	+	ते	=	सुप्यते

वेद में वाच्य परिवर्तन के अधिकांश नियम प्रायः लौकिक संस्कृत के समान ही आये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौकिक संस्कृत में कर्त्तरि प्रयोगों को कर्मणि प्रयोग बनाने के लिए प्रथमान्त कर्त्ता को तृतीयान्त कर्त्ता, द्वितीयान्त कर्म को प्रथमान्त कर्म और कर्त्ता के अनुसार चली आई क्रिया को आत्मनेपद में कर्म के वचन के अनुसार बना देना होता है। यथा—

स अग्निष्टोमम् यजति

इस कर्त्तरि प्रयोग का 'तेन अग्निष्टोमः इज्यते' कर्मणि प्रयोग होगा। भावी प्रयोग में 'तेन इज्यते' इतना लिखा जायगा।

कारक

वैदिक भाषा का कारक लौकिक संस्कृत के समान पेचीदा और जटिल नहीं है। 'बहुलं छन्दसि' के आधार पर किसी अर्थ में कोई भी विभक्ति हो सकती है। पाणिनि ने अपनी वैदिकी प्रक्रिया में कारक विधायक कतिपय सूत्रों का ही निर्देश किया है। मैकडॉनल ने विभक्ति अर्थ का नियमन कई अनुच्छेदों में किया है। यहाँ पर मात्र विशेषताओं का ही निरूपण किया जायगा।

१. तृतीया च होश्छन्दसि २।३।३—हु धातु के कर्म में द्वितीया और तृतीया दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति।

२. द्वितीया ब्राह्मणे २।३।६०—ब्राह्मण का प्रयोग होने पर दिव् धातु के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यह सूत्र षष्ठी का अपवाद करता है। यथा—

गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः।

३. चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि २।३।६२—चतुर्थी के अर्थ में विकल्प से ही षष्ठी विभक्ति होती है। यथा -

'पुरुषमृगश्चद्रमसे गोधाकालकादार्वाघांटस्ते वनस्पतीनाम्'। यहाँ वनस्पतिभ्य के स्थान पर वनस्पतीनाम् का प्रयोग हुआ है।

४. षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वाच्या (वा०)—षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः।

५. यजेश्च करणे २।३।६३—यज् धातु के योग में तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

घृतस्य घृतेन वा यजते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Compounds (समास)

साधारण नियम के अनुसार समास में कई शब्द सहज रूप में परस्पर मिल जाते हैं। एक समस्यन्त पद में यह अभिव्यक्त करने की क्षमता रहती है कि उनके भिन्न-भिन्न पदों में क्या सम्बन्ध है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में ही नहीं प्रत्युत वैदिक साहित्य में भी समासबद्ध रचना की बहुलता है। समास का प्रादुर्भाव वैदिक साहित्य में उस समय हुआ जबकि भारतीयों का अन्य पश्चिमीय जातियों से परिचय भी नहीं हुआ था। वैदिक भाषा में दो से अधिक शब्दों को जोड़ने की और उन्हें एक शब्द के रूप में व्यवहार करने की क्षमता विद्यमान है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में हमें कठिनता से केवल तीन पदों के समास मिलते हैं, वे भी कहीं-कहीं।

जैसे—पूर्व-काम-कृतवान् (fulfilling former wishes) समस्यन्त पद की एक यह भी विशेषता है कि इसमें उच्चारण का एकीकरण हो जाता है। कुछ अपवादों को छोड़कर समस्यन्त पदों का लिंग उसके अन्तिम पद का ही अनुसरण करता है। इन पदों का वचन उसके अर्थ के अनुसार ही होता है।

Classification of compounds समास का वर्गीकरण—मुख्यत: वैदिक समास का तीन विभिन्न श्रेणियों में विभाजन किया जा सकता है।

1. Co-ordinatives—द्वन्द्व
2. Determinatives—तत्पुरुष
3. Possessives—बहुव्रीहि

   वैदिक समास का एक विस्तृत वर्गीकरण करने के लिए इसके तीन और विभाग किये जा सकते हैं—

4. Governing Compounds—अनुशासित अव्ययीभाव समास
5. Syntactical Compounds—वाक्यविन्यास सम्बन्धी समास
6. Iteratives—द्विरुक्त समास

1. Co-Ordinative Compounds

(द्वन्द्व समास[१])

द्वन्द्व समास दो या दो से अधिक संज्ञा शब्दों में होता है। इन शब्दों को 'च' शब्द से परस्पर समन्वित किया जाता है।

१—बाद के संस्कृत वैयाकरणों ने इसे द्वन्द्व समास का नाम दिया जिसका अर्थ है युगल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौकिक संस्कृत में कहा भी है "चार्थे द्वन्द्वः" अर्थात् च के अर्थ में द्वन्द्व समास होता है।

१. देवताद्वन्द्वे च ७।३।२१—ऋग्वेद में अनेक शब्द-समूह (प्रायः देवताओं के नाम वाले) ऐसे हैं जिनके रूप में द्वन्द्व है और उनके उच्चारण में भी एक प्रकार की पृथक्ता है।

जैसे—मित्रवरुणौ, मातर-पितारा, द्यावा-पृथिवी,

देवतावाची द्वन्द्व समास में पूर्वपद को आनङ् आदेश होता है। यथा—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता, इन्द्रा वृहस्पति।

देवताद्वन्द्वे उभयत्र वायोः प्रतिषेधः (वा०)—देवतावाची द्वन्द्व समास में वायु में आनङादेश का निषेध किया गया है। यथा—

अग्निवायूः, वाय्वग्नी।

ब्रह्मप्रजापत्यादीनां च (वा०) ब्रह्म और प्रजापति शब्दों में भी आनङादेश का निषेध किया गया है। तथा—

ब्रह्मप्रजापती, शिववैश्रवणौ, स्कन्दविशाखौ।

२. पितरा मातरा च छन्दसि ६।३।३३—द्वन्द्व-समास में पितरा और मातरा शब्द का निपात होता है। यथा—

आ मा गन्तां पितरामातरा च।

१. द्वन्द्व समास में विशेषणों का समावेश भी यत्र-तत्र देखा जाता है। यथा—

(क) रंग का वर्णन करने में—नील-लोहितम्।

(ख) विपरीत गुणों के सन्निवेश में—उत्कूल-निकूलः।

(ग) किसी विशेष वस्तु को बतलाने में—पादाभ्यां—दक्षिण-सव्याभ्याम्।

३. प्राचीन द्वन्द्व में एक ही शब्द द्वारा दो का भाव व्यक्त किया जाता था। यथा—

द्यावा—स्वर्ग और पृथिवी, मित्रा—मित्र और वरुण, पितारा+पिता और माता, मातरा—माता और पिता।

(Determinatives) तत्पुरुष समास

१. तत्पुरुष समास की प्रक्रिया वैदिक भाषा में लौकिक संस्कृत की अपेक्षा भिन्न रूप में पायी जाती है। ऋग्वेद में तत्पुरुष समासान्त पदों की अधिकता है। तत्पुरुष समास में प्रथम पद के द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में होने पर अन्तिम पद या द्वितीय पद कृदन्त में रहता है तथा चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति में प्रथम पद के होने पर अन्तिम सामान्य संज्ञा के रूप में रहता है। यथा—

द्वितीया—गो-घ्ना, देव-मदनः, भूरि-देवान्, भद्र-वादिनः, साज-साति।

तृतीया—अग्नि-दग्ध., देव-ता, तनु-शुभ्रः।

चतुर्थी—विश्व-शम्भू।

पञ्चमी—गो-अजः, तीव्र-सुत्तः।

षष्ठी—राज-पुत्रः, विश-पतिः, द्रु-पदः, देव-किलविषम।

सप्तमी—अहर्,-जातः, उद-प्लुतः, पुरु-भूः, बन्धु-क्षितः।

१—जब तत्पुरुष समास का कोई प्रथम पद ऐसी संज्ञा या अव्यय हो जिसके न रहने से उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप नहीं रह सकता है, जो है; तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं। यथा—कर, चय, जय, तय, दर, भर, रुज, सति, सह प्रभृति पदों को संज्ञा या अव्ययों में जोड़ देने पर उपपद समस्यन्त शब्द बनते हैं। जैसे—अभ्यङ्करः, धनञ्जयः, पुरन्दरः, सुतम्भरः, उग्रम्-पश्य, अश्वम्-इष्टिः।

२—उपपद समास के यदि अन्तिम पद कृदन्त रूप में हों तथा अन्तिम स्वर आ ई ऊ हों तो इनका लोप नहीं होता। पर अन्तिम स्वर अ इ उ रहने पर त का योग हो जाता है। यथा—

अग्नि-पा, विज्ञा-नी, राज-सू, दिवि-क्षि-तः, सोम सु-तः, ज्योतिर्-कृ-तः।

(Descriptive Compounds) कर्मधारय

१—जिस समास का प्रथम पद विशेषण स्वरूप हो अर्थात् दोनों का अधिकरण-एक हो, तो उसे व्यधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय कहते हैं। जैसे—पुरुष-मृगः, पुरुष व्याघ्रः, वृषा-कपि, स्ना-कूतः, ऋत्वि-क्।

२—जब प्रथम पद विशेषण हो और दूसरा पद विशेष्य हो, तो उस कर्मधारय का विशेषण पूर्वपद कर्मधारय कहते हैं। यथा—कृष्ण-शकुनि, चन्द्र-मस, नद-ज्वरः, महा-ग्रामः, मध्यं-दिनम्, हरिश्-चन्द्रः।

३—क्रिया विशेषण के साथ भी यह समास होता है। यथा—अक्षण्य-द्रूहः, अमुत्त-मूत्रः, पुनर-भवः, पुनर्-भू, पुरो-हितः, इद्-वत्सरः, प्रणि-पातः, सम-वत्सरः।

(Possessive Compounds) बहुव्रीहि

१. जब समास में आये हुए दोनों पद किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप होते हैं, तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। यथा—विश्व-नरः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋग्वेद में बहुव्रीहि समास दो प्रकार का पाया जाता है—कर्मधारय बहुव्रीहि और तत्पुरुष बहुव्रीहि।

२. जब प्रथम पद विशेषण या क्रियाविशेषण हो और उत्तर पद विशेष्य हो तथा दोनों पदों में समानाधिकरण (in apposition) न हो, तो उसे कर्मधारय बहुव्रीहि समास कहते हैं। यथा—उग्र—बाहुः अश्व—पर्णः, इन्द्र-शत्रु, अश्व-पर्णः, राज--पुत्रः, अष्ट—पदः, दि—पदः, परो—रथः, पुष—पदः, सु—पर्णः।

३. जब प्रथम पद प्रायः षष्ठी या सप्तमी विभक्ति में हो और द्वितीय पद प्रथमा विभक्ति में हो तो उसे तत्पुरुष बहुव्रीहि कहते हैं। इस समास में कभी-कभी प्रथम पद द्वितीया विभक्ति में पाया जाता है। यथा—

रायस्—कामः, दिवि—योनिः, भास—केतुः, त्वाम्—कामः।

४. कभी-कभी बहुव्रीहि समास विशेष्य रूप में आता है और उसकी संज्ञा लुप्त रहती है। यथा—'सु-पर्णः' अच्छे पंख वाला, पक्षी संज्ञा लुप्त है।

५. दन्त शब्द के स्थान पर बहुव्रीहि में दतृ आदेश होता है। यथा—उभयतोदतः प्रतिगृह्णाति।

६. ऋकारान्त बहुव्रीहि शब्दों में कप् प्रत्यय नहीं होता है। यथा—हता माता यस्य हतमाता।

(Governing Compounds) अनुशासित अव्ययीभाव

वेदों में इस वर्ग के अनेक समस्यन्स पद आये हैं। जिनका प्रथम पद उपसर्ग या कृदन्त हो और अन्तिम पद को अनुशासित करता हो (Govern) उसे उपर्युक्त समास कोटि में रखा गया है। ये सामासिक पद आकृति और विशेषण होने की दृष्टि से बहुव्रीहि से मिलते-जुलते हैं। यथा—

अतिरात्रः, अनुकामः, जमद—अग्निः, सरद्—द्वेषः, अ—पथिः।

Syntactical Compounds (वाक्य विनियास सम्बन्धी)

कतिपय ऐसे अनियमित समास हैं, जो उपर्युक्त समास के पदों से आकृति और नियमन की दृष्टि से भिन्न प्रकार से निष्पन्न होते हैं। इन समस्यन्त पदों का एक स्वतन्त्र वर्ग माना जा सकता है, क्योंकि ये सभी एक ही नियम से अनुशासित हैं। यथा—याद्—राध्यम्, ये यजामह, मम—सत्यः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(Iterative Compounds) द्विरुक्त समास

वैदिक साहित्य में इस प्रकार के समस्यन्त पदों की बहुलता है, जिनमें विशेष्य, विशेषण, सर्वनाम, संख्या वाचक शब्द, क्रिया विशेषण और उपसर्गों को दुहराया गया है। पदों को दुहराते समय द्वितीय पद का स्वर लुप्त हो जाता है और बीच में अवग्रह का चिह्न आ जाता है। इन समासों को द्विरुक्त समास माना जा सकता है। तथा—

संज्ञा का दुहराना—अहर—अहर, दिवे—दिवे, द्यवि—द्यवि, मासि—मासि, दमे—दमे, विशे—विशे,

विशेषण का दुहराना—पणयं—पणयं, प्राचीं—प्राचीं, प्र, उतरां उतरां सताम्।

सर्वनाम का दुहराना—यद्—यद् यामि, तद् तद् दधे।

संख्यावाचक का दुहराना—पञ्च-पञ्च, सप्त-सप्त।

क्रिया विशेषण " " —यथा—यथा, अध—अध।

उपसर्ग " " —प्र-प्रशस्यते।

क्रिया पदों " " —पिब—पिब,स्तुहि—स्तुहि।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तर—

१—वैदिक संस्कृत में अकारान्त शब्दों के रूप प्रथमा बहुवचन में असस् और अस् इन दो प्रत्ययों का जोड़ने से बनते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में केवल अस् प्रत्यय जोड़ने से ही प्रथमा बहुवचन के रूप में हो जाते हैं। यथा—वैदिक संस्कृत में देव शब्द का प्रथमा बहुवचन देवासः, देवाः, ब्राह्मण शब्द का ब्राह्मणासः, ब्राह्मणा, पर लौकिक संस्कृत में देवाः और ब्राह्मणाः ही रूप होते हैं।

२—वैदिक संस्कृत में अकारान्त शब्दों के तृतीया बहुवचन में दो प्रकार के रूप होते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में एक ही रूप होता है। यथा—देव शब्द के तृतीया बहुवचन में देवेभिः और देवैः, पर लौकिक संस्कृत में देवैः रूप होगा।

३—वैदिक संस्कृत में अकारान्त शब्दों का प्रथमा द्विवचन का रूप आ प्रत्यय के योग से और ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का तृतीया एकवचन ई प्रत्यय के योग से बनता है, परन्तु लौकिक संस्कृत में प्रथमा द्विवचन में औ और स्त्रीलिङ्ग तृतीया एकवचन में आ प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—अश्विन शब्द से अश्विना और सुष्टुती से तृतीया एकवचन में सुष्टुती रूप बनेगा। लौकिक संस्कृत में अश्विनौ और सुष्टुत्या रूप बनते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४—वैदिक संस्कृत में सप्तमी विभक्ति का एकवचन अनेक स्थानों पर लुप्त हो जाता है, पर लौकिक संस्कृत में वह लुप्त नहीं होता। यथा—वैदिक संस्कृत में परमे व्योमन् होगा, परन्तु लौकिक संस्कृत में परमे व्योम्नि या परमे व्योम्नि रूप लिखा जायगा।

५—वैदिक संस्कृत में अकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के प्रथमा बहुवचन के रूप आ और आनि इन दो प्रत्ययों को जोड़कर बनाये जाते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में केवल आनि प्रत्यय ही जोड़ा जाता है। यथा—वैदिक संस्कृत में विश्वानि अद्भुता, पर लौकिक संस्कृत में विश्वानि अद्भुतानि होगा।

६—वैदिक संस्कृत में क्रिया रूपों में लट् लकार के उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप मसि प्रत्यय लगाकर बनाते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में मस् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—वैदिक में—मिनीमसि लौकिक में मिनीमः।

७—वैदिक संस्कृत में लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में त, तन, थन, और तात् प्रत्यय लगाये जाते हैं, यथा—श्रृणोत, सुनोतन, यतिष्ठन और कृणुतात् किन्तु लौकिक संस्कृत में ऐसे रूप नहीं होते।

८—लौकिक संस्कृत में "लिए' अर्थ में क्रिया में तुमुन् प्रत्यय जोड़ा जाता है, यथा—गन्तुम्—जाने के लिए, पठितुम्—पढ़ने के लिए, द्रष्टुम्—देखने के लिए इत्यादि, परन्तु वैदिक संस्कृत में इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए से, सेन्, असे, असेन्, कसे, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्य, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेन, तवेङ् ये पन्द्रह प्रत्यय होते हैं। यथा—जीवसे, पिबध्यै, दातवे, कर्तवें, श्रियसे, पिबध्यै, आहुवध्यै, सूतवे, गन्तवे।

९—वैदिक संस्कृत में आज्ञा तथा सम्भावना दिखलाने के लिए एक नये लकार—लेट् की योजना की गयी है। यथा—प्राण आयूंषि तारिषत्। लेट् लकार का प्रयोग लौकिक संस्कृत में नहीं होता है।

१०—लौकिक संस्कृत में गति और उपसर्ग संज्ञक शब्द क्रिया के पूर्व में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु वैदिक संस्कृत में ये क्रिया के आगे-पीछे अथवा दूर भी रहते हैं। यथा—उप प्रयायोभिरागतम् आयातमुप इत्यादि।

——०——

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत-प्रतिष्ठा के पाठ्यक्रम में निर्धारित वैदिक प्रक्रिया

प्रथमोऽध्यायः

१. छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् १।२।६—द्वयोरेकवचनं वा स्यात्—पुनर्वसु नक्षत्रं, पुनर्वसू वा। लोके तु द्विवचनमेव॥

वेद में नक्षत्रवाची पुनर्वसु शब्द का प्रयोग एकवचन में विकल्प से होता है। लौकिक संस्कृत में यह शब्द नित्य ही द्विवचनान्त है। यथा—पुनर्वसू नक्षत्रम्। वेद में विकल्प से यह द्विवचनान्त प्रयोग भी पाया जाता है। लौकिक संस्कृत में नित्य ही पुनर्वसू शब्द प्रयुक्त मिलता है।

२. विशाखयोश्च १।२।६२—प्राग्वत्। विशाखा नक्षत्रं, विशाखे वा॥

वेद में नक्षत्रवाची विशाखा शब्द का प्रयोग विकल्प से एकवचन में होता है। विकल्पाभाव पक्ष में द्विवचनान्त रूप भी पाया जाता है। यथा—विशाखा नक्षत्रम्। अथवा विशाखे नक्षत्रे। लौकिक संस्कृत में विशाखे नक्षत्रे शब्द का प्रयोग ही पाया जाता है।

३. षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा १।४।९—षष्ठ्यन्तेन युक्तः पतिशब्दश्छन्दसि घिसंज्ञो वा स्यात्—क्षेत्रस्य पतिना वयम्। इह वेति योगं विभज्य छन्दसीत्यनुवर्तते। तेन सर्वे विधयश्छन्दसि वैकल्पिकाः। 'बहुलं छन्दसि' इत्यादिरस्यैव प्रपञ्चः॥

षष्ठ्यन्त से युक्त पद शब्द वेद में भी विकल्प से घिसंज्ञक होता है और घि संज्ञा का फल यह है कि 'आङो नाऽस्त्रियाम्' सूत्र से तृतीया विभक्ति एकवचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर ना आदेश होता है। यथा—'क्षेत्रस्य पतिना वयम्' इस प्रयोग में पतिना शब्द का सिद्धि करने के हेतु 'पति' शब्द लिया। पति शब्द से 'पतिः समास एव' सूत्र से 'घि' संज्ञा की प्राप्ति का अभाव है, क्योंकि 'घि' संज्ञा समस्यन्त पति शब्द से ही होती है। समास रहित पति शब्द से नहीं। अतः 'षष्ठी युक्तश्छन्दसि वा' इस सूत्र से पूर्व सूत्र का बाधकर षष्ठ्यन्त से युक्त होने के कारण पति शब्द की घि संज्ञा का विधान किया। अतः घि संज्ञा होने पर 'आङो नाऽस्त्रियाम्' सूत्र से 'टा' प्रत्यय के स्थान पर ना करने से पतिना यह रूप बना, पर लौकिक संस्कृत में घि संज्ञा न होने से पत्या, यह रूप बनता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वार्तिकः—नभोऽङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम्। नभसा तुल्यं नभस्वत, भत्वाद् रुत्वाभावः। अङ्गिरस्वदङ्गिरः (ऋ० १।२।३५) मनुष्वदग्ने (ऋ० १।२।३५)। 'जनेरुसिः' (उ० सू० २७२) इति विहित उसिप्रत्ययो मनेरपि, बाहुलकात्।

नभस् अङ्गिरस् और मनुष् इन शब्दों के परे यदि वतुप् प्रत्यय हो, तो भ संज्ञा होती है। यथा—नभसा तुल्यं नभस्वत्, अङ्गिरसा तुल्यम् अङ्गिरस्वत्, मनुषा तुल्यं मनुष्वत्। नभस्वत् इत्यत्र नभस् शब्द से वत् प्रत्यय किया–नभस्+वति अङ्गिरस+वति इस स्थति में "ससजुषोरुः" सूत्र से सरकार के स्थान पर रु किया। 'हशि च' सूत्र से रु के स्थान पर उकार आदेश किया तब नभोवत् यह रूप हुआ, पर वेद में—'नभोऽङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम्' इस वार्तिक से पद संज्ञा का बाध कर भ संज्ञा हुई। अतः स के स्थान पर रु का होना रुक गया, जिससे नभस्वत् अङ्गिरस्वत्: मनुष्वत् इत्यादि रूप सिद्ध हुए।

४. अयस्मयादीनि छन्दसि १।४।२०—एतानि छन्दसि साधूनि। 'भपदसंज्ञाधिकाराद् यथायोग्यं संज्ञाद्वयं बोध्यम्। तथा च वार्त्तिकम्—'उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यम्' इति। 'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन (ऋ ३।७।१६)। पदत्वात्कुत्वम्, भत्वाज्जश्त्वाभावः, जश्त्वविधानार्थायाः पदसंज्ञाया भत्वसामर्थ्येन बाधात्। 'नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु' (ऋ० ८।२।२३) अत्र पदत्वाज्जश्त्वम् भत्वाद् रुत्वाभावः।

वेद में अयस्मय आदि शब्द भी उक्त दोनों संज्ञाओं से ही सिद्ध माने जाते हैं। पद संज्ञा होने पर तो अयस्+मयट् होने पर अयोमय रूप होगा, पर भ संज्ञा करने से स के स्थान पर रु का अभाव हो जाता है जिससे अयस्मय रूप बनता है। वेद में भ और पद दोनों ही संज्ञाएँ यथा अवसर मानकर कार्य किये जाते हैं। जैसे—'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन' "नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु" इन दोनों प्रयोगों में ऋक्वता शब्द की सिद्धि ऋच्+वत् प्रत्यय इस स्थिति में ऋच् को पद संज्ञा मानकर कवर्ग में परिवर्तित किया गया है तथा "चोः कुः" सूत्र से 'च' के स्थान पर 'क' किया अनन्तर भ संज्ञा मानकर 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से क के स्थान पर ग का निषेध किया क्योंकि "विप्रतिषेधे परं कार्यम्" के अनुसार यहाँ पद संज्ञा होने से भसंज्ञा बलीयसी है। अतः ऋक्वता यह पद बना। पद संज्ञा होने से तो ऋग्वता पद बनता जो कि मन्त्र में प्रयुक्त ही नहीं है। यहाँ पूर्व में पद संज्ञा और पश्चात् भ संज्ञा ये दोनों ही क्रियाएँ हुई हैं। इसी प्रकार वाजिनेषु पद में वाच्+इन् स्थिति में पद संज्ञा मानकर च के स्थान पर "झलां जशोऽन्ते" सूत्र से च के स्थान पर ज आदेश किया। अब यदि भ संज्ञा होने के कारण ज कवर्ग में परिवर्तित नहीं हुआ। अतः वाजिनेषु यह पद बना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. ते प्राग्धातोः— छन्दसि परेऽपि १।४।८१— लौकिक संस्कृत में उपसर्गों का प्रयोग शब्द के पूर्व होता है, पर वेद में शब्द के आगे भी उपसर्ग का प्रयोग पाया जाता है। यथा—'याति नि अहस्तिना' 'हन्ति नि मुष्टिना' इनके लौकिक प्रयोग होंगे—नियाति, निहन्ति।

६. व्यवहिताश्च १।४।८२— 'हरिभ्यां याह्योक आ' (ऋ० ५।३।१७)। 'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि' (ऋ० ३।३।९)।

वेद में उपसर्गों का प्रयोग व्यवहित भी पाया जाता है। अर्थात् व्यवहित भी से भी छन्द में उपसर्गों के प्रयोग वेद में उपलब्ध होते हैं। यथा—"हरिभ्यां याह्योक आ" याहि और ओक के बाद आ, "आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि" द्वितीय उदाहरण में आ और याहि के बीच मन्द्र, इन्द्र और हरिभिः ये तीन पद आये हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि वेद में उपसर्गों का प्रयोग भी व्यवहित पाया जाता है।

७. इन्धिभवतिभ्यां च १।२।६—आभ्यां परोऽपित् लिट् कित् स्यात्। 'समीधे दस्युहन्तमम्' (ऋ० ४।५।२३)। 'पुत्र इधे अथर्वणः' (ऋ० ४।५।२३)। बभूव। इदं प्रत्याख्यातम्। 'इन्धेश्छन्दोविषयत्वाद् भुवो वुको नित्यत्वात्ताभ्यां लिटः किद्वचनानर्थक्यम्' इति॥

इन्ध् और भू धातुओं के पश्चात् अपित्—तिप्, सिप् और मिप् भिन्न लिट्-लकार के प्रत्यय कित् होते हैं। यथा—'समीधे दस्युहन्तमम्। 'पुत्र इधे अथर्वणः' 'बभूव' इन उदाहरणों में इन्ध् धातु से लिट् लकार किया। पश्चात् 'इन्धिभवतिभ्यां च' इस सूत्र से किप् कित् 'क्ङिति च' सूत्र से गुण का निषेध किया और 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' सूत्र से नकार का लोप किया तब 'इन्धे' यह रूप बना। समीधे में भी इन्धे क्रिया पद का अस्तित्व है, इसी प्रकार गुण का निषेध करने से बभूव भी बनता है।

द्वितीयोऽध्यायः

८. तृतीया च होश्छन्दसि २।३।३—जुहोतेः कर्मणि तृतीया स्याद्-द्वितीया च। 'यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति'। अग्निहोत्रशब्दोऽत्र हविषि वर्तते, 'यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत, इत्यादि प्रयोग दर्शनात्, 'अग्नये हूयते' इति व्युत्पत्तेश्च। यवाग्वाख्यं हविः देवतोद्देशेन त्यक्त्वा प्रक्षिपतीत्यर्थः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद में हु धातु के कर्म में द्वितीया और तृतीया दोनों ही विभक्तियाँ होती हैं। यथा—'यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति' और 'यवागोऽ-ग्निहोत्रं जुहोति'। यवागु शब्द से तृतीया एकवचन में यवाग्वा शब्द बनता है और जुहोति क्रिया पद का योग होने से तृतीया विभक्ति हुई। यहाँ कर्मणि द्वितीया का अपवाद है। तृतीया विभक्ति के अभाव में यवागु में द्वितीया विभक्ति हुई।

९. द्वितीया ब्राह्मणे २।३।६०—ब्राह्मण विषये प्रयोगे दिवस्तदस्य कर्मणि द्वितीया स्यात्। षष्ठ्यपवादः'। 'गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः'।

ब्राह्मण विषयक प्रयोग होने पर दिव् धातु के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यह सूत्र दिवस्तदर्थस्य का अपवाद है। पर यह स्मरणीय है कि दिव् धातु का अर्थ जुआ खेलना या क्रय-विक्रय करना हो तो वहाँ षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—'गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः' गाम् में यहाँ द्वितीया विभक्ति हुई है। 'सभा में उसकी मर्यादित वाणी का व्यवहार करें—'गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः'।

१० चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि २।३।६२—षष्ठी स्यात्। 'पुरुष मृगश्चन्द्रमसः'। 'गोधाकालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्'। वनस्पतिभ्यः इत्यर्थः। वेद में चतुर्थी के अर्थ में विकल्प से षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। अर्थात जहाँ चतुर्थी का प्रयोग होना चाहिए वहाँ षष्ठी का प्रयोग करते हैं। यथा—पुरुष मृगश्चन्द्रमस, 'गोधाकालकादार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्, 'चन्द्रमा के लिए पुरुष मृग (मृगी नहीं) चाहिए, यहाँ चन्द्रमस् में उक्त सूत्र से षष्ठी विभक्ति चतुर्थी के अर्थ में हुई है। चतुर्थी में 'पुरुषमृगश्चन्द्रमसे' यह प्रयोग होता। ''गोधाकालका-दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्' अर्थात् तुम्हारी वनस्पतियों के लिए गोधा, कालका, कठफोड़वा आदि विघातक जन्तु चाहिए'। यहाँ वनस्पतीभ्यः के अर्थ में षष्ठी का प्रयोग हुआ है।

वार्तिक:— षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम्। 'या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः'। वेद में षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्त का भी प्रयोग होता है। यथा—'या खर्वेण पिबती तस्यै खर्वः' 'जो स्त्री अपने छिन्न अङ्ग से पीती है उसको छिन्नाङ्ग पुत्र पैदा होता है'। यहाँ तस्याः के अर्थ में तस्यै प्रयोग हुआ है। अर्थात् षष्ठी का अर्थ रहने पर चतुर्थी विभक्ति हुई है।

११. यजेश्च करणे २।३।६३—इह छन्दसि बहुलं षष्ठी। 'घृतस्य घृतेन वा यजते'।

वेद में यज् धातु के करण में तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियों का प्रयोग होता है। यथा—'घृतस्य घृतेन वा यजते' अर्थात् घी से यज्ञ करता है। यहाँ करण अर्थ में षष्ठी और तृतीया दोनों ही विभक्तियाँ हुई।—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२. बहुलं छन्दसि २।४।३९—अदो घस्लादेशः स्यात्। घस्तां नूनम्। लुङि 'मन्त्रे घस०' इति च्लेलुक्।अडभावः। सग्धिश्च मे।

अद् धातु को वेद में विकल्प से घस्लादेश होता है। यथा'—घस्तां नूनम्' घस्ताम् =अद्+लुङ् (तस्—ताम्) =अब वे दोनों खायें। यहाँ लुङ् लकार में च्लि का लोप तथा अट् का लोप। 'बहुलं 'छन्दसि' इस सूत्र से अद् के स्थान पर घस् आदेश। अतः घस्तां यह प्रयोग बना। 'सग्धिश्च मे,—सग्धि सहभोजन (अद्+क्तिन्) अद् के स्थान पर घस् का आदेश तो घस्+ति इत्यत्र 'झलो झलि इस, सूत्र से स् का लोप तब बना घ्ति—'झषस्तथोर्धोऽधः' इस सूत्र से त के स्थान पर ध्त; ध हो गया घस्+ति 'झलां जश् झशि' सूत्र से ध के स्थान पर ग् तब समानाग्धि सग्धि यह रूप सिद्ध हुआ।

१३. हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि २।४।२८—द्वन्द्वः पूर्ववल्लिङ्गः। हेमन्तश्च शिशिरं च हेमन्तशिशिरौ। अहोरात्रे॥

हेमन्तशिशिरौ और अहोरात्रे ये दोनों पद वेद में पूर्व लिङ्ग के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। लौकिक संस्कृत में—'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' अर्थात् द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परवत् शब्द के अनुसार लिङ्ग का निर्देश होता है। यहाँ हेमन्त शब्द पुल्लिङ्ग है। अतः वेद में—हेमन्तशिशिरौ प्रयोग में पूर्वशब्द पुल्लिङ्ग होने के कारण समस्यन्त पद को भी पुल्लिङ्ग कर दिया गया है, पर लौकिक संस्कृत में परवल्लिङ्ग होने से—'हेमन्तशिशिरे' यह प्रयोग बनता है। इसी प्रकार अहोरात्रे यह प्रयोग भी पूर्ववल्लिङ्ग के कारण हुआ है। लौकिक संस्कृत में तो 'अहोरात्रौ' यह पद मिलता है।

१४. अदिप्रभृतिभ्यः शपः बहुलं छन्दसि २।४।७३—वृत्रं हन्ति वृत्रहा। 'अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः'। अत्र लुक न। अदादिभिन्नेऽपि क्वचिल्लुक। 'त्राध्वं नो देवाः॥

अदादि धातुओं के बाद शप् का लोप वेद में बहुलरूप से होता है। यथा—'वृत्रं हनति वृत्रहा' हनति यहाँ पर प्रयोग विकरण शप् का विकल्प से लोप होने पर हन्ति और लोप नहीं होने पर हनति यह रूप बना है।

१५. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः—बहुलं छन्दसि २।४।७६—'दाति प्रियाणि चिद् वसु'। अन्यत्रापि—'पूर्णां विवष्टि'॥ लोक में जुहोत्यादि धातुओं के बाद शप् के स्थान पर श्लु होता है, जिसका फल है द्वित्व होना, पर वेद में बहुल रूप से शप् के स्थान पर श्लु अतः दा से दाति, ददाति ये दोनों रूप बनते हैं। वश् से विवष्टि रूप बनता है। विवष्टि में श्लु प्रत्यय हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६. मन्त्रे घस-ह्वर-णश-वृ-दहाद-वृचःकृ-गमिजनिभ्यो लेः २।४।८० — लिरिति च्लेः प्राचां संज्ञा। एभ्यो लेर्लुक् स्यान्मन्त्रे। 'अक्षन्नमी मदन्त हि'— घस्लादेशस्य 'गमहन०' (६।४।९८) इत्युपधालोपे 'शासिवसि०' (८।३।६०) इति षः। 'मा ह्वर्मित्रस्य'। 'धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य'— 'नशेर्वा' (८।२।६३) इति कुत्वम्। 'सुरुचो वेन आवः'। मा न आधक्। आदित्याकारान्त-ग्रहणम् 'आप्ता द्यावापृथिवी'। 'परादर्भारभृद्यथा'। 'अक्रन्नुषासः'।' ते रयिं जागृवांसो अनुग्मन्'। मन्त्रग्रहणं ब्राह्मणस्याप्युपलक्षणम्—'अज्ञत वा अस्य दन्ताः'। विभाषानुवृत्तेर्नेह—'न ता अगृभ्णन्नजनिष्ट हि षः'॥

घस, ह्वर णश् वृ, दहाङ् वृज कृ, गयि और जनि धातुओं से च्लि का लोप होता है। च्लि को प्राचीन वैयाकरणों ने लि कहा है। यथा अद्+घस्+लुङ् झि=अद+घस्+अन्यहाँ जश्त्व और चर्त्व होने से अक्षन् यह रूप बना है। पर लोक में अघसत् रूप बना है। ह्वृ+लुङ्—(गुण)=ह्वर+ति=मा ह्वः। णश्+ति=('नशेर्वा' से श का क) होने से प्रनक् हुआ तथा 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' से णत्व और क के स्थान पर ङ करने से प्रणङ् मर्त्यस्य रूप बना। लोक में अनशत् होता है। वृ+ति=आवः, लोक में अवारीत। दह+लुङ्+ति=आधक्, लोक में अधाक्षीत। आ+प्रा+सिच्—(रुत्व यकार लोप)=आप्रा, लोक में—अप्रासीः।

तृतीयोऽध्यायः

१७. अभ्युत्सादयां प्रजनयांचिकयां रमयामकः पावयांक्रियाद् विदामक्रन्निति च्छन्दसि ३।१।४२—आद्येषु चतुषु लुङि आम 'अकः' इत्यनु प्रयोगश्च। अभ्युत्सादयामकः—अभ्युदसीषदत् इति लोके। प्रजनयामकः—प्राजीजनदित्यर्थः चिकयामकः—अचैषीहित्यर्थे चिनोतेराम् द्विर्वचनं कुत्वं च। रमयामकः—अरीरमत्। पावयांक्रियात्—पाव्यादिति लोके। विदाक्रमन्—अवेदिषुः॥

अभ्युत्सादि में आम् और अकत् का लुङ् लकार में बहुल से निपातन होता है वेद में। यथा—अभ्युत्सादयामकः—अभि+उत+सित्+णिच्+आम्+लुङ् णित होने के कारण वृद्धि हुई। सादिगुण अद धातु आम् के कारण अयादेश करने पर अभ्युत्सादयां बना। तब कृञ् +लुङ्+(तिप्+च्लि) लोप गुण रपर और विसर्ग करने पर 'अकः' यह रूप बना। लौकिक संस्कृत में अभ्युसीषदत रूप बना है। इसी प्रकार प्राजीजनत् के स्थान में प्रजनयामकः होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिक्यामकः---चि+आम्+लुङ् यहाँ धातु को द्वित्व और कवर्ग में परिवर्तित होना निपातन से हुआ है। लौकिक संस्कृत में सिच् और वृद्धि होने से अचैषीत रूप बनता है। इसी प्रकार अरीरमत के स्थान में रमयामकः बनता है। पावयां क्रियान् पू+णिच्+आम्। लौकिक संस्कृत में पू+णिच् करने से पाव्यात् रूप बनता है।

विदामक्रन्—विद्+आम् (लुङ् कृञ् झि) यहाँ झि के ङित होने से कृञ् में गुण न होकर यन् हुआ। अतः विदामक्रन् यह रूप बना है। लौकिक संस्कृत में अवेदिषुः यह रूप बनता है।

१८. गुपेश्छन्दसि ३।१।५० —च्लेश्चङ् वा। गृहानजूगुपतं युवम्। अगौप्तमित्यर्थः।

वेद में गुप् धातु च्लि को विकल्प से चङ् आदेश होता है। यथा--- अजूगुपतम्—गुप्+लुङ् (च्लि-चङ्) थस (तङ्) द्वित्व और अभ्यास को दीर्घ करने पर अजूगुपतम् यह रूप बनता है। लोक में चङ् न होने से अगौप्तम् रूप बनता है। दूसरे रूप अगोपाइष्टं और अगोपिष्टं भी बनते हैं। कृञ् धातु से चङ् करने पर अक्रम्, मृ धातु से अमरत, दृ धातु से अदरत और रुह् धातु से अरुहत रूप बनते हैं।

१९. नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ३।१।५१—च्लेश्चङ् न। 'मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः'। 'मा त्व ग्निर्ध्वनयीत्।'

णिजन्त ऊनि, ध्वनि आदि धातुओं से चङ् आदेश नहीं होता। यथा— 'मा त्वायता जरितुः काममूनयीः' पद में ऊनयी को सिद्ध---ऊनि+णिच्+सिप् इट् और इट् के पश्चात् 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' सूत्र से बीच् के स का लोप किया और अजादि धातुओं में लगने वाले आट् आगम का 'मा' के कारण लोप हुआ है। अतः अमूनयी पद बना है। इसी प्रकार ध्वनयीत् का लौकिक संस्कृत में अदिध्वनत् या अभ्यध्वनत् रूप बनता है।

२०. कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ६।१।५९—च्लेरङ् वा 'इदं तेभ्योऽकरं नमः'। अमरत्। अदरत्। 'यत्सानोः सानुमारुहत्'।

कृ, मृ, दृ और रुह् धातुओं से वेद में विकल्प से च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है। यथा—'इदं तेभ्योऽकरं नमः'। अकरम्---अट् कृ+अङ् मिप् (अम्)=अकरम्। लौकिक संस्कृत में सिच् होने से---अकार्षम् रूप बनता है। इसी प्रकार अमरत् के स्थान पर अमृत होता है क्योंकि यहाँ 'ह्रस्वादङ्गात्' सूत्र से सिच् का लोप हुआ है। इसी प्रकार अदरत् और अरुहत् का लौकिक संस्कृत में---अदारीत् और अरुक्षत् यह रूप बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१. छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूय प्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्य—भाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ३।१।१२३—कृन्तते-र्निस्पूर्वात्क्यपि प्राप्ते ण्यत्। आद्यन्तयोः विपर्यासो 'निसः षत्वं च।' निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः'। देवशब्दे उपपदे ह्वयतेर्जुहोतेर्वा क्यप् दीर्घश्च। स्पर्धन्ते वा उ देवहूये।' प्र उत् आभ्यां नयतेः क्यप्—प्रणीयः, उन्नीय उत्पूर्वाच्छिषः क्यप्—उच्छिष्यः। मृङ्स्तृञ्ध्वृभ्यो यत्—मर्यः। स्तर्या—स्त्रियमेवायम्। ध्वर्यः। खनेर्यत्ण्यतौ—खन्यः, खान्यः। यजेर्यः—'शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै।' आङ् पूर्वात्पृच्छेः क्यप्। 'आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति॥ सीव्यतेः क्यप् षत्वं च-प्रतिषीव्यः। ब्रह्मणि वदेर्ण्यत्—ब्रह्मवाद्यम् लोके तु 'वदः सुपि क्यप् च' (३।२।१०६) इति क्यप्ण्यतौ भवतेः स्तौतेश्च ण्यत्—भाव्यः, स्ताव्यः। उपपूर्वाच्चि-नोतेर्ण्यत् आयादेशश्च पृडे उत्तरपदे—उपचाय्यपृडम्। वार्तिकः—'हिरण्य इति वक्तव्यम्'। उपचेयपृडमन्यत्। 'मृड' सुखने 'पृड' च—इत्यस्माद् इगुपध लक्षणः कः॥

वेद में निष्टर्क्यादि शब्दों से क्यप् के स्थान में विकल्प से ण्यत् होता है। यथा—'निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः' निस्+कृत्+क्यप् यहाँ क्यप् के स्थान में ण्यत् हुआ है तथा वर्ण विपर्यय और षत्वं का निपातन कर देने से निष्टर्क्यम् रूप बना है। 'स्पर्धन्त बहुदेवहूये' देवहूये—देवहूये—देव+ह्वा+क्यप्, क्यप् के स्थान पर ण्यत्, दीर्घ कर देने पर देवहूय रूप बनता है। प्रणीयः—प्र+उत्+नी+क्यप्। क्यप् के स्थान पर ण्यत् कर देने से प्रणीयः। उन्नीयः—उत्+नी+क्यप्। क्यप् के स्थान पर ण्यत् कर देने से उन्नीयः। प्र+उत्+शिष्+क्यप्। क्यप् के स्थान पर ण्यत् करने से उच्छिष्यः। मृ, स्तृ, ध्वृ से ण्यत् करने पर मरीयः, स्त्रीयः, धरीयः (मर्यः, स्तर्य, ध्वर्यः) रूप बनते हैं। खन से यत् और ण्यत् करने पर खन्यः और खान्यः रूप बनते हैं। यज् से यत् करने पर देवयज्या स्त्रीलिङ्ग रूप बनता है। आ+पृच्छ्+क्यप्=आपृच्छ्यम्। षिवु+क्यप् षत्व—प्रतिषीव्य। ब्रह्म+वद्+ण्यत्=ब्रह्मवाद्यम्। भू स्तु+ण्यत्=भाव्यम्। स्तु+क्यप् =स्ताव्यः। उप+चि+ण्यत्+आयादेश='उपचाय्यपृडम्'। दूसरे स्थान पर 'उपचेयपृडम्' यह रूप बनता है।

२२. छन्दसिवनसनरक्षिमथाम् ३।२।२७—एभ्यः कर्मण्युपपदे इन् स्यात्। 'ब्रह्मवनि, त्वा क्षत्रवनिम्'। 'उत नो गोषणि धियम्'। 'ये पथां पथिरक्षयः,' 'चतुरक्षौ पथिरक्षी,' 'हविर्मथीनामभि'॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद में कर्म के उपपद रहते पर वन् सन्, रक्ष् और मथ् धातुओं से इन् प्रत्यय होता है। यथा—'ब्रह्मवनिं त्वा' क्षत्रवनिम्'। ब्रह्मवनति इति ब्रह्मवनिं। क्षत्रं वनति इति क्षत्रवनि। ब्राह्मणों की भक्ति करनेवाला। क्षत्रियों की भक्ति करने वाला। ब्रह्म+वन्+इन्=ब्रह्मवनि। क्षत्र+वन्+इन्=क्षत्रवनि।' 'उत नो गोषणि धियम्' गां सनति गोषणिः—गो+सन्+इन्=गोषणिः। ये पथां पथिरक्षयः। पथिन्+रक्ष्+इन्=पथिरक्षी (पन्थानं रक्षति)। हविर्मन्थति इति हविर्मंथिः—हविः+मथ्+इन्=हविर्मंथिः।

२३. छन्दसि सहः ३।२।६३—सुप्युपपदे सहेर्ण्विः स्यात्। पृतनाषाट्॥

वेद में सह धातु से सुबन्त के उपपद रहने पर ण्वि प्रत्यय होता है। यथा—पृतनाषाट्—पृतना+सह+ण्वि,ण्वि प्रत्यय लगने के कारण 'अतउपधायाः' से वृद्धि की, और "होढः" सूत्र से हकार के स्थान पर ढकार आदेश किया। 'सहे साड्सः" सूत्र से स के स्थान पर ष किया और "वाऽवसाने' सूत्र से ढ के स्थान पर ट करने पर पृतनाषाट् (सेना को हराने वाला), यह रूप बना।

२४. वहश्च ३।२।६४—प्राग्वत्। दित्यवाट्। योग विभाग उत्तरार्थः।

वेद में सुबन्त से उपपद रहने पर वह् धातु से ण्वि प्रत्यय होता है। यथा—दित्यवाट्—दिति+वह्+ण्वि=दित्यवाट्।

२५. कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ३।२।६५—एषु वहेर्ञ्युट् स्याच्छन्दसि। कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः॥ वेद मे कव्य, पुरीष और पुरीष्य शब्दों के उपपद रहने पर वह् धातु से ञ्युट् प्रत्यय होता है। पर वह् धातु के पादमध्य में आने पर ञ्युट् प्रत्यय न होकर ण्वि प्रत्यय होता है। यथा—कव्य+वह्+ञ्युट्, ञ्युट् के स्थान पर अन करने और विसर्ग कार्य से काव्यवाहनः रूप बना। पुरीष+वह्+ञ्युट्=पुरीषवाहनः पुरीष्य+वह्+ञ्युट्=पुरीष्यवाहनः। हव्यवाडग्नि—हव्यवाट्+अग्निः=हव्यवाडग्निः। दो स्वरों के मध्य में ण और ल की ध्वनि डकार को लकार हो जाता है। यथा—op, op,॥

२६. हव्येऽनन्तःपादम्—३।२।६६'अग्निश्च हव्यवाहनः'। पादमध्ये तु 'वहश्च' इति ण्विरेव- 'हव्यवाळग्निरजरः पिता नः'॥

२७. जनसनखनक्रमगमो विट् ३।२।६७—'विड्वनोः, (६।४।४१) इति आत्वम्। अब्जाः। गोजाः। 'गोषा इन्द्रो नृषा असि'।' सनोतेरनः' (८।३।१०८) इति षत्वम्। 'इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्'। 'आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः'। अग्रेगाः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद में जन् सन् खन् क्रम् और गम् धातुओं से उपसर्ग और सुवन्त के उपपद रहने पर विट् प्रत्यय होता है।

यथा—'अब्जाः'। 'गोजाः'। 'गोषा इन्द्रो नृषा असि'।

अब्जाः—अप्+जन्+विट्
गोजाः—गो +जन्+विट्
गोषाः—गो +सन्+(आ)
बिसखाः—बिस+खन्+विट्
दधिक्राः—दधि+क्रम्+विट्
अग्रेगाः—अग्रे+गम्+विट्

२८. मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ३।२।७१—वार्तिकः—श्वेतवहादीनां उस्पदयेति वक्तव्यम्। यत्र पदत्वं भावि तत्र ण्विनऽपवादो डस् वक्तव्यः इत्यर्थः। श्वेतवाः, श्वेतवाहौ श्वेतवाहः। उक्थानि उक्थैः वा शंसति उक्थशा यजमानः। उक्थशासौ उक्थशासः। पुरो दाश्यते दीयते पुरोडाः॥

मन्त्र में श्वेतवाः, उक्थशा आदि शब्दों से ण्विन् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—श्वेतवाः,उक्थानि उक्थैः पुरोडाः आदि। श्वेतवाः—श्वेत+वह् +ण्विन्। पुरोडाः—पुरः+दाश्+डस्।

२९. अवे यजः ३।२।७२—अवयाः, अवयाजौ, अवयाजः।

वेद में अव पूर्वक यज् धातु से ण्विन् प्रत्यय होता है। यथा—अव+यज्+ण्विन्=अवयाजः।

३० अवयाः श्वेतवा पुरोडाश्च (८।२।६७)—एते सम्बुद्धा कृतदीर्घा निपात्यन्ते। चादुक्थशाः॥

वेद में अवयाः, श्वेतवाः और पुरोडाः ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। यथा—अवयाजः, श्वेतवाः।

३१. विजुपे छन्दसि ३।२।७३—उपे उपपदे यजेर्विच्। उपयट्।

वेद में उप पूर्वक यज् धातु से विच् प्रत्यय होता है। यथा—उपयट्—उप+यज्+विच्। विच् का यहाँ सर्वापहारी लोप हो गया है। ज् के स्थान पर 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः' इत्यादि सूत्र से ष आदेश हो गया है। 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से ष के स्थान पर ड आदेश हुआ। 'वाऽवसाने' सूत्र से ड के स्थान पर ट् आदेश कर देने से उपयट् यह रूप बना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२. आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ३।२।७४—सुप्युपसर्गे चोपपदे आदन्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये मनिनादयस्त्रयः प्रत्ययाः स्युः। चात् विच्। सुदामा। सुधीवा। सुपीवा। भूरिदावा। घृतपावा। विच्—कीलालपाः॥

वेद में सुबन्त और उपसर्ग के उपपद रहने पर धातु से मनिन्, क्वनिब्, वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं। यथा—सुदामा, सुदावा, सुधीवा, सुपीवा, भूरिदावा, घृतपावा कीलालपाः। सुदामा—सु+दा+मनिन्+प्रथमा विभक्ति। सुधीवा—सु+ऽधा क्वनिब्+प्रथमा विभक्ति एकवचन से सुधिवन् ढकार क इकार को ईकारादेश करने पर सुधीवा यह रूप बना। सुपीवा सु+पा+क्वनिब् भूरि— दावा— भूरि+ऽदा+वनिप्। घृतपावा—घृत+पा+वनिप्। कीललापा— कीलाल— ऽपा+विच्।

३३. ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्—बहुलं छन्दसि (३।२।८८) उपपदान्तरेऽपि हन्तेर्बहुलं क्विप् स्यात्। यो मातृहा पितृहा।

हन् धातु से होनेवाला क्विप् प्रत्यय छन्द में (वेद में) विकल्प से होता है। जैसे—मातृहा—मातृ+ऽहन+क्विप्, क्विप् का सर्वापहारी लोप=मातृहा। इसी तरह पितृहा—पितृ+ऽहन+क्विप्, क्विप् का सर्वापहारी लोप होने से 'पितृहा' हुआ।

(क) छन्दसि लिट् ३।२।१०५—भूतसामान्ये। 'अहं द्यावापृथिवी आ ततान'॥

वेद में लिट् लकार सामान्य भूतकाल में होता है जबकि लोक में केवल परोक्ष भूतकाल में इसका प्रयोग पाया जाता है। यथा—'अहं द्यावा पृथिवी आ ततान'। यहाँ लिट् लकार का प्रयोग सामान्य भूत काल के अर्थ में आया है।

(ख) लिटः कानज्वा—३।२।१०६—क्वसुश्च (३।२।१०७) छन्दसि कानच्क्वसू वा स्तः।'चक्राणा वृष्णम्'; यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुः'। वेद में लिट् के स्थान में कानच् और क्वसु प्रत्यय होते है। यथा—कृ+कानच् (द्वित्वादि करने पर) चक्राण रूप बना है। इसी तरह अ+रा+क्वसु=अरिवाँ यह रूप बना।

(ग) णेश्छन्दसि (३।२।१३७) ण्यन्ताद्धातोश्छन्दसि इष्णुच् स्यात् तच्छीलादिषु। व 'वीरुधः पारयिष्णवः'। वेद में ण्यन्त धातु से तच्छील अर्थ में अर्थव्यक्त करने के लिए इष्णुच् प्रत्यय होता है। यथा—'वीरुधः पारयिष्णवः'। ऽपृ+णि च+इष्णुच=पारयिष्णः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(घ)—भुवश्च ३।२।१३८—अस्मात्मकेवलात्प्राग्वत्। भविष्णुः ॥
भू धातु से भी इष्णुच् प्रत्यय होता है। यथा—भवितुं शीलमस्य इति भविष्णुः। भू+णिच्+इष्णुच्=भविष्णुः।

(ङ) वार्तिकः—छन्दसि परेच्छायां क्यच उपसंख्यानम्' ३।२।१३८ सूत्रे-वार्तिकम्)। 'क्याच्छन्दसि, ३।२।१७०—उप्रत्ययः स्यात्। अघायुः॥ वेद में इच्छा व्यक्त करने के लिए क्यच् प्रत्यय होता है। यथा—अघायुः। अघ+क्यच्+उ=अघायुः।

(च) वार्तिकः—'एरजधिकारे जवसवौ छन्दसि वाच्यौ' (३।३।५६) सू० वा०) 'जवे याभियूंनः'। ऊर्वोर्मे जवः। 'देवस्य सवितुः सवे' ॥

लोक में इकारान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है किन्तु वेद में जव और सव शब्द भी अच् से ही सिद्ध होते हैं; यद्यपि इनके धातु इकारान्त नहीं होते। यथा—'जवे याभियूंनः'। जू+अच्=जवे। सू+अच्=सवे।

३४. मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ३।३।९६—वृषादिभ्यः क्तिन् स्यात् स चोदात्तः। 'वृष्टिंदिवः'। 'सुम्नमिष्टये'। पचात्पक्तीरुत' 'इयं ते नव्यसी मतिः'। वित्तिः। भूतिः। 'अग्न आ याहि वीतये' (सा० वे० १।१।१) रातौ स्यामोभयासः' ॥

वेद में वृष् इष् पच् मन् विद् भू वी और रा धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है और वह उदात्त होता है। यथा—'वृष्टिं दिवः'। वृष्+क्तिन् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप करने पर 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से त के स्थान पर टकारादेश करने पर वृष्टिः सिद्ध हुआ। इसी प्रकार इष्+क्तिन्=इष्टिः। पच्+क्तिन्=पक्तिः। भू+क्तिन्=भूतिः। विद्+क्तिन्=वित्तिः मन्+क्तिन्=मतिः। वी+क्तिन्=वीतिः—भोजन। रा+क्तिन्=रातिः—दान।

३५. छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ३।३।१२९ :— ईषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि युच्स्यात् खलोऽपवादः। 'सूपसदनोऽग्निः' ॥

वेद में ईषद्, दुः और सु के उपपद रहने पर गत्यर्थक धातुओं से युच् प्रत्यय होता है। यहाँ खल् प्रत्यय का निषेध कर युच् प्रत्यय का विधान किया गया है। सु+उप+सिद्ध+युच्, 'युवोरनाकौ' सूत्र से यु के स्थान पर अनादेश करने पर 'सूपसदनः' यह रूप बनता है। इसका अर्थ है—'अग्नि सुप्राप्य है'। गति अर्थ से भिन्न अर्थ वाले धातुओं से भी वेद में युच् प्रत्यय होता है। यथा—

सु+विद्+युच्+टाप्=सुवेदना। 'तुमने ब्रह्म के लिए अच्छी तरह समझने योग्य प्रार्थना की है'। यहाँ विद् धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य' सूत्र से गुण हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३६. अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३।३।१३० :—गत्यर्थेभ्यो येऽन्ये धातवः तेभ्योऽपि छन्दसि युच्स्यात् । 'सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्' ॥

अन्य धातुओं से भी जो गत्यर्थक नहीं हैं, वेद में युच् प्रत्यय होता है। यथा— 'सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्' ।

३७. छन्दसि लुङ् लङ् लिटः (३।४।६):—धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः । पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः । 'देवो देवेभिरागमत्' । अत्र लोडर्थे लुङ् । 'इदं तेभ्योऽकरं नमः ।' लङ्—'अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः' ।

लिट्—'अद्या ममार' । अद्य म्रियत इत्यर्थः ।

वेद में सभी कालों में लुङ्, लङ् और लिट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—'देवो देवेभिरागमत्' । इस प्रयोग में आगमत् रूप लुङ् लकार का है किन्तु लोट् अनुज्ञा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इदं तेभ्योऽकरं नमः' इस पद में अकरं रूप लुङ् लकार का है किन्तु लोट् के अर्थ में आया है। 'अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः' । इस पद में अवृणीत प्रयोग लङ् लकार का है किन्तु लट् लकार के अर्थ में आया है। इसी प्रकार 'अद्या ममार' ममार क्रिया पद लिट् लकार का है पर लट के अर्थ में आया है।

३८. लिङर्थे लेट् ३।४।७ :—विध्यादौ हेतुहेतुमदभावादौ च धातो लेट् स्याच्छन्दसि ॥

लिङ् लकार के अर्थ में लाट् लकार का प्रयोग विकल्प से वेद में पाया जाता है। अर्थात्—'विधि-निमन्त्रण-अमन्त्रण-अधीष्ट (सत्कार) 'सम्प्रश्न-प्रार्थनेषु' प्रश्न कारण फल हेतुहेतुमद्भाव आशीर्वादादि अर्थों में लेट् लकार का प्रयोग होता है। यह लेट् लकार वेद में ही प्रयुक्त होता है, लोक में नहीं ।

३९. सिब्बहुलं लेटि ३।१।३४ :—लेट् लकार रहने पर धातु से सिप् प्रत्यय होता है, विकल्प से । सिप् को काशिका में प्रत्यय कहा गया है, किन्तु नागेश इसे विकरण कहते हैं। सिप् के बाद शप् होता है तब तिपादि प्रत्यय आते हैं।

४०. इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ३।४।९७ :—लेटस्तिङामितो लोपो वा स्यात्परस्मैपदेषु ॥

लेट् लकार सम्बन्धी सिप् के इकार का परस्मैपद में लोप हो जाता है।

४१. लेटोऽडाटौ ३।४।९४—लेटः अट् आट् एतावागमौ स्तः तौ च पितौ। वा०—'सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः' वृद्धिः । प्र ण आयूंषि तारिषत् । 'सुपेशस्करति जोषिषद्धि' । 'आ साविषदर्शसानाय' । सिपः इलोपस्य च अभावे—'पताति दिद्युत्'। 'प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति' ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेट् लकार में अट् और आट् का आगम क्रमशः होता है। यथा—'प्र ण आयूंषि तारिषत्'। 'सुपे शस्करति जोषिषद्धि'। 'आ साविपदर्शसानाय'। 'पताति दिद्युत्'। 'प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति' ॥

उपर्युक्त प्रयोगों में तारिषत् रूप तॄ+लेट्+तिप् वृद्धि और रपर होने पर तार+इट्+सिप्+अट्+तिप्=तार इस् अ त्='आदेशप्रत्यययोः' से षत्व एवं वर्ण सम्मेलन करने पर 'तारिषत्' रूप बना।

इसी प्रकार जुष्+इट्+सिप्+अट्+तिप्, तिर् में गुणादि क्रिया करने पर जोषिषत् रूप बना।

इसी प्रकार आङ्+सु+इट्+सिप्+अट+तिप्=आसाविषत्। सिप् और इकार के लोप के अभाव में पत+आट+तिप्=पताति। उसी प्रकार भवाति—भू+आट+तिप्=भवाति रूप बना।

४२. स उत्तमस्य ३।४।९८—लेडुत्तमसकारस्य वा लोपः स्यात्। करवाव करवावः ॥

लेट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प से लोप होता है। यथा—करवाव—कृ+वस्=कृ+उ+आट्+वस्=करवावः स का लोप नहीं होने पर। स का लोप होने पर करवाव रूप बना।

४३. आत ऐ ३।४।९५—लेट् आकारस्य ऐ स्यात्।' सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते'। आताभित्याकारस्य ऐकारः। विधिसामर्थ्यादाट ऐत्वं न। अन्यथा हि। ऐटमेव विदध्यात्। 'यो यजाति यजात इत्'।

लेट् लकार सम्बन्धी आकार को विकल्प से ऐकार होता है। यथा—'सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते'।

आशय यह है कि लेट् लकार में दो आकार होते हैं--एक तो आट् का, दूसरा आताम् का। इस सूत्र में आताम् के पहिले आकार को ही ऐकार करने का नियम बताया है। आट् के आकार को नहीं। यदि सूत्रकार पाणिनि को आट् के आकार को ऐकार करना अभीष्ट होता तो वे आट् के स्थान पर ऐट् का प्रयोग करते; पर उन्होंने ऐसी नहीं किया। अतः सिद्ध है कि आताम् के आकार पर ही इसका फल पड़ता। यथा---मद्+णिच्+आट+आताम्=मादि। अयादेश करने पर मादयैते यह रूप बना। उसी तरह यजैते—यज्+आट्+ते=यजाते, ऐ होने पर यजैते यह रूप बनता है।

४४. वैतोऽन्यत्र ३।४।९६—लेट एकारस्य ऐ स्याद्वा। 'आत ऐ' इत्यस्य विषयं विना। 'पशुनामीशै'। 'ग्रहा गृह्यान्तै'। अन्यत्र किम्? सुप्रयसा मादयैते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेट् सम्बन्धी एकार का एकार, उपर्युक्त सूत्र के अतिरिक्त अन्य स्थानों में विकल्प से होता है। यथा—'पशुनामीशैं'—ईश + इट् एत्व करने पर ईश + ए। ए को ऐकारदेश करने पर इशैं यह रूप बना। इसी प्रकार गृहयान्तै—गृह + यक + आट् + अन्त टि को ए तथा उसका ऐ = गृह्यान्तै।

४५. उपसंवादाशङ्कयोश्च (३।४।८)—पणबन्धे आशंकायां च लेट् स्यात्। 'अहमेव पशूनमीशै'। 'नेज्जिह्मयन्त्यो नरकं पताम'।

उपसंवाद और आशङ्का रहने पर वेद में लेट् लकार होता है। यथा—'अहमेव पशूनामीशै'। यहाँ उपसंवाद का अर्थ है Conditional Contract अर्थात् शर्त्त रखना। यदि आप ऐसा करें, तो मैं (आप के साथ ऐसा व्यवहार) करूँ, कारण से कार्य की सम्भावना दिखलाना आशङ्का है। उपसंवाद और आशङ्का रहने पर लेट् लकार का प्रयोग पाया जाता है।

४६. हलःश्नः शानज्झौ :—छन्दसि शायजपि (३।१।८४) अपि शब्दाच्छानच्। (वा०)—हृग्रहोर्भश्छन्दसि—इति हस्य भः।' गृभाय जिह्वया मधु'। विधान देव सवितः'। 'अनिदिताम्'—(६।४।२४) इति बध्नतेः न लोपः। 'गृभ्णामि ते'। 'मध्वा जभार'। वेद में श्ना प्रत्यय को शायच् और शानच् प्रत्यय होते हैं। क्रियादि-गण में श्ना प्रत्यय होता है इस श्ना के स्थान पर शानच् आदेश हो जाता है और वेद में शानच् के स्थान पर शायच होता है। सूत्र में अपि शब्द आया है जिसका अर्थ है कि शायच् प्रत्यय भी होता है। 'गृभाय जिह्वया मधु'—ग्रह + लोट =गृभ + शानच् (शायच्) गृभाय ग्रह् धातु के हकार के स्थान पर 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' इस सूत्र से ह् के स्थान पर भ किया गया। बधान—बन्ध् + शानच् = बधान। सविता देव को अधीन करो।

४७. व्यत्ययो बहुलम् (३।१।८५)—विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्याच्छन्दसि। 'आण्डा शुष्मस्य भेदति'। भिनत्तीति प्राप्ते। 'जरसा मरते पतिः'। म्रियत इति प्राप्ते। 'इन्द्रो वस्तेन नेषतु'। नयतेः लोट् शप्सिपौ द्वौ विकरणौ। 'इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम'। तरेमेत्यर्थः। तरतेर्विध्यादौ लिङ्। उ सिप् शप्चेति त्रयो विकरणाः।

वेद में जिस-जिस विधान में जिन-जिन प्रत्ययों का नियमन किया गया है वे सभी प्रत्यय विषयान्तर में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—'जरसा मरते पतिः'। मरते—मृ + 'श' 'तुदादिभ्यः शः' सूत्र से 'श' विकरण हुआ है। ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश करने पर म्रि बना, यङादेश करने पर म्रियते रूप बना, किन्तु विकरण बदलकर शप् कर देने पर गुण होने से मरते यह रूप हुआ है। इसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद में विकरणों की अदला-बदली होते रहती है। नेषतु—नी धातु से लोट् लकार में शप् और सिप् दो-दो विकरण होन से नेषतु बना। तरुषेम में तीन विकरण हुए। इसका लौकिक रूप तरेम होता है।

४८. लिङ्याशिष्यङ् ३।१।८५—आशीर्लिङि परे धातोरङ् स्याच्छन्दसि। 'वच उम्' (७।४।२०)—'मन्त्रं वोचेमाग्नये'। (वा०) दृशेरग्वक्तव्यः। 'पितरं च दृशेयं मातरं च'। अङि तु 'ऋदृशोऽङि' (७।४।१६) इति गुणः स्यात्॥

वेद में आशीष के अर्थ में लिङ् के परे अङ् प्रत्यय होता है। यथा—मन्त्रं वोचेमाग्नये' वच् धातु में अम् का आगम होता है और नित्य होने के कारण अन्त्य-स्वर के बाद होता है। अतः व+उ+च्—अङ+यासुट+मस् = वोचेम। कात्ययन के अनुसार दृश् धातु से अच् प्रत्यय होता है। अतः दृश+अक्+इय+अम = दृशेयम्।

४९. छन्दस्युभयथा ३।४।११७—धात्वाधिकारे उक्तः प्रत्ययः सार्वधातुकार्धधातुकोभयसंज्ञः स्यात्। 'वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः'। वर्धयन्तु इत्यर्थः। आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः। 'विशृण्विरे'। सार्वधातुकत्वात् श्नुः शृभावश्च। 'हुश्नु०' (६।४।८७) इति यण्।

धातु के अधिकार में यह कहा गया है कि प्रत्यय सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक होता है। यथा—'वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः'। वर्धन्तु—वृध्+णिच्=लोट्। गुण होने से वर्धन्यतु रूप बना है। पर आर्धधातुक मान लेने पर 'णेरनिटि' से णि का लोप कर देने पर वर्धन्तु रूप बनता हैं। 'विशृण्विरे' पद में सार्वधातुक होने से श्रु का श्रव आदेश होता है और यण् प्रत्यय कर देने से 'विशृण्विरे' पद रूप बनता है।

५०. तुमर्थे सेसेनसेअसेनक्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ३।४।९ :—से वक्षे रायः। सेन्—ता वामेषे। असे—शरदो जीवसे धाः। असेन्—नित्वाद्युदात्तः। क्से—प्रेषे। कसेन्—गवामिव श्रियसे। अध्य, अध्यैन—जठरं पृणध्यै। पक्षे आद्युदात्तम्। कध्यै, कध्यैन्—आहुवध्यै। पक्षे नित्स्वरः। शध्यै—राधसः सह मादयध्यै। शध्यैन्—वायवे पिबध्यै। तवैदातवा उ। तवेङ—सूतवे। तवेन—कर्त्तवे॥

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में—से, सेन असे, असेन, क्से, कसेन अध्यै, अध्यैन, कध्यै, कध्यैन, शध्यैं, शध्यैन, तवै, तवेङ् और तवेन् ये १५ प्रत्यय होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागेश का कथन है कि कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन, ये ४ प्रत्यय व्यर्थ हैं, क्योंकि अध्यै, अध्यैन् से ही इनका कार्य बाहुलक द्वारा चल सकता है। यथा—

१. से—वच्+से=वक्षे
२. सेन्—इ+सेन=एषे
३. असे—जीव+असे=जीवसे
४. असेन्—वही रूप किन्तु आदि स्वर उदात्त
५. क्से—इ+क्से=इसे। प्र--इसे=प्रेषे
६. कसेन्—श्रि+कसेन्=श्रियसे
७. अध्यै—पृ+अध्यै=पृणध्यै
८. अध्यैन्—वही रूप किन्तु आदि स्वर उदात्त
९. कध्यै—आ+हु+कध्यै—आहुवध्यै
१०. कध्यैन्—वही रूप किन्तु आदि स्वर उदात्त
११. शध्यै—मद्+णिच्+शध्यै=मादयध्यै
१२. शध्यैन्—पा+शध्यैन=पिबध्यै
१३. तवै—दा+तवै=दातवै
१४. तवेङ्—सू से ङित् होने के कारण गुण का निषेध कर सू+तवेङ् =सूतवे
१५. तवेन्—कृ+तवेन=कर्त्तवे।

५१. प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ३।४।१९—एते तुमर्थे निपात्यन्ते। प्रयातुं रोढुम्, अव्यथितुमित्यर्थः॥

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में प्रयै (प्रयातुं) रोहिष्यै (रोहणाय) अव्यथिष्यैं (अव्यथदाय) शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं।

५२. दृशे विख्ये च ३।४।११ :--द्रष्टुं विख्यातुमित्यर्थः॥

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में दृशे और विख्ये शब्द भी निपातन से सिद्ध होते हैं। दोनों का अर्थ है--देखने के लिए।

काशिका का उदाहरण--
'दृशे विश्वाय सूर्यम्'। विख्ये त्वा हरामि'॥

५३. शकि णमुल्कमुलौ (३।४।१२)—शक्नोतावुपपदे तुमर्थे एतौ स्तः। 'विभाजं नाशकत्' 'अपलुपं नाशकत्'। विभक्तुम् अपलोप्तुमित्यर्थः॥

वेद में शक् धातु के उपपद रहने पर तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में णमुल् और कमुल् प्रत्यय होते हैं। यथाः—'विभाजं नाशकत्'। वि+भज्+णमुल्=विभाजम् और 'अपलुपं नाशकत्'। अप+लुप+कमुल्=अपलुपम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५४. ईश्वरे तोसुन्कसुनौ (३।४।१३)—'ईश्वरो विचरितोः'। 'ईश्वरो विलिखः'। विचरितु'' विलेखितुमित्वर्थः।

ईश्वर शब्द उपपद रहने पर णमुल् प्रत्यय के अर्थ में धातु से तोसुन् और कसुन् प्रत्यय होते हैं। यथा—'ईश्वरो विलिखः'। विलेखितुमित्यर्थः। वि+लिख् + कसुन्=विलिखः। इसी तरह—वि + चर् + तोसुन्=विचरतोः।

५५. कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः (३।४।१४)—'न म्लोच्छितवै'। अवगाहे विदृक्षेण्यः।'भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्'।

कृत्य अर्थ में तवै, केन्, केन्य और त्वन् प्रत्यय होते हैं। यथा—'न म्लेच्छितवै'। 'अवगाहे दिदृक्षेण्यः'। 'भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्'।

(क) तवै—म्लेच्छ+तवै + इट=म्लेच्छितवै

(ख) के — अव+गाह + केन् =अवगाहे=अवगाहितव्यः

(ग) केन्य—दृश् + सन् + केन्य=दिदृक्षेण्यः=दिदृक्षणीयः (देखने की इच्छा करने योग्य)।

(घ) त्वन्—कृ+त्वन्=कर्त्वय =कृत्यम्।

५६. अवचक्षे च (३।४।१५)—'रिपुणा नावचक्षे'। अवख्यातव्ययित्यर्थः।।

कृत्य अर्थ में अवचक्षे का निपातन होता है। यथा—'रिपुणा नावचक्षे'।

५७. भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् (६।४।१६)—'आसंस्थातोः सीदन्ति आस माप्ते सीदन्तीत्यर्थः। 'उदेतोः'। अपकर्त्तोः। प्रचरितोः। होतोः। आतमितोः। काम माविजनितोः सम्भवामः। इतिश्रुतिः।।

जब भाव का बोध करानेवाला कोई भी अर्थ हो तो तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में—स्था, इण, कृञ्, वद, चर, हु, तय' जन, और सन, धातुओं से तोसुन् प्रत्यय होता है। यथा—'आसंस्थातोः सीदन्ति'।

सम	+	स्था	+	तोसुन्	=	संस्थातोः
उत्	+	इ	+	तोसुन्	=	उदेतोः
अप	+	कृ	+	तोसुन्	=	अपकर्तोः
प्र	+	वद (इट्)	+	तोसुन्	=	प्रवदितोः
प्र	+	चर (इट्)	+	तोसुन्	=	प्रचरितोः
हु	+	कोसुन			=	होतोः
आ	+	तम (इट्)	+	तोसुन्	=	आतमितोः

वि + जन (इट्) + तोसुन्=आविजनितोः=(आप्रसवात) ।।

५८ सृपि-तृदोः कसुन् (३।४।१७)—भावलक्षणे इत्येव। 'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्'। 'पुरा जत्रुभ्यः आतृनः' ।।

भावलक्षण के अर्थ में सृप् और तृद् धातु से कसुन् प्रत्यय होता है। यथा—विसृपः। आतृदः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi